इकाई 1 मानव संसाधन प्रबन्ध – परिचय

इकाई की रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 मानव संसाधन प्रबन्ध का आशय एवं परिभाषा
1.3 मानव संसाधन प्रबन्ध का उद्‌भव एवं विकास
1.4 मानव संसाधन प्रबन्ध एवं सेविवर्गीय प्रबन्ध में अन्तर
1.5 मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्य
1.6 मानव संसाधन प्रबन्धन की चुनौतियां
1.7 मानव संसाधन प्रबन्ध के सिद्धान्त
1.8 मानव संसााधन प्रबन्धक की भूमिका
1.9 मानव संसाधन विकास का अर्थ एवं विशेषतायें
1.10 सारांश
1.11 शब्दावली
1.12 बोध प्रश्न
1.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
1.14 स्वपरख प्रश्न
1.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्‌देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- मानव संसाधन का आशय और महत्व एवं विशेषतायें समझ सकें ।
- मानव संसाधन के कार्य और चुनौतियों का ज्ञान हो सकें ।
- मानव संसाधन के सिद्धान्तों के विषय में जान सकें ।
- मानव संसाधन के क्रमिक विकास से परिचित हो सकें ।
- मानव संसाधन प्रबन्धक की भूमिका समझ सकें ।

1.1 प्रस्तावना

मानव संसाधन किसी संगठन की सर्वाधिक मूल्यवान सम्पत्ति है। मानव संसाधन की प्राप्ति से लेकर उनके संगठन में बने रहने और संगठन छोड़ने तक की गतिविधि को मानव संसाधन प्रबन्ध के अन्तर्गत रखा जाता है। आर्थिक जगत में हुये क्रमिक विकास के साथ–साथ मानव संसाधन प्रबन्धन में भी नये आयाम जुड़ते गए। इस इकाई में मानव संसाधन प्रबन्ध के उद्‌भव एवं विकास पर प्रकाश डाला गया है। मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्य, सिद्धान्त और मानव संसाधन प्रबन्ध की चुनौतियों को स्पष्ट किया गया है। मानव संसाधन प्रबन्ध और सेविवर्गीय प्रबन्ध के मध्य अन्तर के बिन्दुओं का उल्लेख किया गया है। मानव संसाधन प्रबन्धक की बहुआयामी भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। इस प्रकार, मानव संसाधन प्रबन्ध का सामान्य परिचय इस इकाई से मिल जाता है।

1.2 मानव संसाधन प्रबन्ध का आशय एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Human Resource Management)

संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये आवश्यक है कि उत्पादन के भौतिक साधनों के साथ–साथ मानवीय संसाधनों की ओर यथोचित ध्यान दिया जाये। संगठन में मानवीय पक्ष का अध्ययन ही मानव संसाधन प्रबन्ध का क्षेत्र है। मानव संसाधन प्रबन्ध एक प्रक्रिया है जो लोगों और संगठन को आपस में जोड़ती है ताकि संगठन के एवं निजी उद्देश्यों को प्राप्त कियाा जा सके। यह जन शक्ति नियोजन से प्रारम्भ होता है और सतत् चलने वाली प्रक्रिया है। मानवीय सम्बन्धों की स्थापना और उनका पोषण मानव संसाधन प्रबन्ध की विषय वस्तु है। मानव संसाधन को मानव पूंजी अथवा मानव सम्पत्ति भी कहा गया है। मानव संसाधन का अर्थ 'कार्य पर व्यक्तियों' से लिया जाता है। व्यक्तियों के बिना संगठन के अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। अर्थव्यस्था में रोजगार आदि सन्दर्भों में मानव संसाधान का अर्थ कार्यकारी जनसंख्या (work force) से लिया जाता है। प्रबन्ध के क्षेत्र में मानव संसाधान के लिये सेविवर्ग और कार्मिक शब्द प्रायः प्रयुक्त होते हैं।

एडबिन बी. फ्लिप्पो के अनुसार, ''मानव संसाधन प्रबन्ध का आशय संसाधनों की प्राप्ति, विकास का नियोजन, संगठन, निर्देशन तथा नियन्त्रण से है ताकि सामाजिक एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके।''

डेल योडर के अनुसार, ''मानव संसाधन प्रबन्ध, प्रबन्ध का वह भाग है जो जनशक्ति के उपयोग और उस पर प्रभावी नियंत्रण रखने की दिशा में कार्य करता है जो यान्त्रिक शक्ति से भिन्न है। इस दिशा में प्रयुक्त विधियां, उपकरण व तकनीक मानव संसाधन प्रबन्धक की विषय की सामग्री है जिसके माध्यम से श्रमिक उत्पादन में उत्साह के साथ सहयोग करते हैं।

भारतीय कार्मिक प्रबन्धन संस्थान ने मानव संसाधन प्रबन्धन को इस प्रकार परिभाषित किया है, '' प्रबंधकीय कार्य का वह भाग जो संगठन में मानवीय सम्बन्धों से संबंधित है, कार्मिक प्रबंध कहलाता है। इसका उद्देश्य उन सम्बन्धों का सन्धारण है जिससे संगठन में प्रभावी कार्य के माध्यम से उत्पादन को अधिकतम सहयोग प्राप्त हो सके।''

1.3 मानव संसाधन प्रबन्ध का उद्भव (Evolution of Human Resource Management)

मानव संसाधन प्रबन्ध का जो वर्तमान स्वरूप है, यह प्रारम्भ में ऐसा नहीं था। इसके विकास के विभिन्न चरण हैं– श्रम कल्याण चरण, सेविवर्गीय प्रबन्ध चरण, मानव संसाधन चरण। सबसे पहले श्रम कल्याण की अवधारणा आई, इसके बाद सेविवर्गीय प्रबन्ध का युग रहा, बाद में मानव संसाधन प्रबन्ध को मान्यता मिली।

(1) **श्रम कल्याण चरण (Labour Welfare stage)**– प्रारम्भ में व्यवसाय छोटे पैमाने पर था, उस समय श्रम संघों की स्थापना शुरू हुई। श्रम संघों के अस्तित्व में आने पर, यह आवश्यकता हुई कि कारखाना मालिक और श्रमिकों के मध्य सम्पर्क के लिये कोई कड़ी अथवा मध्यस्थ होना चाहिए। इसके समाधान के लिये श्रम कल्याण अधिकारी नियुक्त किया जाने लगा। श्रम कल्याण अधिकारी का प्रमुख कार्य कर्मचारियों को न्यूनतम सुविधायें उपलब्ध कराने तक सीमित रहा। मानव संसाधन के महत्व को स्वीकार करने का यह प्रथम युग था।

(2) **सेविवर्गीय प्रबन्ध चरण (Personnel Management stage)**– व्यवसाय के पैमाने के बढ़ने पर कारखाना प्रणाली विकसित हुई। अब, एक ही स्थान पर हजारों व्यक्तियों को रोजगार मिलने लगा। परिणामस्वरूप, एक ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होने लगी जो संगठन की जरूरत के अनुसार कर्मचारियों को उपलब्ध करा सके। इस कार्य को सम्पादित करने के लिये सेविवर्गीय अधिकारी की

नियुक्ति की जाने लगी। बाद में, सेविवर्गीय प्रबन्धक रखा जाने लगा। सेविवर्ग विभाग का काम भर्ती और चयन प्रक्रिया सम्पादित करना होता था।

(3) मानव संसाधन प्रबन्ध (Human Resource Management) – व्यवसाय के आकार और स्वरूप में क्रमशः परिवर्तन आये। कर्मचारियों की नियुक्ति के साथ प्रशिक्षण की आवश्यकता प्रमुखता से अनुभव की जाने लगी। उनकी क्षमताओं को विकसित करने के लिये स्थाई रूप से एक विभाग की आवश्यकता स्वीकार की गई। इस सन्दर्भ में, मानव संसाधन प्रबन्धक की व्यवस्था को क्रियान्वित किया गया।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में, शोषण के समापन का दृष्टिकोण था जिसे स्वेद पूरित उद्योग (sweated industries) कहा जाता था। सरकारों ने विभिन्न वैधानिक उपाय लागू किये ताकि कर्मचारियों को शोषण के विरुद्ध संरक्षण प्रदान किया जा सके। इससे उद्योग जगत में कल्याणवाद के दृष्टिकोण का उदय हुआ। बाद में, सेवायोजकों ने कर्मचारी कल्याण में रुचि दिखाई और वैधानिक प्रावधानों से भी आगे बढ़कर श्रमिको सुविधायें उपलब्ध कराईं। उनके इस उदार दृष्टिकोण को पितृवाद (parentalsim) की संज्ञा दी गई। इस सन्दर्भ में, सर जमशेद जी टाटा का उदाहरण उल्लेखनीय है, उन्होंने अपने कर्मचारियों को अपने बच्चे बताया। इस क्रम में, श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की जाने लगी। बीसवीं शताब्दी के मध्य में परिवर्तन आया और कल्याण अधिकारी के स्थान पर संस्थानों में सेविवर्गीय अधिकारी की नियुक्ति की जाने लगी जिसका कार्य श्रम शक्ति नियोजन एवं अनुशासन सम्बन्धी होता था। अनेक उद्योगों में कल्याण अधिकारी और सेविवर्ग अधिकारी की भूमिका को जोड़ दिया गया। औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में अनेक कानून बने । वैधानिक बाध्यता को लेकर, संगठनों में ऐसे पेशेवरों की मांग होने लगी जो श्रम सम्बन्धों का दायित्व संभाल सकें। सत्तर के दशक में, मानव संसाधन प्रबन्ध के क्षेत्र में नए व्यवहारात्मक और प्रौद्योगिकी परिवर्तनों पर ध्यान दिया गया। अभिप्रेरणा योजनाओं, निष्पत्ति मूल्यांकन तंत्र, उद्देश्य द्वारा प्रबन्ध विषयों को शामिल किया गया। कार्य संस्कृति और कार्य मूल्यों की पहचान की गई और इनका महत्व संगठन के उद्देश्यों के संदर्भ में स्वीकार किया जाने लगा।

कल्याणवादी विचारधारा / Welfare concept → पितृवादी विचारधारा / Parentalistic concept → अनुरक्षण विचारधारा / maintenance concept → विवाद प्रबन्धन विचारधारा / Conflict management concept → संस्कृति एवं निष्पत्ति विचारधारा / Culture & performance concept

1.4 सेविवर्गीय प्रबन्ध एवं मानवीय संसाधन प्रबन्ध में अन्तर

मानव संसाधन प्रबन्ध, सेविवर्गीय प्रबन्ध से महत्वपूर्ण रूप से भिन्न है। मानव संसाधन प्रबन्ध प्रतिक्रियाशील होने के स्थान पर क्रियाशील होता है, आंशिक होने के स्थान पर व्यापक होता है, श्रम को चर लागत के रूप में लेने के स्थान पर सामाजिक पूंजी के रूप में लेता है, सम्बन्धोन्मुखी होने के स्थान पर लक्ष्योन्मुखी होता है, अनुशीलन के स्थान पर प्रतिबद्धता पर आधारित होता है। सेविवर्गीय प्रबन्ध संगठन के प्रति मुख्यतः निर्देशित होता है– उनकी खोज, प्रशिक्षण, वेतन, रोजगार अनुबन्ध की व्यवस्था, यह व्याख्या करना कि उनसे क्या अपेक्षा की जाती है, प्रबन्धकीय गतिविधि को कर्मचारियों

के अनुकूल बनाने के प्रयास। इसके विपरीत, मानव संसाधन प्रबन्धक संगठनात्मक कर्मचारियों से प्रारम्भ नहीं करता वरन् मानवीय संसाधनों के लिये आपूर्ति की अपेक्षा मांग के साथ संगठनात्मक आवश्यकताओं से शुरूआत् करता है।

सेविवर्गीय प्रबन्ध एवं मानवीय संसाधन प्रबन्ध में अन्तर

अन्तर का आधार (Basis for Distinction)	**सेविवर्गीय प्रबन्ध** (Personnel Management)	**मानव संसाधन प्रबन्ध** (Human Resource Management)
1. रोजगार अनुबन्ध	सावधनीपूर्ण लिखित अनुबन्ध	अनुबन्ध से परे जाने
2. व्यवहारात्मक संदर्भ	मानदण्ड, परम्परायें तथा व्यवहार	मूल्य एवं लक्ष्य
3. प्रबन्धकीय कार्य	निगरानी	पोषण
4. महत्वपूर्ण सम्बन्ध	श्रम सम्बन्ध	ग्राहक सम्बन्ध
5. प्रबन्धकीय भूमिका	व्यवहारवादी	परिवर्तनकारी नेतृत्व
6. कार्य डिजाइन	श्रम विभाजन आधारित	टीम वर्क
7. विवाद निदान	अस्थाई संधि तक पहुंचना	वातावरण एवं संस्कृति प्रबन्धन
8. व्यवधान उपाय	सेविवर्गीय प्रक्रियायें	सांस्कृतिक, संरचनात्मक, सेविवर्गीय रणनीति
9. संचार	अप्रत्यक्ष	प्रत्यक्ष
10. प्रबन्ध चातुर्य	समझौते	सुविधाकरण
11. वेतन का आधार	कार्य मूल्यांकन	निष्पत्ति आधारित
12. साझा हित	संगठन हित सर्वोपरि	हित पारस्परिकता

1.5 मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्य

मानव संसाधन से प्रत्यक्ष रूप से जुड़े सभी विषय मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। मानव संसाधन प्रबंध बाहरी वातावरण से भी प्रभावित होता है, जैसे – सरकारी नीतियां, श्रम बाजार, आर्थिक वातावरण, व्यावसायिक वातावरण, प्रतियोगिता, जनसंख्या संरचना आदि। डेल योडर एवं राबर्ट जे. नेल्सन ने मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्यों में सम्मिलित किया है– विभागीय प्रशासन, चयन व कार्य पर लगाना, प्रशिक्षण, सामूहिक सौदेबाजी, मजदूरी व वेतन प्रशासन, लाभ एवं सेवायें, सेविवर्गीय शोध। मानव संसाधन विभाग का कार्य नियोजन से प्रारम्भ होकर शोध तक विस्तृत है। सेविवर्ग की सभी गतिविधियां इसके अन्तर्गत आती हैं। मानव संसाधन प्रबंध के प्रमुख कार्य निम्न शीर्षकों में रखे जा सकते हैं–

(1) मानव संसाधन का संगठनात्मक नियोजन– मानव संसाधन प्रबंध का एक महत्वपूर्ण कार्य संगठनात्मक नियोजन है। इसके तहत कर्मचारियों की भर्ती, मूल्यांकन, वेतन ढांचा एवं उनको मिलने वाले अनुलाभ, स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के प्रावधान आदि के बारे में संगठन की व्यूह रचना करना आता है।

2. मानव संसाधन की प्राप्ति– मानव संसाधन की प्राप्ति, मानव संसाधन प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है। संगठन के भविष्य का निर्धारण वह जन शक्ति करती है जो वहां कार्यरत है। भर्ती एवं चयन का कार्य बहुत सावधानीपूर्वक किया जाता है। संगठन की ऐसी संस्कृति विकसित की जाती है कि लोग इसके प्रति आकर्षित हों। संगठन के उद्देश्य, स्वरूप, मानव संसाधन विकास एवं भर्ती के लिये योजना

बनाई जाती है। संगठन के लिये मानव संसाधन प्रबन्धक को उपयुक्त तथा सही व्यक्ति का चुनाव करना होता है।

3. निष्पादन प्रबन्ध– निष्पादन प्रबंध मानव संसाधन प्रबंध का एक प्रमुख कार्य है। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों के कार्य का अध्ययन, आकलन एवं मूल्यांकन सापेक्ष रूप से किया जाता है। इसमें कर्मचारी के कार्य का आकलन करने के बाद ऐसे प्रयास किये जाते हैं कि उनकी कार्यक्षमता में वृद्धि की जा सके। मानव संसाधन प्रबंध द्वारा संगठन के उद्देश्य और मानवीय आकांक्षाओं के मध्य तालमेल बिठाने की दिशा में कार्य करता है। परिश्रमी तथा योग्य कर्मचारियों के लिये भावी योजनायें लागू की जाती है। संगठन में ऐसा वातावरण बनाया जाता है कि सभी कार्मिक निर्भय होकर अपना अधिकतम योगदान निर्धारित लक्ष्यों के प्रति कर सकें।

4. मानव संसाधन नियोजन– मानव शक्ति नियोजन संगठन के आवश्यकताओं की पूर्ति है। यह संगठन हेतु भावी मानवीय आवश्यकता, प्राप्ति, विकासए अनुरक्षण तथा उपयोग को दर्शाती है। मानव शक्ति नियोजन मानव संसाधन प्रबंध का महत्वपूर्ण कार्य है। जन शक्ति का मूल्यांकन, उसका पूर्वानुमान, उपलब्ध स्रोतों की खोज, प्रशिक्षण एवं अभिप्रेरणा की विधियों का अध्ययन आदि मानव संसाधन नियोजन की विषय वस्तु है। कार्य विश्लेषण, कार्य की व्याख्या, तथा कार्य विशिष्टता भी मानव नियोजन के अन्तर्गत किया जाता है।

5. प्रबन्ध में सहभागिता– निर्णयों को प्रभावी ढ़ग से लागू करने में बहुत मदद मिलती है, यदि निर्णय में कर्मचारियों को भी सम्मिलित कर लिया जाये। इसके लिये कर्मचारियों को प्रबन्ध में सहभागिता दी जाती है। प्रबंध में सहभागिता सुनिश्चित करने का दायित्व भी मानव संसाधन विभाग का होता है। कर्मचारियों के साथ सुगम संवहन सदैव बना रहना चाहिए, तभी वे प्रबंधकीय निर्णयों में सहभागी बन सकते हैं। प्रबंध सहभागिता के लिये श्रम संघों का सहयोग लिया जाता है। यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है। सामूहिक सौदेबाजी, कार्य दशायें, कार्य घण्टे, स्वास्थ्य सुरक्षा, और कार्य हित से सम्बन्धि तमामले भागीदारी के आधार पर सरलता से निपटाये जा सकते हैं

6. उचित पारिश्रमिक– किसी भी इकाई की प्रगति के लिये आवश्यक है कि वहां आय और श्रम के पारिश्रमिक में संतुलन बना रहे। प्रायः कार्मिकों में असंतोष का कारण यही होता है कि वहां पारिश्रमिक प्रणाली दोषपूर्ण होती है। संगठन में पारिश्रमिक देने के लिये प्रेरणात्मक मजदूरी भुगतान पद्धतियों का उपयोग किया जाता है। गैर वित्तीय अभिप्रेरणाओं का भी सहारा लिया जाता है। कार्य की दशाओं को यथा संभव कार्य और स्वास्थ्य के अनुकूल बनाने की दिशा में प्रयास किये जाते हैं। कार्य के लिये उचित क्षतिपूर्ति और स्वस्थ वातावरण कार्मिकों को लगन से कार्य करने और संस्था में लम्बे समय तक रहने को प्रेरित करते हैं।

7. कार्मिक अभिप्रेरणायें– किसी भी दिशा में सफलता प्राप्त करने में प्रेरणा का विशेष योगदान होता है। एक कर्मचारी में अपने कार्य के प्रति रुचि पैदा करना, उसकी रुचि में वृद्धि करना, कार्य के प्रति उत्साह बनाये रखना आदि प्रेरणा के अन्तर्गत आते हैं। कुशल एवं प्रभावशाली प्रेरणा से स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों का विकास होता है। मानव संसाधन में प्रेरणा के कुशल उपयोग से उत्पादन में वृद्धि होती है।

8. प्रशिक्षण एवं विकास कार्यक्रम– गुणवत्ता नियंत्रण किसी भी संस्था में महत्वपूर्ण पहलू होता है। गुणवत्ता के आधार पर ही किसी उत्पाद की प्रमाणिकता तय की जाती है। गुणवत्ता नियंत्रण के लिये आवश्यक है कि कार्मिक प्रशिक्षित और कुशल हों। तकनीकी विकास के साथ, प्रशिक्षण की आवश्यकता और महत्व में और अधिक वृद्धि हुई है। प्रायः प्रशिक्षण की आवश्यकता सदैव रहती है

जिसके लिये मानव संसाधन विभाग द्वारा व्यवस्था की जाती है। यह माना जाता है कि मानव संसाधन के प्रशिक्षण एवं विकास पर किया गया विनियोग बहुत अनुकूल परिणाम लाता है। इनके माध्यम से कर्मचारी वर्ग में ज्ञान, कुशलता, मनोवृत्ति एवं अभिमुखता में सुधार लाया जा सकता है। परिणामस्वरूप, कर्मचारी उत्पादकता में वृद्धि होती है।

9. **स्वास्थ्य एवं सुरक्षा** – सरकार ने स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के विषय में श्रम कानून में विविध प्रावधान किये हैं। इसी प्रकार प्रदूषण के सम्बन्ध में वैधानिक व्यवस्थायें हैं जिनका अनुपालन अनिवार्यता है। व्यवसायिक संगठनों में इसके प्रति जागरुकता और प्रतिबद्धता बढ़ी है। विकसित देशों में कर्मचारी सुरक्षा पर बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। कर्मचारियों के लिये स्वास्थ्य सुविधायें सुनिश्चित करना संगठन के दायित्च के साथ–साथ सामाजिक दायित्व के रूप में भी स्वीकार किया जाता है। मानव संसाधन विभाग संस्था के विधिक और सामाजिक दोनों दायित्वों को ध्यान में रखकर इस विषय में नीति और योजना बनाकर स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिये कार्यरत रहता है।

मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्यः एक दृष्टि में

प्रबन्ध	विकास	क्षतिपूर्ति	समन्वय	रख–रखाव
▪ कार्य विश्लेषण	▪ प्रदर्शन का मूल्यांकन	▪ कार्य मूल्यांकन	▪ प्रेरणा	▪ स्वास्थ्य
▪ मानव संसाधन नियोजन	▪ प्रशिक्षण	▪ मजदूरी एवं वेतन प्रशासन	▪ कार्य संतुष्टिकरण	▪ सुरक्षा
▪ नियुक्ति	▪ कार्यकारी विकास	▪ बोनस एवं प्रोत्साहन	▪ शिकायत सुधार	▪ समाजिक सुरक्षा
▪ चयन	▪ करियर योजना एवं विकास	▪ पे–रोल	▪ सामूहिक सौदेकारी	▪ कल्याण योजनायें
▪ अधिष्ठापन			▪ संघर्ष प्रबन्धन	▪ कर्मचारी अभिलेख
▪ स्थानान्तरण			▪ कर्मचारी सहभागिता	▪ कर्मचारी अनुसंधान
▪ पदोन्नति			▪ अनुशासन	▪ कर्मचारी अंकेक्षण
▪ पृथक्करण				

1.6 मानव संसाधन प्रबन्धन की चुनौतियां (Challenges beforeHuman Resource Management)

राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बहुआयामी परिवर्तन हो रहे हैं। समाज से लेकर सूचना क्षेत्र तक, सार्वजनिक उपक्रमों से लेकर प्रौद्योगिकी तक क्रांति आ गई है। ऐसी परिस्थितियों में मानव संसाधन प्रबन्ध में समस्याओं का आना स्वाभाविक है। आज, कार्मिक प्रबंधक बहुत अधिक विकसित अवस्था में आगे आने वाले समय में स्वयं को वातावरण में आ रहे परिवर्तनों के कारण स्वयं को अप्रचलित हुआ सा अनुभव कर सकता है। सरकार के स्तर पर औद्योगिक सम्बन्धों पर व्यापक ध्यान दिया जा रहा है। किन्तु, अभी इस दिशा में स्थिति संतोषजनक नहीं कही जा सकती। वस्तुतः, इस क्षेत्र में निरन्तर प्रयास किये जाते रहने की आवश्यकता होगी।

बदलता मनोवैज्ञानिक तंत्र, कम्प्यूटरीकृत सूचना तंत्र, पेशेवर कर्मियों की गतिशीलता, वैधानिक परिदृश्य में परिवर्तन, मानवीय सम्बन्धों का प्रबन्ध, श्रम शक्ति का बढ़ता आकार, शिक्षा के स्तर में वृद्धि, तकनीकी विकास, राजनैतिक वातावरण में बदलाव तथा कर्मचारियों की बढ़ती महत्वाकांक्षायें आदि व्यवसाय की प्रगति के सम्मुख आने वाली प्रमुख चुनौतियां हैं। भविष्य में बड़ी संख्या में यूनियन संघर्ष सामने आने की संभावना है जिससे उद्योगों में ज्यादा समस्यायें उत्पन्न होंगी। आने वाले समय में मानवीय सम्बन्धों का प्रबन्ध आज की तुलना में और अधिक जटिल होने की सम्भावना है। कर्मचारियों में नई पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी की तुलना में अभिप्रेरित करना अधिक कठिन होगा। नई श्रम शक्ति अधिक शिक्षित और आत्म प्रबुद्ध श्रमिकों का समावेश करेगी। वे आत्म संतुष्टि के लिये ज्यादा आयामों और बढ़ती मात्रा में भागीदारी की मांग करेंगे। इसके अतिरिक्त, पेशेवर तथा तकनीकी कर्मचारियों का अनुपात सम्पूर्ण श्रम शक्ति के साथ बढ़ेगा।

मानव संसाधन प्रबन्ध के सम्मुख दो प्रकार की चुनौतियां हैं– आन्तरिक चुनौतियां और बाह्य चुनौतियां। आन्तरिक चुनौतियों में सम्मिलित हैं– श्रम संघ जनित चुनौतियां, संगठल के सांस्कृतिक मूल्य, पेशेवर संस्थाओं की चुनौतियां। बाह्य चुनौतियों में सम्मिलित हैं– वैधानिक चुनौतियां, राजनैतिक चुनौतियां, तकनीकी चुनौतियां एवं वित्तीय चुनौतियां।

आन्तरिक चुनौतियां

1. **श्रम संघ जनित समस्यायें**– संगठनों में श्रम संघ प्रभावी रहते हैं। प्रबन्धकों के लिये प्रायः ऐसी स्थितियां आती हैं कि श्रम संघ उनके निर्णयों को लागू करने में बाधा उत्पन्न करते हैं। कोई भी परिवर्तन करने पर यह सम्भावना बहुत रहती है कि श्रम संघ उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं। परिवर्तन को लागू करने के रास्ते में यह स्थिति बहुधा देखी जाती है।
2. **संगठन के सांस्कृतिक मूल्य** – प्रत्येक संगठन की अपनी संस्कृति होती है। इसके औपचारिक और अनौपचारिक दोनों ही स्वरूप अस्तित्व में रहते हैं। संस्था में कार्यरत व्यक्तियों में इन सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति एक सहज प्रतिबद्धता होती है। जब भी ऐसी स्थिति आती है कि स्थापित मूल्यों से विचलन करना हो अथवा इनको छोड़ना ही संस्था के हित में हो, तब आन्तरिक स्तर पर इसका विरोध होता है । यह आन्तरिक विरोध संगठन के लिये कठिन समस्या बन जाता है।
3. **पेशेवर संस्थाओं की चुनौतियां**– पेशेवर संस्थायें अपने समुदाय के हित रक्षण के लिये व्यापक दिशा निर्देश और नीति निर्धारण का कार्य करती हैं। कभी–कभी पेशेवर संस्थाओं की ओर से भी श्रम संघ जैसी ही समस्यायें उत्पन्न कर दी जाती हैं। संगठन के किसी प्रमुख निर्णय के विरोध के लिये सदस्यों को प्रेरित कर दिया जाता है।

बाह्य चुनौतियां

1. **वैधानिक चुनौतियां**– सरकार की ओर से श्रम कल्याण आदि विषयों में नये–नये उपाय और प्रावधान किये जाते हैं। मानव संसाधन प्रबन्ध को कानून का पालन करना होता है, यह उनके लिये समस्या बन जाती है। इसी प्रकार टैक्स संरचना में भी सुधार आते रहते हैं जिसके लिये कर्मचारियों को प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जोकि मानव संसाधन प्रबन्ध का दायित्व बनता है।
2. **राजनैतिक चुनौतियां**– हमारे देश में कई प्रमुख राजनैतिक पार्टियां हैं जिनके दर्शन में मौलिक भेद है। राजनैतिक दलों के अपने श्रम संगठन भी हैं। ये श्रम संगठन अपनी पार्टी का प्रतिनिधित्व करते हैं और अपनी विचारधारा से प्रतिबद्ध होते हैं। समय–समय पर उद्योगों में विविध निर्णयों के प्रति विरोध करना इनकी नियमित गतिविधि होती है। साथ ही, किसी विशेष परिवर्तन के समय भी ये अपने संगठन अपने प्रभाव का उपयोग करके संस्था के सम्मुख चुनौती उत्पन्न कर देते हैं।
3. **तकनीकी चुनौतियां** – तकनीकी परिवर्तन व्यवसाय को बहुत प्रभावित करते हैं। टैक्नॉलोजी में परिवर्तन लगातार आते रहते हैं। मानव संसाधन प्रबन्ध को तकनीकी विकास के साथ सामंजस्य बिठाने के लिये सदैव प्रयासरत रहना होता है। उत्पादन विधियों में परिवर्तन के अलावा संचार साधनों में बदलाव भी प्रबन्धन के लिये ध्यान देने का विषय रहता है। उदाहरण के लिये, व्हाट्सएप को संचार के लोकप्रिय साधन के रूप में उपयोग में लाया जा रहा है। केवल निजी क्षेत्र में ही नहीं, सार्वजनिक क्षेत्र में भी इसका चलन हुआ है।
4. **वित्तीय चुनौतियां**– विपणन नीतियों और कार्यविधियों में परिवर्तन होने के कारण प्रबन्धक के समक्ष ग्राहकों, पूर्तिकारों, प्रतियोगियों द्वारा उत्पन्न समस्याओं के साथ–साथ उदारीकरण और वैश्वीकरण जैसे प्रभावों से उत्पन्न समस्यायें भी आती रहती हैं।

1.7 मानव संसाधन प्रबन्ध के सिद्धान्त (Principles of Human Resource Management)

व्यवसाय में मानव संसाधन प्रबन्ध व्यवस्था में तीन आधारभूत स्तम्भ होते हैं – पहला, व्यक्ति किसी भी संगठन के सर्वाधिक महत्वपूर्ण संसाधन हैं। इनका प्रभावी प्रबन्धन किसी भी व्यवसाय की सफलता के लिये पूर्व अनिवार्यता है। दूसरा, मानव संसाधन नीतियों और प्रविधियों का संगठन के उद्‌देश्यों और योजनाओं के साथ जुड़ा होना जरूरी है। तीसरा, संगठन में ऐसी संस्कृति होनी चाहिए कि मानव संसाधन के मूल्य को स्वीकार किया जाये। इसका अर्थ यह है कि मानव संसाधन प्रबन्ध केवल कार्मिक विशेषज्ञ का क्षेत्र नहीं है, अपितु प्रत्येक प्रबन्धक की प्राथमिकता हो जिनका स्टाफ के लिये रेखीय उत्तरदायित्व बनता है। मानव संसाधन प्रबन्ध के प्रमुखा सिद्धान्त इस प्रकार हैं–

1. **वैज्ञानिक चयन का सिद्धान्त (Principle of Scientific Selection)**– संगठन के लिये श्रम शक्ति खोज मानव संसाधन प्रबन्ध का प्राथमिक कार्य है। इसके लिये मानव संसाधन स्रोतों को विकसित किया जाता है। यह कार्य कई चरणों में सम्पन्न होता है। कर्मचारियों के चयन में वैज्ञानिक चयन का सिद्धान्त अपनाया जाता है। इसका उद्‌देश्य है कि सही कार्य के लिये सही व्यक्ति का चुनाव किया जाये।

2. **टीम भावना का सिद्धान्त (Principle of Team Spirit)** – कार्य स्थल पर समूह भावना विकसित की जाती है। टीम भावना से आपसी विश्वास बढ़ता है। विश्वास और उत्साह के वातावरण में काम करना संगठन और व्यक्तियों दोनों के लिये लाभकारी रहता है। इससे कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। लक्ष्य को प्राप्त करना सरल और सुखद अनुभव होता है।

3. **उच्च मनोबल का सिद्धान्त (Principle of High Morale)** – मानव संसाधन प्रबन्ध का प्रयास होता है कि श्रम शक्ति का उच्च मनोबल बना रहे। इसके लिये, सतत् प्रयास किये जाते हैं। इस दिशा में प्रबन्ध का लक्ष्य होता है कि श्रेष्ठ पारिश्रमिक पद्धति का चयन किया जाये। साथ ही, संगठन में उत्तम कार्य दशायें बनी रहें। इसके अतिरिक्त, कर्मचारियों को निष्पक्ष एवं न्यायपूर्ण व्यवहार मिले।

4. **अधिकतम वैयक्तिक विकास का सिद्धान्त (Principle of Maximum Individual Development)** – कर्मचारियों के वैयक्तिक विकास का लाभ संगठन को सीधे तौर पर मिलता है। वे अधिक कुशलता से काम करने की स्थिति में होते हैं और संस्था के लक्ष्य प्राप्त करने में उनका ज्यादा सहयोग मिलता है। संस्थायें कर्मचारियों के कौशल विकास और वैयक्तिक विकास पर व्यय करती हैं। इसके लिये प्रशिक्षण और सम्यक् गतिविधियों पर विनियोग किया जाता है। परिणामस्वरूप, कर्मचारियों को अपनी योग्यता प्रदर्शन का अवसर मिलता है और कार्य संतुष्टि में वृद्धि होती है।

5. **श्रम के प्रति आदर का सिद्धान्त (Principle of Dignity of labour)** – मानव संसाधन प्रबन्ध का आधार है कि श्रम के महत्व को स्वीकार किया जाये। वास्तव में, इस विधा का उदय ही इस पृष्ठभूमि में हुआ है कि श्रम को यथोचित आदर और सम्मान सुनिश्चित किया जाये। श्रम के महत्व को स्वीकार किया गया, तभी श्रम कल्याण का दृष्टिकोण विकसित हुआ। इस क्रम में, श्रम विभाजन और विशिष्टिकरण आदि नियमों का उपयोग किया जाना लगा।

6. **प्रभावी सम्प्रेषण का सिद्धान्त** (Principle of Effective Communication) – सम्प्रेषण के क्षेत्र में विविध प्रयोग हुये हैं। इसमें नये आयाम जुड़े हैं। संचार क्रान्ति से भी संगठन मे संचार विधियों में परिवर्तन आये हैं। संवहन के स्वरूप में मौलिक अन्तर हुआ है। संगठन की सफलता के लिये अनिवार्य है कि वहां श्रेष्ठ सम्प्रेषण व्यवस्था कायम रहे जिससे सभी पक्षकारों में सहज संवाद बना रहे और संस्था का कार्य निर्बाध गति से बढ़ता रहे।

7. **संयुक्त प्रबन्ध का सिद्धान्त** (Principle of Participative Management) – प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी के विचार को व्यापक मान्यता मिली है। यह अनुभव किया गया है कि निर्णयन में कर्मचारियों को सम्मिलित करने पर निर्णयों को लागू करना आसान हो जाता है। इस उद्देश्य से, समितियों का गठन किया जाता है। श्रम प्रतिनिधियों के साथ समय–समय पर संवाद किया जाता है।

8. **राष्ट्रीय समृद्धि में योगदान का सिद्धान्त** (Principle of contribution to national prosperity) – संगठन के उद्देश्यों में देश हित के दृष्टिकोण को भी शामिल किया जाता है। इस विषय में व्यवसाय जगत के लिये कतिपय नियम और कानून भी हैं जिनका पालन करना अनिवार्यता है। किन्तु, स्वैच्छिक आधार पर संगठन की ओर से कर्मचारियों को यह संदेश जाना चाहिए कि उनका अच्छा प्रर्दशन और प्रयास देश हित में योगदान करते हैं।

आर्मस्ट्रॉग द्वारा प्रतिपादित, मानव संसाधन प्रबन्ध के सिद्धान्त

1. कार्मिक नीतियों को कारपोरेट उद्देश्यों और व्यूह रचनात्मक नीतियों के लक्ष्य प्राप्त करने में सहयोगी होना चाहिए।
2. मानव संसाधन किसी संगठन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण सम्पत्ति है।
3. यद्यपि मानव संसाधन प्रबन्ध का लक्ष्य संस्था के साधनों को समेकित करना होता है, वहीं यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि संगठन बहु आयामी समाज होते हैं जिनमें लोगों के अलग–अलग हित और चिन्तायें होती हैं जिनको वे सामूहिक तौर पर बनाये रखने की जरूरत महसूस कर सकते हैं।

4. नीतियों तथा व्यवहारों के एक दूसरे के साथ एकीकरण और साथ ही व्यावसायिक रणनीति के साथ समन्वय का सतत् प्रयास।
5. वरिष्ठ रेखीय प्रबन्धकों की मानव संसाधन प्रबन्ध से अपेक्षाओं का आकलन और अनुपालन सुनिश्चित करने की कोशिश।
6. कारपोरेट संस्कृति उत्कृष्टता पाने हेतु प्रभाव डालती है, इसमें यथेष्ट सावधानी की आवश्यकता।
7. मानव संसाधन प्रबन्ध और व्यावसायिक रणनीति के बीच श्रृंखला बनना, परिवर्तन लागू करने की दशाओं में इसकी प्रासंगिकता बढ़ जाती है।

1.8 मानव संसाधन प्रबन्धक की भूमिका (Role of Human Resource Manager)

मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्य ही मानव संसाधन प्रबन्धक की भूमिका है। मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्यों में मानव संसाधन नियोजन, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, छंटनी, पारिश्रमिक निर्धारण, औद्योगिक सम्बन्ध, औद्योगिक संघर्ष, श्रम संघ, कार्मिक कल्याण एवं सामाजिक सुरक्षा उपाय सम्मिलित हैं। मानव संसाधन प्रबन्ध के प्रधान कार्यों के अतिरिक्त, मानव संसाधन प्रबन्धक की भूमिका के कुछ और भी आयाम हैं, जिन्हें मानव संसाधन प्रबन्धक के कार्यों में सम्मिलित किया जाता है। मानव संसाधन प्रबन्धक संगठन में अधिकारी के रूप में कार्य करता है। इसके साथ–साथ वह विशेषज्ञ की भूमिका में परामर्श देने का कार्य करता है। मानव संसाधन प्रबन्धक श्रम विवादों में श्रम और उच्च प्रबन्ध के बीच मध्यथ बनकर समाधान की खोज करता है। संस्था के बाहर, सरकारी एवं गैर–सरकारी संगठनों में मानव संसाधन प्रबन्धक अपनी संस्था का प्रतिनिधित्व करता है और प्रतिनिधि की भूमिका अदा करता है। मानव संसाधन प्रबन्धक की महत्वपूर्ण भूमिकायें निम्न प्रकार हैं–

1. **रेखा अधिकारी के रूप में (As a Line Executive)** – रेखा अधिकारी होने का अर्थ है कि वह अपने कार्यों के लिये प्रत्यक्ष रूप से उत्तरदायी होता है। मानव संसाधन प्रबन्धक मानव संसाधन विभाग का अध्यक्ष होता है। वह अपने विभाग के विविध कार्यों, जैसे – भर्ती, चयन, प्रशिक्षण आदि को सम्पन्न करता है। इस रूप में वह रेखा अधिकारी की भूमिका का निर्वहन करता है। वह अपने विभाग के कार्यों के लिये प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार होता है।
2. **स्टाफ अधिकारी के रूप में (As a Staff Executive)** - स्टाफ अधिकारी होने का अर्थ है कि वह अपनी विशेषज्ञ राय देता है। वह परामर्शदता की भूमिका में होता है। मानव संसाधन प्रबन्धक अन्य विभागीय अध्यक्षों को उनके विभाग की मानव सम्बन्धों पर केन्द्रित समस्याओं के निराकरण के लिये परामर्श देता है। यह उल्लेखनीय है कि मानव संसाधन प्रबन्धक अपने परामर्श जनित परिणामों के लिये उत्तरदायी नहीं होता।
3. **सलाहकार के रूप में (As a Counseller)** – मानव संसाधन प्रबन्धक संस्था में सलाहकार के रूप में भी काम करता है। वह विभिन्न कर्मचारियों की समस्याओं को सुनता है, मुख्य प्रबन्धक को इन समस्याओं से अवगत कराता है। साथ ही, इन समस्याओं के निराकरण के लिये उपाय और सुझाव प्रस्तुत करता है। मानव संसाधन प्रबन्धक की यह भूमिका सलाहकार के रूप में होती है।
4. **मध्यस्थ के रूप में (As a Mediator)** - औद्योगिक विवादों में, मानव संसाधन प्रबन्धक का कार्य मध्यस्थ के रूप में होता है। श्रम संगठनों के साथ वार्ता में, मानव संसाधन प्रबन्धक की भूमिका एक मध्यस्थ की होती है। श्रम आन्दोलन कि स्थिति में मानव संसाधन प्रबन्धक

का कार्य जटिल हो जाता है। ऐसे अवसरों में वह दोनों पक्षों में संवाद स्थापित करने का कार्य करता है।

5. **प्रतिनिधि के रूप में (As a Representative)** –मानव संसाधन प्रबन्धक संगठन के बाहर अपनी संस्था का प्रतिनिधित्व करता है। सरकारी और गैर–सरकारी संगठन मानव संसाधन विषयों पर गोष्ठी और परिचर्चा आदि का आयोजन करते हैं, इन अवसरों पर मानव संसाधन प्रबन्धक अपने संगठन का प्रतिनिधित्व करता है। न्यायालय अथवा अन्य विभागों में संगठन की ओर से पक्ष रखने का कार्य भी मानव संसाधन प्रबन्धक द्वारा किया जाता है। मानव संसाधन प्रबन्धक की यह भूमिका प्रतिनिधि के रूप में होती है।

1.9 मानव संसाधन विकास का अर्थ एवं विशेषतायें (Meaning and Definition of Human Resource Development)

हेनरी फोर्ड का प्रसिद्ध कथन है, '' मुझसे मेरी इमारतें ले लो, मेरी मशीनें एवं सारी पूंजी ले लो। लेकिन, मेरे कर्मचारियों को छोड़ दो, मैं दोबारा से हेनरी फोर्ड बन जाऊंगा।'' संगठन में मानव संसाधन के महत्व को प्रकट करने वाला वक्तव्य है। योग्य एवं कुशल श्रम शक्ति ही संगठन की कार्य कुशलता और प्रभावपूर्णता का निर्धारण करते हैं। मानव संसाधन विकास की अवधारणा अपेक्षाकृत नयी है। पिछले दशक में, संगठनों में मानव संसाधन विकास प्रबन्धकों की नियुक्ति हुई है। प्रो0 लियोनार्ड नेडलर ने पहली बार इस धारणा को 1969 में प्रस्तुत किया। लियोनार्ड के अनुसार, ''मानव संसाधन विकास संगठित क्रियाओं की श्रृंखला है जो कि एक विशिष्ट समय में व्यावहारिक परिवर्तन लाने के लिये डिजाइन की जाती है।''

मानव संसाधन की विशेषतायें–

1. व्यक्तियों में सीखने की योग्यता है, इन्हें सीखने का अवसर देकर विकसित किया जा सकता है।
2. मानव संसाधन में निवेश एक दीर्घकालिक निवेश है। दीर्घकाल में इसका परिणाम मिलने लगता है।
3. मानव संसाधन का उचित शिक्षा एवं प्रशिक्षण से विकास किया जा सकता है।
4. मानव संसाधन विकास के लिये व्यक्तियों, उद्योग संघों एवं सरकार में सामूहिक समझ की आवश्यकता है।
5. मानव संसाधन विकास सभी स्तरों पर आवश्यक है। नई तकनीक सीखने के लिये व्यक्तियों को बार–बार प्रशिक्षण एवं विकास की निरन्तर आवश्यकता होती है।
6. मानव संसाधन विकास के लिये कक्षा में प्रशिक्षण की तुलना में कार्य पर प्रशिक्षण (on job training) बेहतर माना जाता है।

आजकल मानव संसाधन विकास को संगठन में उच्च उत्पादकता, अच्छे सम्बन्ध, अधिकतम लाभार्जन की कुंजी माना जाता है। मानव संसाधन विकास कार्यक्रम द्वारा कर्मचारी अपने कार्य के प्रति अधिक समर्पित हो जाते हैं। इसके द्वारा कार्य स्थल पर अधिक विश्वासपूर्ण वातावरण बनाया जा सकता है। फलस्वरूप, टीम भावना का उदय होता है। इस प्रकार, संस्था में कार्य संस्कृति का विकास होता है। व्यक्ति और संगठन दोनों इससे लाभान्वित होते हैं। इसलिये मानव संसाधन विकास को संगठन में समुचित महत्व दिया जाना आवश्यक है।

1.10 सारांश

मानव संसाधन प्रबन्ध का अभिप्राय प्रबन्ध की उस शाखा से है जो मानव संसाधन की भर्ती, चयन, विकास और उनके सर्वोत्तम उपयोग से सम्बन्धित है। मानव संसाधन प्रबन्ध, संगठन में प्रत्येक कर्मचारी का व्यवसाय के उद्देश्यों की प्राप्ति में अधिकतम योगदान सुनिश्चित करता है। क्षतिपूर्ति एवं अभिप्रेरणा भी मानव संसाधन प्रबन्ध की विषय वस्तु है।

जब उद्योग जगत में श्रम संघों की स्थापना होने लगी, तब मालिक और श्रमिकों के मध्य संवाद के लिये श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति का चलन शुरू हुआ। यह मानव संसाधन प्रबन्ध की प्रारम्भिक अवस्था थी। बाद में, भर्ती की प्रक्रिया को अधिक सुसंगत बनाने के लिये सेविवर्गीय अधिकारी की नियुक्ति की जाने लगी। सेविवर्गीय अधिकारी की भूमिका भर्ती, चयन और व्यक्तियों को काम पर लगाने (placement) तक सीमित थी। तदन्तर, संगठन में प्रशिक्षण और विकास का काम अधिक महत्वपूर्ण हो गया, इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये मानव संसाधन प्रबन्धक की नियुक्ति की जाने लगी। इनका काम संगठन में व्यक्तियों का प्रभावी प्रबन्धन करना है, ताकि वे लम्बे समय तक संगठन में बने रहें। साथ ही, संस्था के उद्देश्यों और वैयक्तिक उद्देश्यों में समन्वय बना रहे।

सेविवर्ग प्रबन्ध और मानव संसाधन प्रबन्ध में अन्तर को इस प्रकार समझ सकते हैं कि सेविवर्ग की तुलना में मानव संसाधन प्रबन्ध अधिक व्यापक है। सेविवर्ग प्रबन्ध मानदण्डों पर अधिक केन्द्रित है, जबकि मानव संसाधन प्रबन्ध मूल्यों और संस्कृति पर अधिक बल देता है। इसी प्रकार, सेविवर्ग में श्रम विभाजन महत्वपूर्ण है, जबकि मानव संसाधन प्रबन्ध में टीम भावना को हितकर माना जाता है। सेविवर्ग में संगठन के हित सर्वोपरि होते हैं, जबकि मानव संसाधन प्रबन्ध में हितों की पारस्परिकता (mutuality of interests) को महत्व दिया जाता है।

मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्यों को दो भागों में बांटा जा सकता है – 1. प्रबन्धकीय कार्य एवं 2. क्रियात्मक कार्य (operative function)। प्रबन्धकीय कार्य– नियोजन, संगठन, निर्देशन, समन्वय, नियन्त्रण। क्रियात्मक कार्य– कर्मचारियों की प्राप्ति, विकास कार्य, क्षतिपूर्ति कार्य, श्रमिकों को संगठन में बनाये रखना। मानव संसाधन प्रबन्ध की चुनौतियों में दो वर्ग हैं– 1. आन्तरिक चुनौतियां एवं 2. बाह्य चुनौतियां। आन्तरिक चुनौतियां– श्रम संघ जनित समस्यायें, संगठन के सांस्कृतिक मूल्य, पेशेवर संस्थाओं की ओर से समस्यायें। बाह्य चुनौतियां– वैधानिक चुनौतियां, राजनैतिक चुनौतियां, तकनीकी चुनौतियां, वित्तीय चुनौतियां। मानव संसाधन प्रबन्ध के सिद्धान्तों में सम्मिलित हैं– वैज्ञानिक चयन का सिद्धान्त, टीम भावना का सिद्धान्त, उच्च मनोबल का सिद्धान्त, अधिकतम वैयक्तिक विकास का सिद्धान्त, श्रम के आदर का सिद्धान्त, प्रभावी सम्प्रेषण का सिद्धान्त, सहभागी प्रबन्ध का सिद्धान्त, राष्ट्रीय हित का सिद्धान्त।

मानव संसाधन प्रबन्धक की भूमिकायें रेखा प्रबन्ध के रूप में, स्टाफ प्रबन्धक के रूप में, सलाहकार के रूप में, मध्यस्थ के रूप में, प्रतिनिधि के रूप में हैं। मानव संसाधन प्रबन्ध का एक अंग जिसका सम्बन्ध कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं विकास से है। लियोनार्ड नैडलर ने 1969 में, पहली बार इस धारणा को प्रस्तुत किया। मानव संसाधन विकास कर्मचारियों के कौशल विकास पर केन्द्रत विचारधारा है।

1.11 शब्दावली

मानव संसाधन प्रबन्ध – संगठन के उद्देश्यों को प्राप्त करने की दिशा में, कर्मचारियों के निष्पादन को अधिकतम करने की रीति।

सेविवर्गीय प्रबन्ध – कर्मचारियों की नियुक्ति, प्रशिक्षण एवं कार्मिक नीति निर्धारण से सम्बन्धित विभाग।

भारतीय कार्मिक संस्थान (National Institute of Personnel Management)- मानव संसाधन प्रबन्धन पेशेवरों की एकमात्र सर्वोच्च संस्था, मुख्यालय कोलकाता, 1980 में स्थापित।

पितृवादी दृष्टिकोण (Parentalistic Approach)– ऐसी विचारधारा जिसमें नियोक्ता अपने कर्मचारियों को अपने बालकों का दर्जा दें।

सहभागी प्रबन्धन (Participative Management) – निर्णयन की प्रक्रिया में कर्मचारियों को भागीदार बनाना।

निष्पादन मूल्यांकन –(Performance Appraisal) – कर्मचारी के कार्य का मूल्यांकन, यह नियमित रूप से किया जाता, पारिश्रमिक निर्धारण और करिअर विकास से सम्बन्धित ।

अभिप्रेरणाये (Incentives) – कर्मचारियों को बेहतर प्रदर्शन के लिये प्रेरित करने के उद्देश्य से दिये जाने वाले प्रोत्साहन –वित्तीय एवं गैर–वित्तीय अभिप्रेरणायें।

रेखा प्रबन्धक (Line Manager) – व्यवसाय की प्रमुख गतिविधि के लिये सीधे तौर पर जिम्मेदार अधिकारी जिसके अधीन कुछ कर्मचारी हैं और इनके काम के लिये भी रेखा प्रबन्धक ही उत्तरदायी होता है।

स्टाफ प्रबन्धक (Staff Manager) – इन्हें विशेषज्ञ भी कहा जाता है। ये रेखा प्रबन्धक को परामर्श, सहयोग एवं सूचनायें प्रदान करते हैं। ग्राहक सेवा, लेखांकन और मानव संसाधन जैसे विभाग का नेतृत्व स्टाफ प्रबन्धक करते हैं।

कार्य विश्लेषण –(Job Analysis)– भर्ती से पूर्व का चरण, जिसमें काम का विवरण, काम के लिये अपेक्षित योग्यता, कार्य की दशाओं, दायित्वों का अध्ययन किया जाता है।

मानव संसाधन विकास (Human Resource Development)– मानव संसाधन प्रबन्ध का एक अंग जिसका सम्बन्ध कर्मचारियों के प्रशिक्षण एवं विकास से है। लियोनार्ड नैडलर ने 1969 में, पहली बार इस धारणा को प्रस्तुत किया।

1.12 बोध प्रश्न

1. मानव संसाधन प्रबन्ध में सम्मिलित है–
   (ए) भर्ती
   (बी) चयन
   (सी) प्रशिक्षण
   (डी) उपर्युक्त सभी
2. कर्मचारियों का प्रशिक्षण है–
   (ए) आवश्यक
   (बी) अनावश्यक
   (सी) अनिवार्य
   (डी) धन की बर्बादी
3. ''प्रबन्ध तथा सेविवर्गीय प्रशासन दोनों एक ही हैं, उन्हें कभी पृथक नहीं किया जा सकता।'' किसका कथन है?
   (ए) कार्ल रोजर्स
   (बी) रॉबिन्स
   (सी) एल ए एप्पले

(डी) उपर्युक्त में कोई नहीं

4. ''मानव संसाधन प्रबन्ध का आशय संसाधनों की प्राप्ति, विकास का नियोजन, संगठन निर्देशन तथा नियंत्रण से है।'' किसका कथन है?

(ए) स्कॉट

(बी) फिलिप्पो

(सी) जोन्स

(डी) उपर्युक्त में कोई नहीं

5. मानव संसाधन संगठन संरचना में किस सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए?

(ए) सरलता

(बी) निरन्तरता

(सी) वैयक्तिकता

(डी) उपर्युक्त में कोई नहीं

6. 'निष्पादन का मूल्यांकन' किसके द्वारा किया जाता है?

(ए) परिणाम

(बी) आधुनिकीकरण

(सी) संगठनात्मक संरचना

(डी) उपर्युक्त में कोई नहीं

7. मानव संसाधन विकास अवधारणा का परिचय कब हुआ?

(ए) 1950

(बी) 1960

(सी) 1965

(डी) 1969

1.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (डी) 2. (ए) 3. (सी) 4. (बी) 5. (बी) 6. (ए) 7.(डी)

1.14 स्वपरख प्रश्न

1. मानव संसाधन प्रबन्ध का अर्थ एवं प्रकृति बताइए।
2. मानव संसान प्रबन्ध को परिभाषित कीजिए। इसके उद्देश्य क्या हैं?
3. मानव संसाधन प्रबन्धक के दायित्वों की संक्षिप्त व्याख्या कीजिए।
4. मानव संसाधन प्रबन्धक की भूमिका का वर्णन कीजिए।
5. मानव संसाधन प्रबन्ध एवं सेविवर्ग प्रबन्ध में अंतर स्पष्ट कीजिए।
6. मानव संसाधन प्रबन्ध के सम्मुख आने वाली चुनौतियों का उल्लेख कीजिए।
7. मानव संसाधन प्रबन्ध के प्रमुख सिद्धान्त लिखिए।
8. मानव संसाधन प्रबन्ध के कार्यों का वर्णन कीजिए।
9. मानव संसाधन प्रबन्ध के उद्भव एवं विकास पर प्रकाश डालिए।

1.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. प्रसाद एल.एम. प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुलतान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2010
2. एण्डरसन, राबर्ट, प्रोफेसनल सेल्स मैनेजमेंट , प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1981
3. स्मिथ एफ. रोजर, सेल्स मैनेजमेंट–ए प्रैक्टिसनर्स गाइड प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1987

इकाई 2 मानव संसाधन नीतियां एवं रणनीतियां (Human Resource Policies & Strategies)

इकाई की रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 मानव संसाधन नीति का अर्थ एवं परिभाषा
2.3 मानव संसाधन नीति के स्रोत
2.4 मानव संसाधन नीति का वर्गीकरण
2.5 मानव संसाधन नीति के सिद्धान्त
2.6 मानव संसाधन नीति बनाने की प्रक्रिया
2.7 मानव संसाधन नीति की विषय वस्तु
2.8 आदर्श मानव संसाधन नीति की विशेषतायें
2.9 मानव संसाधन प्रबन्ध रणनीति
2.10 सारांश
2.11 शब्दावली
2.12 बोध प्रश्न
2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
2.14 स्वपरख प्रश्न
2.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- मानव संसाधन नीति अथवा सेविवर्गीय नीति का आशय स्पष्ट कर सकें।
- मानव संसाधन नीति के स्रोतों से परिचित हो सकें।
- मानव संसाधन नीति के विविध भेदों को जान सकें।
- मानव संसाधन नीति के विभिन्न सिद्धान्तों को समझ सकें।
- मानव संसाधन नीति बनाने के विविध चरणों को समझ सकें।
- मानव संसाधन नीति की विषय–वस्तु का वर्णन कर सकें।
- आदर्श मानव संसाधन नीति की विशेषताएं बता सकें।
- मानव संसाधन रणनीति का आशय और इसे बनाने की रीति का वर्णन कर सकें।

2. 1 प्रस्तावना

मानव संसाधन नीति का अभिप्राय ऐसी नीति से है जो मानव संसाधन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर निर्णय लेते समय प्रबन्धकों का मार्गदर्शन करती है। प्रत्येक संस्था में कुछ ऐसे कार्य होते है, जो बार–बार होते हैं, इनके विषय में नीति में दिशा निर्देश दिये रहते हैं। इसी प्रकार, संस्था में कुछ सम्भावित समस्यायें होती हैं जोकि प्रायः प्रकट होती हैं, इनके समाधान के लिये नीति में दिशा निर्देश होते हैं। संगठन में भर्ती, चयन, स्थानान्तरण, पदोन्नति, पदावनति, सेवा मुक्ति, कर्मचारियों की प्रबन्ध में भागीदारी, मानव संसाधन की लाभ मे भागीदारी आदि विषयों पर स्पष्ट नीति निर्धारण किया जाता है। नीतियों का कई आधार पर वर्गीकरण किया गया है, उदाहरण के लिये – आधारभूत नीति,

सामान्य नीति, विशिष्ट नीति। मानव संसाधन नीति में सम्मिलित हैं– अधिप्राप्ति नीति, विकास नीति, एकीकरण नीति, संधारण नीति, क्षतिपूर्ति नीति। नीति सदैव लिखित होनी चाहिए। साथ ही, नीति का लोचपूर्ण होना आवश्यक है जिससे कि बदलते हुए अवसरों पर निर्णय लेने में कठिनाई का सामना न करना पड़े। नीति का सम्बन्धित पक्षकारों में प्रचार–प्रसार होना चाहिए, तभी नीति के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है।

2.2 मानव संसाधन नीति का अर्थ एवं परिभाषा

मानव संसाधन नीति सामान्य नियमों का एक संकलन है। नीति का आधार प्रबन्धकीय दृष्टिकोण होता है। यह प्रबन्धकीय निर्णयों की सीमाओं का निर्धारण करती है। नीति प्रबन्धकों के लिये मार्ग मानचित्र (road map) का कार्य करती है। नीति निर्णय लेने के लिये सामान्य निर्देश होते हैं। नीति के आधार पर निर्णय लेना सरल हो जाता है। साथ ही, निर्णय त्वरित लिया जा सकता है। अधीनस्थों को बार–बार अपने उच्च अधिकारी से आदेश और निर्देश लेने की आवश्यकता नहीं होती। नीति मार्ग दर्शक का कार्य करती है। नीति संगठन के सामान्य उद्देश्यों के अनुरूप निर्धारित की जाती है। इसलिये इसके माध्यम से उद्देश्यों की पूर्ति सरल हो जाती है। जहां तक सेविवर्ग नीति का सम्बन्ध है, यह विशेष रूप से कर्मचारियों से सम्बन्धित होती है। यह श्रमिकों को उनकी भूमिका स्पष्ट करती है। साथ ही, मानव संसाधन प्रबन्धक का मार्ग दर्शन करती है। सामान्यतः कर्मचारी नीति भर्ती, चुनाव, पदोन्नति, व्यक्तित्व विकास, क्षतिपूर्ति, अभिप्रेरणा आदि से सम्बन्धित होती है। नीति को नियमावाली कहा जा सकता है। प्रबन्ध विभिन्न क्षेत्रों के लिये पृथक–पृथक नीति निर्धारित करता है, जैसे– कर्मचारी नीति, भर्ती नीति, कीमत नीति, विज्ञापन नीति आदि।

एडबिन बी. फ्लिप्पो के अनुसार, ''नीति एक मानवकृत नियम अथवा एक पूर्व निश्चित कार्यप्रणाली है, जो संगठन के निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किये जाने वाले कार्यों का निर्देशन करती है। यह एक दीर्घकालिक योजना है जो कर्मचारियों को कार्य करने के लिये दिशा प्रदान करती है।''

"A Policy is a man made rule or pre-determined course of action that is established to guide the performance of work towards the organization. It is type of standing plan that serves to guide subordinates in the execution of their tasks." – Edwin B. Flippo

रिचर्ड पी. कैल्हन के शब्दों में, ''सेविवर्गीय नीतियां कार्य को रूप प्रदान करती हैं। ये सामान्य प्रमाप अथवा आधार प्रस्तुत करती है, जिनके आधार पर निर्णय लिये जा सकें। संगठन के मूल्य, दर्शन, विचार तथा उद्देश्य नीतियों मे परिलक्षित होते हैं।''

The Personnel policies constitute guide to action. They furnish the general standards or basis on which decisions are reached. Their genesis lies in an organisation's value philosophy, concepts and principles. – Richard P. Calhoon

2. 3 मानव संसाधन नीति के स्रोत

नीति निर्धारण का आधार संस्था के उद्देश्य और दृष्टिकोण होता हैं। किन्तु, नीति में विषयगत नियमों, कानून और क्षेत्र की परम्पराओं का संदर्भ अनिवार्य रूप से लिया जाता है। पूर्व में घोषित नीति अथवा अन्य संगठनों में प्रभावी नीति मानव संसाधन नीति का प्रमुख स्रोत बनती है। मानव संसाधन सम्बन्धी सभी विषय, जैसे– वेतन, कार्य के घण्टे, पेंशन योजना, कर्मचारी कल्याण, कार्य की दशायें आदि मानव संसाधन नीति की विषय वस्तु बनते हैं। इनसे सम्बन्धित कानून का संदर्भ लिया जाता है और उसके अनुसार ही नीति बनाई जाती है। अन्यथा, नीति विधि सम्मत नहीं होगी और दोषपूर्ण हो जायेगी। नीति में श्रम संघों के दृष्टिकोण और विचार को भी ध्यान में रखा जाता है। नीति के विविध स्रोतों को निम्नवत् सूचीबद्ध किया जा सकता है:

1. संस्था के उद्देश्य एवं दर्शन
2. संगठन की पुरानी नीतियां
3. उद्योग की वर्तमान नीतियां
4. उच्च स्तरीय प्रबन्धकों का दृष्टिकोण
5. निम्न प्रबन्ध स्तर के सुझाव
6. राजकीय नियम एवं कानून
7. श्रम संघों का दृष्टिकोण एवं प्रत्यावेदन
8. राष्ट्रीय अर्थव्यस्था का वातावरण
9. अन्तर्राष्ट्रीय परम्परायें

2.4 मानव संसाधन नीति का वर्गीकरण

सेविवर्गीय नीतियों को तीन प्रमुख श्रेणियों में बांटा जा सकता है– आधारभूत नीति, सामान्य सेविवर्गीय नीति, विशिष्ट सेविवर्गीय नीति। इन्हीं शीर्षकों को दूसरे नाम भी दिये जा सकते हैं, जैसे– केन्द्रीय नीति, आन्तरिक नीति, कार्यात्मक समूह नीति।

आधारभूत नीति को कम्पनी की सामान्य नीति भी कहा जाता है। यह नीति पूरे संगठन पर लागू होती है। प्रत्येक विभाग द्वारा इस नीति का पालन किया जाता है। यह नीति उच्च प्रबन्ध द्वारा तय की जाती है। इसमें यह स्पष्ट किया जाता है कि कम्पनी देश के संसाधनों का उचित एवं विवेकपूर्ण उपयोग किस प्रकार करेगी। साथ ही, अपने ग्राहक, अंशधारी, सेविवर्ग, समाज एवं स्वयं के हितों के मध्य किस प्रकार समन्वय करेगी। कर्मचारियों के चयन, प्रशिक्षण और पर्यवेक्षण आदि विषयों पर इसमें मार्गदर्शक बिन्दुओं का उल्लेख किया जाता है। वित्तीय उद्देश्य और भावी योजनायें इस नीति में स्पष्ट की जाती हैं।

सामान्य सेविवर्गीय नीति में प्रजातान्त्रिक प्रणाली के आधार पर संगठन की गतिविधियों का गठन किया जाता है। इसमें अधिकारों के प्रत्यायोजन की व्यवस्था दी जाती है। सभी कर्मचारियों को योग्यतानुसार पदोन्नति एवं विकास के लिये योजना प्रस्तुत की जाती है। कार्य के लिये अच्छा वातावरण बनाने की दिशा में किये जाने वाले उपायों का उल्लेख रहता है।

विशिष्ट सेविवर्गीय नीति में कर्मचारी वर्ग से सम्बन्धित विषयों पर विस्तृत प्रकाश डाला जाता है। इस नीति में कर्मचाारियों के कार्य मूल्यांकन सम्बन्धी मानदण्डों का उल्लेख किया जाता है। सम्प्रेषण प्रणाली के बारे में स्पष्ट रूप से लिखा होता है। श्रम संघो के साथ सम्बन्धों के बारे में दिशा निर्देश दिये होते हैं। वेतन संरचना की प्रमुख बातें इसमें बतायी जाती हैं। कर्मचारियों के अधिकारों और उत्तरदायित्वों की व्याख्या की जाती है, ताकि संगठन का कार्य सुचारू ढ़ग से चल सके।

एडबिन बी. फि्लप्पो द्वारा प्रस्तावित : सेविवर्गीय नीतियों का वर्गीकरण (Classification of Personnel Policies- by Edwin B. Filppo)

फि्लप्पों ने सेविवर्गीय नीतियों को पांच भागों में बांटा है –

1. अधिप्राप्ति नीतियां ;Procurement Policies)
2. विकास नीतियां (Development Policies)
3. एकीकरण नीतियां (Integration Policies)
4. अनुरक्षण नीतियां (Maintenance Policies)
5. क्षतिपूर्ति नीतियां (Compensation Policies)

1. **अधिप्राप्ति नीतियां (Procurement Policies)**. सेविवर्ग प्रशासन का प्राथमिक कार्य है कि योग्य एवं दक्ष कर्मचारियों की खोज कम्पनी के लिये की जाये, इसके लिये उचित नीति निर्धारण सेविवर्गीय नीति का पहला भाग है। इस सम्बन्ध में, विविध कार्यों के लिये न्यूनतम योग्यता तय की जाती है। भर्ती के स्रोत चिन्हित किये जाते हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाये कि किन पदो के लिये भर्ती के किस स्रोत का आश्रय लिया जायेगा। चयन प्रक्रिया के विषय में इसमें उल्लेख किया जाता है जिसमें विविध परीक्षणों का विवरण दिया जाता है। आवेदन करने की रीति का वर्णन होता है। परीक्षणों में मुख्य रूप से लिखित परीक्षा, कौशल परीक्षा, साक्षात्कार, मनोवैज्ञानिक परीक्षण एवं स्वास्थ्य जांच को सम्मिलित किया जाता है। अधिप्राप्ति नीति इसप्रकार बनाई जानी चाहिए कि कानूनी अड़चनें न आयें और विवाद उत्पन्न होने की सम्भावना कम से कम हो।
2. **विकास नीतियां (Development Policies)** –विकास नीति की विषयवस्तु मुख्य रूप से प्रशिक्षण एवं पदोन्नति से सम्बन्धित होती है। प्रशिक्षण के दो प्रमुख भेद हैं– आरम्भिक प्रशिक्षण, पुनश्चर्या प्रशिक्षण। इसके अतिरिक्त, प्रबन्धकीय स्तर पर प्रशिक्षण को अधिशासी विकास कहा जाता है। संगठन में व्यवस्थित पदोन्नति नीति का निरूपण किया जाता है। पदोन्नति के दो प्रमुख भेद हैं– समयबद्ध प्रोन्नति, निष्पादन आधारित पदोन्नति। प्रशिक्षण और पदोन्नति प्रावधानों के बारे में संगठन में निरन्तर शोध एवं अनुसंधान की व्यवस्था की जाती है। अतः शोध एवं अनुसंधान भी नीति का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है।
3. **एकीकरण नीतियां (Integration Policies)** –वैयक्तिक लक्ष्यों और संगठन के लक्ष्यों में प्रायः टकराव की स्थिति होती है। एकीकरण नीति का उद्देश्य होता है कि व्यक्तिगत हित और सामूहिक हितों में समन्वय स्थापित किया जाये। एकीकरण नीति के अन्तर्गत श्रम संघों को मान्यता देना, सम्प्रेषण प्रणाली का प्रभावी होना, सुदृढ़ परिवाद निवारण प्रणाली, श्रम सहभागिता आयाम, समूह गतिविधि (group dynamics) आदि सम्मिलित हैं। सम्मेलन, गोष्ठियां, सुझाव प्रणाली, सामूहिक विचार विनिमय भी एकीकरण नीति के अंग हैं।
4. **अनुरक्षण नीतियां (Maintenance Policies)** – संयत्र और कार्य स्थल के अच्छे रख–रखाव से कम्पनी की प्रतिष्ठा बढ़ती है। कर्मचारियों का मनोबल ऊंचा रहता है और प्रेरणाप्रद वातावरण बना रहता है। अच्छे यन्त्र, उपकरण, सुरक्षा प्रबन्ध, बेहतर कार्य दशायें कर्मचारियों को अभिप्रेरित करती हैं। समुचित सुरक्षा प्रबन्ध कार्य स्थल पर दुर्घटनाओं की सम्भावना को कम करते हैं। उचित वेतन, न्यायपूर्ण सुविधायें, स्वास्थ्य अनुकूल वातावरण, चिकित्सा सुविधायें भी अनुरक्षण नीतियों में शामिल किये जाते हैं।
5. **क्षतिपूर्ति नीतियां (Compensation Policies)** – कर्मचारी अपने कार्य के प्रतिफल में उचित क्षतिपूर्ति की अपेक्षा करते हैं। यह अपेक्षा पूरा न होने की स्थिति में, श्रमिकों का संगठन में बने रहना सम्भव नहीं होगा। अपने संगठन के लिये क्षतिपूर्ति नीति का निर्धारण करते समय प्रतियोगी कम्पनियों की क्षतिपूर्ति नीति का सन्दर्भ लिया जाता है। यदि दूसरे संस्थानों में मजदूरी दरें, भुगतान प्रणालियां, कार्य पर सुविधायें बेहतर हैं, तब श्रमिकों का रुझान उन नियोक्ताओं की ओर होगा। श्रम आवृत्त (labour turnover) को नियंत्रित रखने के लिये क्षतिपूर्ति नीति को प्रतियोगी बनाये रखा जाता है। मजदूरी की दरें, भुगतान प्रणाली, प्रेरणात्मक योजनायें, लाभ सहभागिता, बीमा योजनायें एवं सामाजिक सुरक्षा योजनायें आदि क्षतिपूर्ति नीति का अंग होते हैं।

2.5 मानव संसाधन नीति के सिद्धांत (Principles of Human Resource Policy)

पीटर एफ. ड्रकर का कथन है, ''सेविवर्गीय नीतियां ऐसी होनी चाहिए जो कम्पनी की वांछित प्रतिष्ठा के अनुकूल हों तथा सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों के अनुरूप हों।'' इस कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि मानव संसाधन नीति के तीन मूल तत्व हैं–(1) नीति कम्पनी के अनुकूल हो (2) नीति समाज के अनुकूल हो (3) नीति मानव मूल्यों के अनुरुप हो। एक दृष्टिकोण से कहा जाये तो सेविवर्गीय नीति के दो प्रमुख आयाम हैं – पहला, संगठन हित और दूसरा, कर्मचारी हित। दोनों पक्षों के हित साधन के उद्देश्य से सेविवर्गीय नीति निर्धारित की जाती है। सेविवर्गीय नीति का निर्धारण करते समय निम्न सिद्धान्तों को पालन किया जाता है।

(1) **सामान्य हित का सिद्धान्त (Principle of Common Interest)**– कर्मचारी और नियोक्ता दोनों का हित इसमें है कि संगठन आर्थिक रूप से प्रगति करे। संगठन की आर्थिक उन्नति पर ही निर्भर करता है कि कार्मिकों के वेतन और अनुलाभों में वृद्धि की जा सके। व्यवसाय की सफलता पर ही कर्मचारियों को अधिक वेतन, बेहतर सुविधायें, ज्यादा सुरक्षा सुविधायें प्रदान की जा सकती हैं। व्यवसाय की सफलता से नियोक्ता और कर्मचारी वर्ग का हित साधन होता ही है, साथ ही राष्ट्रीय उत्पादन में वृद्धि होती है। फलस्वरूप, सम्पूर्ण समाज लाभान्वित होता है। इसप्रकार यह सामान्य हित का सिद्धान्त है।

(2) **विकास का सिद्धान्त (Principle of Development)**– सेविवर्गीय नीति बनाते समय यह विचार किया जाता है कि कर्मचारियों को संगठन में विकास के पर्याप्त अवसर हों। इसके लिये प्रत्येक श्रेणी के लिये एक करिअर पाथ (career path) की योजना रखी जाती है। समयबद्ध, निष्पादन आधारित और प्रतियोगिता आधारित पदोन्नति की व्यवस्था की जाती है। पदोन्नति के अवसर कार्मिकों को सदैव अभिप्रेरति करते हैं। प्रत्येक कर्मचारी अधिक वेतन के लिये प्रयत्नशील रहता है, वह उच्च पद प्राप्त करना चाहता है और अधिक उत्तरदायित्व वहन करना चाहता है। नीति में स्पष्ट होना चाहिए कि जो योग्य और कर्मठ व्यक्ति कम्पनी हित में प्रयत्नशील रहते हैं उन्हें प्रगति के अवसर किस प्रकार उपलब्ध कराये जायेंगे।

(3) **परिवर्तन का सिद्धान्त (Principle of Change)**– यह मानवीय प्रकृति है कि किसी भी परिवर्तन को आरम्भ में स्वीकार नहीं किया जाता है और वह निश्चय ही आन्दोलन का विषय बनता है। इसके लिये प्रबन्धकों को नीति के माध्यम से कर्मचारियों का इतना विश्वास प्राप्त करना चाहिए कि परिवर्तन का सभी व्यक्ति स्वागत करें तथा परिवर्तन लागू करने में अपना सहयोग दें। इस हेतु प्रबन्धक बुलेटिन, बोर्ड, पत्र–पत्रिकाओं, फिल्मों, कमेटियों, श्रम संघों एवं प्रबन्धकों की बैठकों, खुले पत्रों आदि विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। किसी भी प्रकार के परिवर्तन के अनुकूल वातावरण तैयार किया जाना चाहिए। कठिन परिस्थितियों में प्रबन्धकों को निर्भीक होकर श्रमिक से विचार विमर्श करके उनके भय, प्रतिक्रिया तथा शंकाओं का समाधान करने के लिये तैयार रहना चाहिए तथा प्रबन्धकों को कठिन समस्याओं का निवारण करने के लिये उचित मार्गदर्शन करना चाहिए। तकनीकी परिवर्तनों के कारण संगठन में कई बार बड़े परिवर्तन आवश्यक हो जाते हैं। इसके नये प्रशिक्षण की आवश्यकता हो सकती है जिसकी समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।

(4) **कर्मचारी सहभागिता सिद्धान्त (Principle of Employee Participation)**– निर्णयों को लागू करना आसान हो जाता है, यदि निर्णयन की प्रक्रिया में कर्मचारियों को सम्मिलित किया गया हो। श्रमिकों में आत्म सम्मान की भावना उदित होती है और निर्णय केवल प्रबन्धन का नहीं, अपितु सबका निर्णय बन जाता है और सर्वमान्य हो जाता है। श्रमिकों, श्रम संघों तथा पर्यवेक्षकों को बिना

विश्वास में लिये जो फैसले किये जाते हैं, उनके सफल होने में संदेह रहता है। श्रमिकों और श्रम संघों के सहयोग से बनाई गई नीतियां अधिक सफल होती हैं। इस उद्देश्य से सुझाव प्रक्रिया को सुदृढ़ और प्रभावी बनाया जाता है। समितियों का गठन किया जाता है। निर्णयन में कर्मचारियों की सहभागिता सुनिश्चित की जाती है।

(5) **कार्य की मान्यता का सिद्धान्त (Principle of Recognition)**– संगठन में वित्तीय प्रेरणाओं के साथ–साथ गैर–वित्तीय प्रेरणायें भी काफी महत्वपूर्ण होती हैं। श्रमिकों को उनके कार्य के लिय पारिश्रमिक दिया जाता है। इससे उनकी आधारभूत आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं। किन्तु, इसके अतिरिक्त उनकी मनोवैज्ञानिक आवश्यकतायें होती हैं जिनके विषय में प्रबन्धक जानते हैं और उनकी पूर्ति के समुचित उपाय करते हैं। इनमें प्रमुख है कि उनके कार्य को मान्यता दी जाये। उचित समय पर उनकी प्रशंसा की जाये। इससे उनके आत्म सम्मान का पोषण होता है। कर्मचारियों की अपेक्षा होती है कि उनके काम और उनकी भूमिका को समाज में स्वीकृति और सम्मान मिले।

(6) **श्रम संघों की मान्यता का सिद्धान्त (Principle of Trade Union Recognition)**– श्रम संघ संगठन में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। श्रम संघों के सहयोग से ही अच्छे श्रम सम्बन्धों की स्थापना होती है। संस्थाओं में श्रम संघों की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है। इसलिये, सेविवर्गीय नीति में श्रम संघों को मान्यता देने के बारे में स्पष्ट मत दिया जाना चाहिए जिससे उनकी भूमिका का विषय में कोई भ्रम की स्थिति न रहे।

2.6 मानव संसाधन नीति बनाने की प्रकिया (Formulation of HR Policy)

संगठन को कुशलता से संचालित करने के लिये व्यवस्थित नीति की आवश्यकता होती है। स्पष्ट नीति के आधार पर विविध निर्णय लिये जाते हैं। फलस्वरूप, आदेश की एकरूपता बनाये रखी जा सकती है। नीति के अभाव में मध्य स्तरीय प्रबन्धकों को बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है क्योंकि वे स्वयं निर्णय लेने में असमर्थता का अनुभव करते हैं। नीति विद्यमान होने पर, प्रबन्धकों को अपने अधीनस्थों का मार्गदर्शन करना सरल हो जाता है। नीति पालन करने के लिये प्रत्येक पदाधिकारी बाध्य होता है। नीति निर्धारण का कार्य एक जटिल कार्य है। नीति बनाने का कार्य उच्च प्रबन्धकों द्वारा किया जाता है। इस कार्य में विशेषज्ञों की मदद ली जाती है । साथ ही, सभी पक्षकारों को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित किया जाता है। विशेष रूप से, अधिशासी वर्ग से व्यापक मंत्रणा की जाती है। इसके अतिरिक्त श्रमिकों और श्रम संघों से भी परामर्श लिया जाता है। नीति बनाने की प्रक्रिया के पांच प्रमुख चरण हैं–

1. तथ्यों एवं सूचनओं का एकत्रीकरण
2. नीति ड्राफ्ट को लिखित रूप में तैयार करना
3. विभिन्न स्तरों पर नीति को प्रेषित करना एवं सुझाव आमंत्रित करना
4. नीति लागू करना
5. समीक्षा एवं परिवर्तन

1. **तथ्यों एवं सूचनओं का एकत्रीकरण** – कर्मचारियों की नियुक्ति से पूर्व नीति निर्धारण का कार्य कर लिया जाना चाहिए। यह कार्य उच्च प्रबन्धक द्वारा सम्पन्न किया जाता है अथवा किसी विशेषज्ञ को यह काम सौंपा जाता है। तथ्यों को एकत्र करने वाले व्यक्ति को स्वयं विषय का जानकार होना चाहिए। नीति निर्माण के संदर्भ में कम्पनी के बाहर की स्थितियां भी उतनी ही महत्वपूर्ण होती हैं जितनी कम्पनी की आन्तरिक स्थितियां। तथ्यों की खोज करते समय श्रम संघों के साथ हुए समझौतों, मानवीय हितों, सरकारी नियमों, लागू

अधिनियमों का समुचित सन्दर्भ लिया जाता है। इस अवसर पर साक्षात्कार एवं सम्मेलन बहुत सहायक सिद्ध होते हैं। इससे विभिन्न पक्षकारों के दृष्टिकोण को समझने का मौका मिलता है। इस तरह परस्पर एक सहमति विकसित होती है। बाद में, इस नीति को लागू करना आसान हो जाता है। सूचनाओं के एकत्रीकरण का कार्य पर्याप्त धैर्य के साथ किया जाना चाहिए। सभी विभागों का सहयोग लिया जाना चाहिए। अन्यथा, बाद में इस नीति पर सबका समर्थन मिलना कठिन हो जाता है।

2. **नीति ड्राफ्ट को लिखित रूप में तैयार करना** – नीति का लिखित होना आवश्यक हो जाता है। जब तक नीति लिखित नहीं होती तब तक उसे अधिक विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता। लिखित नीति का अनुपालन भी सुगम होता है। नीति प्रबन्धकों की भावनाओं को प्रस्तुत करती है। नीति आलेखन एक कला है। नीति सम्प्रेषण का एक सशक्त और स्थाई उपकरण है। सम्प्रेषण विशेषज्ञ ही नीति लेखन का कार्य सम्पादित कर सकते हैं। नीति लिखने में भाषा का बहुत महत्व होता है। भाषागत सावधानियां नीति लेखन में बहुत रखी जाती हैं। उपयुक्त शब्दावली के प्रयोग से नीति प्रभावी बनती है। नीति लेखन का काम कानून लेखन जैसा काम है। नीति में प्रबन्धकों की भावना और मंशा स्पष्ट होनी चाहिए। नीति एक रूप में नियमावाली का काम करती है। अतः इसका स्पष्ट और संदेह रहित होना जरूरी होता है।

सामान्य रूप में नीतियां एक नीति पुस्तिका (Policy mannual) के रूप में प्रस्तुत की जाती हैं। इसे हैण्ड बुक अथवा हाउस बुलेटिन भी कहा जाता है। नीति लेखन के विषय में विद्वान रिचर्ड पी. कैल्हन (Richard P. Calhoon) ने लिखा है कि नीति लेखन में निम्न पांच बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए:

- **उद्देश्य** –नीति में, नीति निर्माण का उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए।
- **शब्द चयन**– नीति में शब्दों के चयन में सावधानी रखी जानी चाहिए। किसी को उत्तेजित करने अथवा किसी को आघात पहुंचाने वाले शब्द नहीं होने चाहिए।
- **भाव**– नीति में कर्मचारियों को प्रेरित करने वाले भाव होना चाहिए। नीति से ऐसा कोई संदेश न जाये जिससे सेविवर्ग हतोत्साहित हो।
- **प्रकार** – संगठन के लिये अनुकूल नीति का प्रारूप चुना जाये। विभिन्न बातों के लिये छोटे–छोटे पैराग्राफ बनाये जायें, महत्वपूर्ण अंश को रेखांकित किया जाये, जहां जरूरी हो विषय को बड़े अक्षरों में लिखा जाये। इस प्रकार नीति को आकर्षक बनाने का प्रयास किया जाये।
- **स्पष्टता**– नीति के वाक्यों को स्पष्ट एवं समझने योग्य बनाने के लिये छोटे–छोटे वाक्यों का प्रयोग किया जाना चाहिए। नीति में वाक्य–रचना एवं शब्द–चयन ऐसा हो कि इसका कोई भिन्न अर्थ न निकलता हो।

3. **विभिन्न स्तरों पर नीति को प्रेषित करना एवं सुझाव आमंत्रित करना** – नीति लेखन का कार्य पूरा होने के बाद, नीति का प्रचार किया जाता है। सम्बन्धित पक्षकारों को नीति की प्रति उपलब्ध कराई जाती है। साथ ही, उनकी प्रतिक्रिया, विचार और सुझाव मांगे जाते हैं। ताकि, नीति में यदि किंचित कोई परिवर्तन आवश्यक हो, तब उसे समाहित किया जा सके और नीति को अधिक स्वीकार्य और विवाद रहित बनाया जा सके। विचार विमर्श और

विश्लेषण का एक लाभ यह होता है कि अधीनस्थों में यह सन्देश जाता है कि नीति उन पर थोपी नहीं गई अपितु, उनकी सलाह लेने के बाद तैयार की गई है। इस सन्दर्भ में श्रम संघों की भूमिका भी महत्वपूर्ण होती है। श्रम संघ प्रतिनिधियों की राय बहुत उपयोगी और युक्तिसंगत होती है। बाद में, इस नीति के विरोध की सम्भावना कम हो जाती है। किसी भी नीति के ग्राह्य एवं सफल होने के लिये तीन प्रश्नों का उत्तर मिल जाना चाहिए–

(अ) क्या प्रस्तावित नीति स्पष्ट है?

(ब) क्या यह नीति स्वीकार्य है?

(स) क्या युक्तिसंगत एवं दृढ़ है?

नीति को प्रचलित रीतियों, परम्पराओं, नियमों तथा समान संगठनों में लागू नीतियों के अनुरूप होना चाहिए। नीति की सफलता सुनिश्चित करने के लिये इसे अन्तिम रूप देने से पहले इस पर विचार विमर्श और विश्लेषण जरूरी होता है।

4. **नीति लागू करना –** नीति को अन्तिम रूप देने के बाद, नीति को क्रियान्वित किया जाता है। नीति की परीक्षा अब शुरू होती है। नीति का प्रशासन बहुत महत्वपूर्ण होता है। आदर्श नीति भी कोई प्रभाव उत्पन्न नहीं कर सकती, यदि उसको लागू करने में प्रशासनिक कौशल का अभाव हो। उपक्रम में प्रबन्धक एवं पर्यवेक्षक नीति को क्रियान्वित करते हैं। नीति लागू करने के क्रम में, सर्वप्रथम आवश्यकता इस बात की होती है कि नीति का सम्प्रेषण विधिवत् सभी सम्बन्धित पक्षकारों के मध्य प्रभावी ढ़ग से सुनिश्चित किया जाये। इसके बाद, नीति के अनुवर्तन (follow up) पर सतत् नजर रखी जाती है। नीति के विषय में प्रत्येक कर्मचारी और अधिकारी की प्रतिक्रिया, शिकायत, सुझाव, कठिनाई को गम्भीरता से सुना जाना चाहिए। तभी, नीति की उपयुक्तता का ज्ञान हो सकेगा। संस्था के विविध निर्णय नीति के परिप्रेक्ष्य में ही होने चाहिए।

5. **समीक्षा एवं परिवर्तन –** कार्यशील नीति का समय–समय पर मूल्यांकन किया जाना आवश्यक है। यह कार्य उच्च प्रबन्ध द्वारा किया जाता है। किसी भी व्यवसाय में नीति का होना ही पर्याप्त नहीं है। अपितु, नीति का परीक्षण करते रहना भी आवश्यक है। यदि आवश्यकता के अनुरूप परिवर्तन नीति में नहीं लाया जाता है, तब नीति प्रभावहीन और मृतप्राय हो जाती है। व्यवसाय में ऐसे अवसर आते हैं, जब नीति में संशोधन करना आवश्यक हो जाता है, जैसे – परिस्थितियों में परिवर्तन, सेविवर्ग में परिवर्तन, बाजार व्यवस्था में बदलाव, प्रतियोगियों की नीति में अन्तर, प्रबन्धकों का बदल जाना आदि। कभी–कभी नीति को अधिक सफल और स्वीकार्य बनाने के लिये उसमें सुधार करना जरूरी हो जाता है। यदि नीति में कोई अस्पष्टता है, भ्रान्तिमूलक अंश है, अथवा किसी संदेह को दूर किया जाना जरूरी है, तब नीति में सुधार किया जाता है। नीति को सरल, सुस्पष्ट एवं बोधगम्य बनाया जाता है। नीति की सामयिक समीक्षा एवं तद्नुसार उसमें संशोधन आवश्यक हो जाते हैं।

2. 7 मानव संसाधन नीति की विषय वस्तु (Contents of Human Resource Policy)

सेविवर्गीय प्रबन्ध के क्षेत्र में, विद्वान स्कॉट क्लादियर एवं स्प्रीगल का उल्लेखनीय योगदान है। उन्होंने अनेक स्थानों पर अध्ययन करने के उपरान्त, अपने निष्कर्षों को अपनी पुस्तक 'सेविवर्गीय प्रबन्ध' में संकलित किया। स्कॉट क्लादियर एवं स्प्रीगल के अनुसार सेविवर्गीय नीति के उल्लेखनीय बिन्दु इस प्रकार हैं:

1. कम्पनी के विकास का इतिहास
2. नियोजन सम्बन्धी व्यवहार एवं नियोजन की शर्तें
    - आयु सम्बन्धी प्रतिबन्ध (सेवा प्रारम्भ एवं सेवा निवृत्ति के अर्ह आयु सीमा)
    - शारीरिक परीक्षण
    - मनोवैज्ञानिक तथा कौशल सम्बन्धी परीक्षण
    - मजदूरी भुगतान पद्धति एवं भुगतान का अन्तराल
    - कार्य काल घण्टे, अधिसमय, पारी बदल
    - पदोन्नति का आधार
    - जबरी छुट्टी एवं पुनर्नियुक्ति
    - वरिष्ठता सम्बन्धी नियम एवं अधिकार
    - ग्रेच्युटी
    - स्थाईकरण सम्बन्धी नियम
3. परिवेदना निवारण विधि
4. सुरक्षा सम्बन्धी नियम–उपनियम
5. सामान्य व्यवहार
    - कर्मचारी की पहचान
    - समय कार्ड पंच करना (काम पर आने एवं जाने का समय अंकित करना)
    - औजारों की देखभाल एवं रख–रखाव
    - औजारों को संयत्र से बाहर ले जाने विषयक नियम
    - संस्था के उत्पादन का कय करने पर मिलने पर छूट
    - वेतन प्राप्त करने की विधि
    - अनुपस्थिति – आकस्मिक अवकाश, बीमारी अवकाश
    - घर के पते में परिवर्तन
    - मोटर गाड़ियों के पार्किंग नियम
6. प्रबन्ध एवं कर्मियों के हितों की पारस्परिकता (mutuality of interest)
7. प्रबन्ध एवं कर्मियों में सहयोग एवं सहकारिता
8. कर्मियों को वित्तीय सहायता प्रदान करना
    - बचत एवं ऋण सम्बन्धी कार्यक्रम
    - साख संगठन तथा पारिस्परिक वित पोषण समितियां
    - सामूहिक बीमा
    - लाभ में भागीदारी
    - कार्मिकों के बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध एवं वित्तीय सहायता
    - जबरी छुट्टी एवं अवकाश अवधि के लिये वित्तीय सहायता
9. शिक्षा एवं प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रम

- पदोन्नति के लिये प्रशिक्षण
- प्रशिक्षु प्रशिक्षण
- कार्यशाला, स्कूल, कार्य पर प्रशिक्षण (on the job training)

10. सुझाव पद्धतियां
11. कर्मचारियों के अभिलेख तैयार करना
12. स्वास्थ्य चिकित्सा कार्यक्रम
13. वेतन सहित अवकाश
14. अस्वस्थता के समय सुविधायें तथा भत्ते
15. प्रबन्धकों से मिलने तथा विचार विमर्श करने की विधि तथा स्वतन्त्रता
16. सामाजिक सुरक्षा तथा अन्य क्षतिपूर्ति सम्बन्धी व्यवस्थायें
    - रोजगार क्षतिपूर्ति
    - सेवा निवृत्ति सम्बन्धी नियम एवं भत्ते
    - दुर्घटना के समय की क्षतिपूर्ति
17. सामूहिक क्षतिपूर्ति
    - कार्मिकों का श्रम संगठनों में भाग लेना
    - श्रम संगठनों को मान्यता देना
    - परिवेदना निवारण तथा सामूहिक सौदेबाजी (collective bargaining)
18. कम्पनी की नीतियों के सम्बन्ध में सूचना प्रसारण विधि
19. अनुशासन सम्बन्धी व्यवस्था
20. वेतन रोकने सम्बन्धी प्रावधान

2.8 आदर्श मानव संसाधन नीति की विशेषतायें (Characteristics of a sound Human Resource Policy)

एक मानव संसाधन नीति को सुदृढ़ एवं आदर्श माना जायेगा यदि उसमें निम्नलिखित विशेषतायें विद्यमान हों–

1. **संस्थागत उद्देश्यों से सम्बद्ध (Related with Organisation objectives)** – उद्देश्य प्राप्ति में मानव संसाधन नीतियों की मुख्य भूमिका रहती है। इसलिये ये नीतियां उद्देश्यों पर आधारित होनी चाहिए।
2. **सरल एवं स्पष्ट (simple & clear)** – मानव संसाधन नीति ऐसी होनी चाहिए जिसे संगठन का प्रत्येक व्यक्ति आसानी से समझ सके। यदि नीति की व्याख्या सरल शब्दों में की जायेगी, तब उसे लागू करने में कोई कठिनाई नहीं होगी। संस्था के उद्देश्यों को सरलता से प्राप्त किया जा सकेगा।
3. **लिखित (Documented)** मानव संसाधन नीति लिखित एवं मौखिक दोनों प्रकार की हो सकती है। लेकिन, नीति का लिखित रूप से होना अधिक लाभप्रद होता है। इसके लिखित रूप को हर व्यक्ति एक ही भाव से समझ सकेगा।
4. **स्थायित्व एवं लोचशीलता में सतुंलन(Balance between stability & Flexibility)**– एक अच्छी मानव संसाधन नीति उसे कहा जायेगा जो स्थायित्व एवं लोचशीलता में संतुलन

स्थापित कर सके। एक ओर, नीति में स्थायित्व का गुण होना चाहिए क्योंकि यह लम्बे समय तक प्रबन्धकों का मार्गदर्शन करने के लिये बनाई जाती है। दूसरी ओर, इसमें बदलती परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित होने का गुण भी होना चाहिए। नीतियां ऐसी होनी चाहिए जिन्हें आवश्यकता पड़ने पर बदला जा सके।

5. **व्यापक सम्प्रेषण (wide communication)** – मानव संसाधन नीतियों का बनाना, अर्थपूर्ण तभी माना जायेगा, जबकि इनको उन व्यक्तियों तक पहुंचा दिया जाये, जिनके लिये ये बनाई गई हैं।
6. **व्यावहारिक (Realisitic)** – मानव संसाधन नीतियां ऐसी होनी चाहिए जिन्हें व्यवहार में लाया जा सके। अन्यथा, ये प्रबन्धकों की कार्य कुशलता को कम कर देंगी और संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करना कठिन हो जायेगा।
7. **कर्मचारियों की सहभागिता (Employees Participation)**– जहां तक सम्भव हो, मानव संसाधन नीतियां उन सभी व्यक्तियों से विचार विमर्श के बाद बनायी जानी चाहिए जिनके द्वारा इनका प्रयोग किया जायेगा। ऐसा करने से, वे इनका उत्साहपूर्वक पालन करते हुए, उद्देश्य प्राप्ति मे पूरा सहयोग देंगे।
8. **सामयिक समीक्षा (Periodic Review)**– सभी संस्थाओं के आन्तरिक तथा बाहरी वातावरण में परिवर्तन होते रहते हैं, जैसे – कभी सरकारी नीतियों में परिवर्तन हो जाता हैं, कभी उपभोक्ताओं की रूचि में। इसी प्रकार, कई बार कर्मचारी वर्ग उनकी पदोन्नति आदि के सम्बन्ध में बनाई गई नीतियों से असंतुष्ट होते हैं, अतः इन परिवर्तनों के आधार पर नीतियों में समायोजन करने के लिये समय–समय पर उनकी समीक्षा करते रहना चाहिए।

2.9 मानव संसाधन प्रबन्ध रणनीति (Human Resource Management Strategy)

रणनीति शब्द सेना से लिया गया है जिसका अर्थ है कि शत्रु की तैयारी को देखकर अपनी तैयारी की जाये ताकि उसे परास्त कर विजय हासिल की जा सके। व्यवसाय में इसका आशय लिया जाता है कि प्रतियोगी संस्थाओं का सामना करने के हिसाब से अपनी नीति निर्धारित की जाये । रणनीति का अभिप्राय उस योजना से है जो वातावरणीय अवसरों और खतरों तथा संगठनात्मक खूबियों व कमियों को देखते हुए संगठन व वातावरण में अनुकूलतम संबंध स्थापित करती है। स्वॉट विश्लेषण (SWOT Analysis) रणनीति का आधार होती है। रणनीति दो प्रकार की होती है– (1) आन्तरिक रणनीति (2) बाहरी रणनीति। यदि किसी परिवर्तन से संस्था के अन्दर कोई समस्या उत्पन्न होने वाली है, तब उसका सामना करने के लिये बनाई जाने वाली नीति को आन्तरिक रणनीति कहा जायेगा। उदाहरण के लिये, कारखाने में कम्प्यूटर लगने हैं जिससे कर्मचारियों की छंटनी होगी। इस व्यवस्था को लागू करने से पहले रणनीति बनाई जायेगी क्योंकि परिवर्तन का कर्मचारी वर्ग में विरोध होगा और इसके समाधान की रीति पहले से निश्चित की जानी चाहिए ताकि कर्मचारियों की नाराजगी को कम किया जा सके और संगठन हित में परिवर्तन भी लागू किया जा सके। बाहरी रणनीति, वह रणनीति है जिसे प्रतियोगी संस्थाओं की नीतियों को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है। प्रतियोगियों के द्वारा दी जाने वाली चुनौतियों के समाधान के लिये तैयार कार्यनीति को बाहरी रणनीति कहा जाता है।

कुण्टज एवं ओ' डोनेल के अनुसार, ''रणनीति का अभिप्राय उन दिशाओं से है जिनमें मानवीय तथा भौतिक साधनों का, कठिनाइयों के रहते हुए, चुने हुए उद्देश्यों को प्राप्त करने की सम्भावना को अधिकतम बनाने के लिये विनियोग एवं प्रयोग किया जाना है।''

"Strategy concerns the directions in which human and physical resources will be deployed and applied to maximize the chances of achieving a selected objective in the face of difficulties." – Koontaz & O' Donnell

डेल्टन ई. मैक्फारलैंड के अनुसार,'' रणनीति को अधिकारियों के व्यवहार के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उद्देश्य प्रतियोगी वातावरण में संस्था के अथवा निजी उद्देश्यों में सफलता प्राप्त करना है तथा जिसका आधार दूसरों के वास्तविक या सम्भावित कार्यों का अनुमान होता है।

"The strategy may be defined as the executive behavior where purpose is to achieve success for the company or personal goals in the competitive environment, based on the actual or probable actions of others."—Dalton E. McFarland

रणनीति का निर्धारण (Formulation of Strategy) - रणनीति का निर्धारण अनुकूल परिस्थितियों का लाभ उठाने एवं प्रतिकूल परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिये किया जाता है। रणनीति निर्धारण की प्रक्रिया निम्नलिखित हैः

1. **उद्देश्यों की जानकारी–** रणनीति निर्धारित करते समय, सबसे पहले संस्था के उद्देश्यों की जानकारी होनी चाहिए क्योंकि उद्देश्यों की सीमा में रहते ही रणनीति का निर्धारण किया जाता है।

2. **बाहरी वातावरण का विश्लेषण–** बाहरी तत्वों में राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक, वैधानिक परिस्थितियां, ग्राहक, पूर्तिकर्ता, जनता आदि को सम्मिलित किया जाता है। ये सभी तत्व सामूहिक रूप से व्यवसाय का बाहरी वातावरण बनाते हैं। बाहरी वातावरण में परिवर्तन से अच्छे अवसर भी प्राप्त हो सकते हैं, और खतरा भी पैदा हो सकता है। बाहरी वातावरण में परिवर्तन से प्राप्त होने वाले अनेक अवसर हो सकते हैं, जैसे– नये बाजार का विकास, ब्याज दर में कमी, पूर्तिकर्ताओं से अधिक समय के लिये उधार सुविधा, सकारात्मक सरकारी नीतियां आदि। इसी प्रकार वातावरण में परिवर्तन से अनेक चुनौतियां उत्पन्न हो सकती हैं, जैसे– प्रतियोगिता में वृद्धि, मांग में भारी कमी, उत्पादों का फैशन से बाहर होना, तकनीक का बदल जाना।

3. **आन्तरिक वातावरण का विश्लेषण–** व्यवसाय के आन्तरिक वातावरण में, नीतियां, संगठन ढांचा, प्रबन्ध सूचना प्रणाली, उत्पादन प्रणाली, उत्पादन क्षमता आदि को सम्मिलित किया जाता है। आन्तरिक वातावरण का विश्लेषण व्यवसाय की सुदृढ़ता एवं कमियों को पहचानने में मदद करता है। इसके अन्तर्गत यह देखा जाता है कि व्यवसाय के वित्तीय साधन पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं अथवा नहीं, संगठनात्मक ढांचा कैसा है, प्रबन्धकीय कुशलता का स्तर कैसा है, उत्पादन विधियां कैसी हैं, उत्पादन क्षमता कितनी है, आदि।

4. **विकल्पों का विकास–** व्यवसाय के बाहरी एवं आन्तरिक वातावरण का विश्लेषण करने से समस्याओं के सम्भावित समाधान एवं अनेक विकल्प सामने आ जाते हैं। इसके लिये स्वॉट विश्लेषण (SWOT Analysis) का उपयोग किया जाता है।

5. **विकल्पों का मूल्यांकन–** इस चरण में सभी उपलब्ध विकल्पों का मूल्यांकन किया जाता है ताकि सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चयन किया जा सके। विकल्पों क मूल्यांकन के अन्तर्गत सभी विकल्पों के गुण एवं दोष का अध्ययन किया जाता है।

6. **विशेष रणनीति का चयन–** इस चरण में यह निर्णय लिया जाता है कि विभिन्न विकल्पों में से कौन सा विकल्प सर्वाधिक उपयुक्त ढंग से समस्या का समाधान कर सकता है। उस विकल्प को

ही रणनीति अथवा कार्य नीति का नाम दिया जाता है। सबसे अन्त में, रणनीति को लागू करने का निर्णय लिया जाता है।

HRM Strategy: Strategic Fit

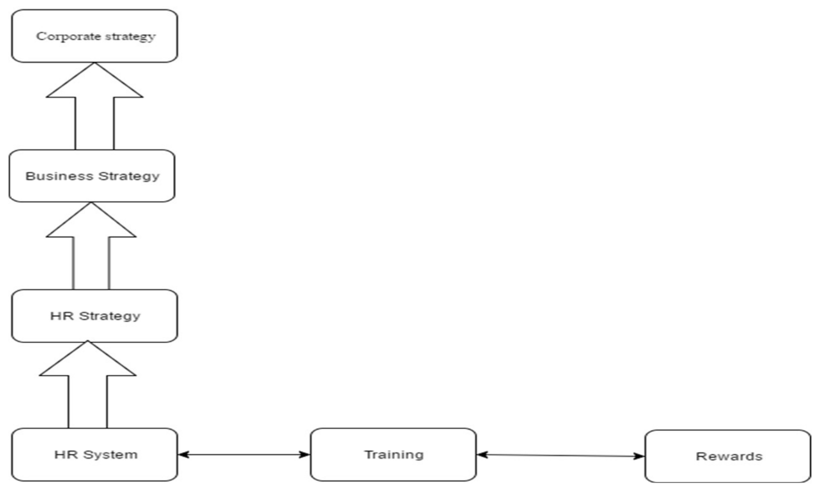

2.10 सारांश

मानव संसाधन नीति नियमों का एक संकलन है। अधीनस्थों को बार–बार अपने उच्च अधिकारी से आदेश और निर्देश लेने की आवश्यकता नहीं होती। नीति मार्ग दर्शक का कार्य करती है। सेविवर्ग नीति विशेष रूप से कर्मचारियों से सम्बन्धित होती है। सामान्यतः कर्मचारी नीति भर्ती, चुनाव, पदोन्नति, व्यक्तित्व विकास, क्षतिपूर्ति, अभिप्रेरणा आदि से सम्बन्धित होती है।

मानव संसाधन नीति के स्रोतों में संस्था के उद्देश्य एवं दर्शन, संगठन की पुरानी नीतियां, उद्योग की वर्तमान नीतियां, उच्च स्तरीय प्रबन्धकों का दृष्टिकोण, निम्न प्रबन्ध स्तर के सुझाव, राजकीय नियम एवं कानून, श्रम संघों का दृष्टिकोण एवं प्रत्यावेदन, राष्ट्रीय अर्थव्यस्था का वातावरण, अन्तर्राष्ट्रीय परम्परायें हैं।
सेविवर्गीय नीतियों को तीन प्रमुख श्रेणियों में बांटा जा सकता है– आधारभूत नीति, समान्य सेविवर्गीय नीति, विशिष्ट सेविवर्गीय नीति। इन्हीं शीर्षकों को दूसरे नाम भी दिये जा सकते हैं, जैसे– केन्द्रीय नीति, आन्तरिक नीति, कार्यात्मक समूह नीति। फ्लिप्पो ने सेविवर्गीय नीतियों को पांच भागों में बांटा है –अधिप्राप्ति नीतिया, विकास नीतियां, एकीकरण नीतिया, अनुरक्षण नीतियां, व क्षतिपूर्ति नीतियां ।
मानव संसाधन नीति के सिद्धांतो में सामान्य हित का सिद्धान्त, विकास का सिद्धान्त, परिवर्तन का सिद्धान्त, कर्मचारी सहभागिता सिद्धान्त, कार्य की मान्यता का सिद्धान्त, व श्रम संघों की मान्यता का सिद्धान्त मुख्य हैं।
मानव संसाधन नीति बनाने की प्रक्रिया में तथ्यों एवं सूचनओं का एकत्रीकरण, नीति ड्राफ्ट को लिखित रूप में तैयार करना, विभिन्न स्तरों पर नीति को प्रेषित करना एवं सुझाव आमंत्रित करना, नीति लागू करना, समीक्षा एवं परिवर्तन शामिल हैं। रणनीति का निर्धारण में उद्देश्यों की जानकारी,

बाह्य वातावरण का विश्लेषण, आन्तरिक वातावरण का विश्लेषण, विकल्पों का विकास, विकल्पों का मूल्यांकन, विशिष्ट व्यूह रचना का चयन शामिल हैं।

2.11 शब्दावली

अधिप्राप्ति नीतियां (Procurement Policies) – भर्ती एवं चयन से सम्बन्धित नीति जिसमें कानूनी पहलुओं का पूरा ध्यान रखा जाता है।

अनुरक्षण नीतियां (Maintenance Policies) – रख–रखाव नीति अथवा संधारण नीति में अच्छे यन्त्र व उपकरण, सुरक्षा प्रबन्ध, स्वस्थ कार्य दशाओं की व्यवस्था की जाती है। बेहतर कार्य दशायें कर्मचारियों को अभिप्रेरित करती हैं।

कार्यात्मक समूह नीति (Functional Policy)– मानव संसाधन के लिये विशेष कार्य नीति जिसका ज्यादा सम्बन्ध परिचालन से होता है।

स्वॉट विश्लेषण (SWOT Analysis) – स्वॉट विश्लेषण (खूबियां, कमजोरियां, अवसर, चुनौतियां), (Strength, Weakness, Opportunities, Threats), खूबियों, कमजोरियों, अवसर और चुनौतियों पर आधारित विश्लेषण ।

रणनीति का निर्धारण (Formulation of Strategy) – स्वॉट विश्लेषण के आधार पर आन्तरिक और बाह्य चुनौतियों के समाधान एवं उपलब्ध अवसरों के सर्वोत्तम दोहन के लिये बनाई गई उद्देश्य विशेष के लिये बनाई गई नीति ।

करिअर पाथ (Career Path) – संगठन में कार्यरत व्यक्तियों के लिये वैयक्तिक प्रोन्नति की श्रृंखला, आजीविका या वृत्ति में पदोन्नति के अवसरों की श्रृंखला को करिअर पाथ कहा जाता है।

समूह गत्यात्मकता (Group Dynamics)- संगठन में मानव समूह के भीतर और दो समूहों के मध्य कर्मचारी व्यवहार एवं मनोविज्ञानपरक आयाम

श्रम आवृत्त (Labour Turnover) –कर्मचारियों के संगठन को छोड़कर जाने की दर श्रम आवृत्त कही जाती है।

2.12 बोध प्रश्न

1. मानव संसाधन नीति की विषय–वस्तु है–
   (ए) भर्ती
   (बी) पदावनति
   (सी) परिवेदना निवारण
   (डी) उपर्युक्त सभी
2. स्वॉट विश्लेषण का आशय है:
   (ए) पर्यवेक्षक कार्य अवसर भय
   (बी) पर्यवेक्षक कमजोरी अवसर प्रशिक्षण
   (सी) विक्रय कार्य ऑनलाइन टास्क
   (डी) शक्ति कमजोरी अवसर भय
3. मानव संसाधन रणनीति का हिस्सा है–
   (ए) विकल्पों का विश्लेषण
   (बी) विकल्पों का विकास
   (सी) सर्वोत्तम विकल्प का चयन

(डी) उपर्युक्त में सभी

4. ''नीति एक मानवकृत नियम अथवा एक पूर्व निश्चित कार्यप्रणाली है, जो संगठन के निहित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये किये जाने वाले कार्यों का निर्देशन करती है।'' किसका कथन है?

(ए) जॉर्ज आर. टैरी

(बी) एडबिन बी. फि्लप्पो

(सी) रिचर्ड पी. कैल्हन

(डी) उपर्युक्त में कोई नहीं

5. मानव संसाधन नीति के स्रोत हैं–

(ए) वर्तमान नीति

(बी) विगत नीति

(सी) उद्योग में जारी व्यवहार

(डी) उपर्युक्त सभी

2.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (डी) 2. (डी) 3. (डी) 4. (बी) 5. (डी)

2.14 स्वपरख प्रश्न

1. सेविवर्गीय नीति को परिभाषित कीजिए। सेविवर्गीय नीतियों का निर्धारण करते समय किन सिद्धान्तों को ध्यान में रखना चाहिए।
2. सेविवर्गीय नीतियों का संगठन में क्या महत्व है? इन नीतियों को किस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है?
3. ''किसी संगठन में सेववर्गीय प्रबन्ध की सफलता मुख्य रूप से सुस्पष्ट सेविवर्गीय नीतियों के निर्धारण पर निर्भर करती है।'' इस कथन के परिप्रेक्ष्य में एक आदर्श सेविवर्गीय नीति की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
4. ''नीति, विचार एवं कार्यवाही का एक पूर्व निर्धारित मार्ग है जिसे स्वीकृत लक्ष्यों एवं उद्देश्यों की ओर मार्गदर्शक की भांति परिभाषित एवं सुस्थापित किया जाता है।'' एडबिन बी. फिलप्पो के इस कथन की विवेचना कीजिए और सेविवर्गीय नीतियों के विभिन्न सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।
5. मानव संसाधन रणनीति क्या अर्थ है? मानव संसाधन रणनीति बनाने की विधि समझाइए।

संकेत– इस अध्याय के प्रश्नोत्तरों की दृष्टि से सेविर्गीय नीति एवं मानव संसाधन नीति को समानार्थी समझा जाये। यद्यपि, प्रथम इकाई में सेविवर्ग एवं मानव संसाधन में अन्तर किया गया है।

2.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. प्रसाद एल.एम. प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुलतान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2010
2. एण्डरसन, राबर्ट, प्रोफेसनल सेल्स मैनेजमेंट , प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1981
3. स्मिथ एफ. रोजर, सेल्स मैनेजमेंट–ए प्रैक्टिसनर्स गाइड प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1987

इकाई 3 कार्य विश्लेषण एवं कार्य डिजाइन (Job Analysis & Job Desgin)

इकाई की रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 कार्य विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा
3.3 कार्य विश्लेषण की उपयोगिता
3.4 कार्य विश्लेषण के अंग – कार्य विवरण, कार्य विशिष्टता विवरण एवं कार्य निष्पादन प्रमाप विवरण
3.5 कार्य विश्लेषण की प्रमुख तकनीकें
3.6 कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया
3.7 कार्य अभिरूप (डिजाइन)
3.8 सारांश
3.9 शब्दावली
3.10 बोध प्रश्न
3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर
3.12 स्वपरख प्रश्न
3.13 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- कार्य विश्लेषण के विविध आयामों से परिचित हो सकेंगे।
- कार्य विश्लेषण अथवा कृत्य विश्लेषण का अर्थ और परिभाषा कर सकेंगे।
- कार्य विश्लेषण की उपयोगिता और महत्व बता सकेंगे।
- कार्य विवरण की विषय वस्तु और इसके प्रारूप को जान सकेंगे।
- कार्य विशिष्टिता विवरण की विषय सामग्री और इसके प्रतिरूप को समझ लेंगे।
- कार्य विश्लेषण की विविध विधियों से परिचित हो जायेंगे।
- कार्य विश्लेषण में प्रयुक्त प्रक्रिया के विभिन्न चरणों को समझ सकें।
- कार्य अभिरूप का आशय, कार्य अभिरूप और कार्य विश्लेषण में भेद कर सकें।

3.1 प्रस्तावना

मानव संसाधन प्रबन्ध में कार्य विश्लेषण अथवा कृत्य विश्लेषण का बहुत महत्व है। उपक्रम में सम्पादित होने वाले कार्यो का सूक्ष्म वर्गीकरण किया जाता है। किन व्यक्तियों के द्वारा ये काम किये जाने हैं और उनमें अपेक्षित योग्यतायें क्या होनी चाहिए, यह जानना मानव संसाधन प्रबन्धक के लिये बहुत प्रासंगिक होता है। कार्य विश्लेषण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत कृत्य विशेष से सम्बन्धी समस्त सूचनाओं का एकत्रीकरण एवं अध्ययन किया जाता है। व्यक्तियों को कार्य सौंपे जाने से पूर्व, उन कार्यों से सम्बन्धित क्रियाओं, कर्तव्यों एवं सम्बन्धों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाता है। विभिन्न कार्यों के विवरण तैयार किये जाते हैं, जिनमें कार्य के सम्बन्ध मे तथ्यात्मक सूचनायें होती हैं। किसी कार्य के लिये वांछित योग्यताओं का विवरण दूसरे पत्रक में तैयार किया जाता है जिसे

कार्य विशिष्टता अथवा व्यक्ति विशिष्टता विवरण कहा जाता है। कार्य विश्लेषण ही संगठन में मानव शक्ति नियोजन, भर्ती, चयन एवं नियुक्ति, प्रबन्धकीय विकास, प्रशिक्षण, मूल्यांकन का आधार बनता है। कार्य विश्लेषण निम्न प्रयोजनों के लिये किया जाता है–

- कार्य विशेष के बारे में सामान्य समझ विकसित करना
- स्थानान्तरण, पदोन्नति एवं परिवेदनाओं के लिये आयोजन करना
- सत्ता की सीमाओं को परिभाषित करना
- दोषपूर्ण कार्य विधियों का पता लगाना
- कर्मचारियों को वैज्ञानिक मार्गदर्शन प्रदान करना

3.2 कार्य विश्लेषण का अर्थ एवं परिभाषा

मानव संसाधन प्रबन्ध में कार्य विश्लेषण अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय है। कर्मचारी और नियोक्ता के मध्य सर्वाधिक महत्वपूर्ण कड़ी है – कार्य । उपक्रम में किये जाने वाले प्रत्येक कार्य का विश्लेषण किया जाता है। यह विश्लेषण ही कर्मचारियों के चयन, प्रशिक्षण एवं पदोन्नति का आधार बनता है। किस कार्य के लिये किस प्रकार की योग्यता की आवश्यकता होगी, यह कार्य विश्लेषण का प्रमुख पहलू है। कार्य विश्लेषण से ही विशिष्टीकरण का मार्ग प्रशस्त होता है। कार्य व्यापक शब्द है, इसके अन्तर्गत आने वाले उपकार्यों को भी सम्मिलित किया जाता है। कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत कार्य का विस्तृत अध्ययन किया जाता है। इसमें कार्य के प्रकार, कार्य के लिये न्यूनतम योग्यतायें, परिस्थितियां जिनमें कार्य सम्पादित किया जाना है, का अध्ययन किया जाता है। कार्य विश्लेषण में कार्य का सूक्ष्म परीक्षण किया जाता है। कार्य विश्लेषण एक प्रक्रिया है जिसमें कार्य विशेष से सम्बन्धित कर्तव्यों की व्याख्या की जाती है। यह कार्य का सम्पूर्ण अध्ययन है। इसके द्वारा कार्य के सम्बन्ध में कर्मचारी के दायित्व, कर्तव्य, कार्य दशायें, प्रकृति, उचित वेतन, योग्यतायें, समय एवं विशेषाधिकार आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। कार्य विश्लेषण के लिये कृत्य विश्लेषण शब्द भी प्रयुक्त होता है।

स्कॉट, क्लोदियर एवं स्प्रीगल (Scott, Clothier & Spriegal) के अनुसार, ''कार्य विश्लेषण कार्य से सम्बद्ध क्रियाओं, कर्तव्यों और सम्बन्धों का आलोचनात्मक मूल्यांकन करने की विधि है।''

डेल योडर (Dale Yoder) के शब्दों में, ''कार्य विश्लेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रत्येक कार्य से सम्बन्धित तथ्यों को योजनाबद्ध प्रणाली से खोज कर अंकित किया जाता है।''

मइकेल ज्यूसियस (Michael Jucius) के अनुसार, '' कार्य विश्लेषण कर्तव्यों, क्रियाओं और कार्यों के संगठनात्मक पहलुओं के अध्ययन की प्रक्रिया है जिसका उद्‌देश्य विशिष्टताओं की प्राप्ति है जिन्हें कुछ व्यक्ति कार्य विवरण भी कहते हैं।

एडबिन बी. फ्लिप्पो (Edwin B. Flippo) ने कार्य विश्लेषण को इस प्रकार परिभाषित किया है, '' किसी कार्य विशेष के सम्बन्ध में प्रक्रियाओं और उत्तरदायित्वों की सूचना एकत्र करने एवं उनका अध्ययन करने की विधि ही कार्य विश्लेषण है।''

प्रबन्ध शास्त्री बीच ने कृत्य विश्लेषण में निम्न विषयों को सम्मिलित किया है–

(1) कृत्य शीर्षक तथा स्थान
(2) कृत्य सारांश
(3) कृत्य कर्तव्य
(4) अन्य कृत्यों से सम्बन्ध
(5) प्रदत्त पर्यवेक्षण

(6) मानसिक स्तर
(7) मानसिक एकाग्रता
(8) भौतिक अपेक्षायें
(9) भौतिक कौशल
(10) उत्तरदायित्व
(11) वैयक्तिक विशेषतायें
(12) कार्य अवस्थायें
(13) जोखिम

3.3 कार्य विश्लेषण की उपयोगिता

सेविवर्गीय प्रबन्ध के विविध कार्यों में कृत्य विश्लेषण की उपयोगिता होती है। कार्य विश्लेषण मानव संसाधन प्रबन्ध के प्रारम्भिक कार्यों में से एक है। सेविवर्ग की विविध गतिविधियों से कार्य विश्लेषण किसप्रकार सम्बद्ध है, यह तथ्य निम्न बिन्दुओं के आधार पर समझ सकते हैं–

(1) **मानव शक्ति नियोजन के लिये** – मानव शक्ति नियोजन करने से पूर्व आवश्यक है कि कार्य विश्लेषण भली–भांति सम्पन्न किया जाये। कार्य विश्लेषण मानव शक्ति नियोजन के लिये आधार बनता है। कार्य विश्लेषण के बाद ही, कर्मचारियों की आवश्यकता का आकलन और पूर्वानुमान किया जा सकता है।

(2) **कर्मचारी भर्ती, चयन एवं नियुक्ति** के लिये– सही कार्य के लिये सही व्यक्ति का चयन वैज्ञानिक चयन का आधार है। कृत्य विश्लेषण कार्य विशेष के लिये कर्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का निर्धारण करता है तथा विशिष्टता के माध्यम से अपेक्षित योग्यताओं का निर्धारण करता है। कृत्य विश्लेषण में दो विवरण तैयार किये जाते हैं– कार्य विवरण एवं व्यक्ति विशिष्ट विवरण। भर्ती एवं चयन कार्य के लिये कार्य विवरण (job description) एवं व्यक्ति विशिष्ट विवरण (man specification) दोनों ही मार्गदर्शन का कार्य करते हैं।

(3) **प्रशिक्षण एवं अधिशासी विकास के लिये**– कार्य विश्लेषण से कर्मचारियों एवं प्रबन्धकों की अपेक्षित योग्यताओं का ज्ञान होता है। यदि उनमें ये योग्यतायें नहीं है, तब अपेक्षित योग्यताओं को प्राप्त करने के लिये प्रशिक्षण एवं अधिशासी विकास के कार्यक्रम नियोजित किये जाते हैं। प्रशिक्षण की विषय–वस्तु का स्रोत कार्य विश्लेषण अभिलेख ही होते हैं। कार्यक्रम की रूपरेखा का निर्धारण करने के लिये कार्य विश्लेषण का विशेष सन्दर्भ लिया जाता है।

(4) **मजदूरी एवं वेतन प्रशासन के लिये** – कार्य स्तर के आधार पर मजदूरी दरें तय की जाती हैं। समान स्तर के कर्मचारियों को समान वेतन दिया जाता है। पारिश्रमिक भुगतान का आधारभूत नियम है – समान कार्य के लिये समान वेतन। मजदूरी एवं वेतन निर्धारण के लिये कार्य विश्लेषण रिकार्ड की सहायता ली जाती है। कार्य विश्लेषण के आधार पर ही न्यायपूर्ण और तर्क संगत पारिश्रमिक दरों की गणना की जा सकती है।

(5) **निष्पादन मूल्यांकन के लिये** – कर्मचारियों का निष्पादन मूल्यांकन मानव संसाधन प्रबन्ध का प्रमुख कार्य है। निष्पादन मूल्यांकन के लिये कृत्य विश्लेषण में वर्णित मानक और प्रमापों का सन्दर्भ लिया जाता है। इनके आधार पर ही, निष्पादन मूल्यांकन सम्पादित किया जाता है। कृत्य विश्लेषण में वर्णित मानदण्डों से वास्तविक निष्पादन की तुलना करके मूल्यांकन किया जाता है। निष्पादन मूल्यांकन के लिये कृत्य विश्लेषण का उपयोग किया जाता है।

(6) **कर्मचारी सुरक्षा एवं स्वास्थ्य उपायों के लिये**– कृत्य विश्लेषण में कार्य सम्बन्धी जोखिमों का उल्लेख किया जाता है। कार्य स्थल पर कर्मचारियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी संकटों के विषय में जानकारी दी जाती है। इन सूचनाओं का उपयोग कर्मचारी सुरक्षा एवं स्वास्थ्य संरक्षण के लिये किया जाता है। जोखिम के आकलन के बाद, जोखिम के समाधान के लिये योजनायें बनाकर उपाय किये जाते हैं।

(7) **कार्य अध्ययन** (work study) **के लिये आधार** – कार्य अध्ययन कार्य प्रणाली तथा विधि में संशोधन एवं सुधारों से सम्बन्धित होता है। कृत्य विश्लेषण में कृत्य के मूल तत्वों का विश्लेषण किया जाता है तथा उन्हें सम्पादित करने की विधियों का भी निर्धारण होता है। अतः कार्य अध्ययन के लिये कार्य विश्लेषण महत्वपूर्ण हो जाता है।

3.4 कार्य विश्लेषण के अंग – कार्य विवरण, कार्य विशिष्टता एवं कार्य निष्पादन प्रमाप विवरण

कार्य विश्लेषण के तीन अंग हैं– (1) कार्य विवरण (Job Description) (2) कार्य विशिष्टता (Job Specification) और (3)कार्य निष्पादन प्रमाप (Job Performance Standard)

कार्य विवरण (Job Description)

कार्य विवरण की विषय वस्तु – कार्य विवरण में निम्नलिखित बातें सम्मिलित की जाती हैं–

(1) **कार्य की जानकारी (Job Identification)**– इसमें कार्य का शीर्षक, उप–शीर्षक, विभाग, अनुभाग, संयंत्र, संकेत संख्या आदि सूचनायें दी जाती हैं। विभाग का नाम स्पष्टतः लिखा जाता है, जैसे– यान्त्रिक विभाग, अनुरक्षण विभाग आदि। यह विभाग किस स्थान पर होगा, उसकी स्थिति के बारे में स्पष्ट संकेत दिया जाता है।

(2) **कार्य का संक्षेप (Job Summary)**– कार्य संक्षेप के बारे में कहा जाता है कि यह कैप्सूल की भांति शीघ्र घुलने वाली जानकारी देता है। इससे कार्य के बारे में सामान्य जानकारी एक ही दृष्टि में मिल जाती है। कई बार केवल शीर्षक से काम के बारे में स्थिति स्पष्ट नहीं हो पाती है, तब कार्य संक्षेप उपयोगी होता है। कार्य संक्षेप से कार्य के बारे में संक्षिप्त जानकारी एक ही स्थान पर मिल जाती है जबकि इनका विवरण यथा–स्थान अलग–अलग खण्डों में दिया होता है।

(3) **कार्य कर्तव्य (Job Duties)** – इससे प्रत्येक क्रिया की आवृत्ति के बारे में सूचना मिलती है। कार्य कर्तव्य में यह बताया जाता है कि किस क्रिया में कितने प्रतिशत समय लगेगा। इस उद्देश्य से कर्तव्य चार्ट बनाये जाते हैं। कर्तव्य चार्ट से तीन प्रश्नों के उत्तर मिलते हैं– क्या करना है?, कैसे करना है?, क्यों करना है? इसप्रकार कर्तव्य चार्ट संगठन के क्रियात्मक भाग को समझने में उपयोगी होता है।

(4) **अन्य कार्यों से सम्बन्ध (Relation with other Jobs)** – कार्य विवरण में एक विशेष कार्य का दूसरे कार्यों से सम्बन्ध स्पष्ट होता है। सन्दर्भगत् कार्य किस स्तर का है, इस कार्य से पूर्व का क्या स्तर है, इस कार्य के बाद का क्या स्तर है? यह जानकारी कार्य विवरण से मिल जाती है। कार्य की विधि तथा प्रणाली से इसका अन्य कार्यों के साथ सम्बन्ध पता लगता है। कार्यों के साथ लम्बवत् (verticle) तथा क्षैतिज (horizontal) सम्बन्ध का ज्ञान हो जाता है।

(5) **पर्यवेक्षण व्यवस्था (Supervison Arrangements)** – कार्य के सम्बन्ध में पर्यवेक्षण और निरीक्षण व्यवस्था का उल्लेख कार्य विवरण में दिया जाता है। इसके लिये किसप्रकार के पर्यवेक्षण की आवश्यकता होगी, यह पर्यवेक्षण सतत् होगा अथवा विछिन्न रूप में होगा। निरीक्षण के विषय में स्पष्ट किया जाता है कि निरीक्षण कितने अन्तराल पर अथवा किस आकार के प्रतिदर्श का किया जायेगा।

(6) **मशीनें, औजार और उपकरण (Machine, Tools & Equipment)** – कार्य स्थल पर प्रयुक्त होने वाली मशीनों, औजारों और उपकरणों का ब्योरा दिया जाता है। मशीनों के नाम, मॉडल, विशेषताओं का उल्लेख सावधानी से किया जाता है, ताकि उनका सही और सटीक परिचय मिल सके तथा किसी प्रकार का कोई भ्रम होने की स्थिति उत्पन्न न हो। छोटे औजारों को भी सूचीबद्ध किया जाता है और उनकी विशिष्टताओं (specifications)को लिखा जाता है। उत्पादन में प्रयुक्त होने वाले कच्चे माल का भी उल्लेख किया जाता है।

(7) **कार्य की दशायें (working conditions)** – कर्मचारियों को कार्य स्थल पर कार्य की दशाओं की सूचना कार्य विवरण के माध्यम से दी जाती है। कार्य की दशाओं में शामिल हैं– तापमान, प्रकाश, ध्वनि, प्रदूषण, नमी, हवा आदि। कार्य की दशाओं की जानकारी सभी पक्षकारों के लिये उपयोगी होती है।

(8) **संकट (Hazard)** – कार्यस्थल पर सुरक्षा सदैव महत्वपूर्ण विषय होता है। कार्य के दौरान सम्भावित संकटपूर्ण स्थितियों के बारे में जानकारी दी जाती है। इनसे जुड़ी सावधानियों को समझाया जाता है, ताकि जोखिम को कम किया जा सके। इससे पूरे संगठन का हित साधन होता है।

कार्य विवरण का प्रारूप

संस्था का नाम	
स्थिति .... विभाग.. सम्भाग..	कार्य कोड संख्या... कार्य शीर्षक .... कर्मचारियों की संख्या..................................
कार्य... (i) मुख्य कार्य (ii) सहायक कार्य (iii) अन्य कार्य	
संगठनात्मक सम्बन्ध (i) प्रतिबद्धता (commitment) (ii) अधीनस्थ (iii) सहायक सम्बन्ध कार्य दशायें... .... कार्य के लिये अपेक्षित योग्यतायें एवं गुण शैक्षिक प्रशिक्षण अनुभव विशेष गुण आयु लिंग टिप्पणी	

लेखक परीक्षक	अनुमोदनकर्ता दिनांक

कार्य विशिष्टता (Job Specification) विवरण अथवा व्यक्ति विशिष्ट (Man Specification) विवरण

कार्य विशिष्टता विवरण में कार्य के लिये वांछित अनिवार्य एवं अपेक्षित योग्यताओं का उल्लेख रहता है। ये योग्यतायें सामान्यतः आयु, शिक्षा, अनुभव, भावनात्मक योग्यता, निर्णय क्षमता, नेतृत्व क्षमता, सामाजिक व्यवहार आदि से सम्बन्धित होती हैं। इस विवरण में व्यक्ति में अपेक्षित योग्यता एवं गुणों का वर्णन होता है, इसलिये इसे व्यक्ति विशिष्ट (Man Specification) विवरण भी कहा जाता है। कार्य विशिष्टता अथवा व्यक्ति विशिष्ट विवरण मूल रूप से किसी कार्य के लिये जरूरी न्यूनतम योग्याता की ओर संकेत करता है। साथ ही, इस कार्य के लिये व्यक्ति विशेष में और कौन से गुणों की अपेक्षा है, इसका उल्लेख इस पत्रक में किया जाता है।

कार्य विशिष्टता पत्रक की विषय वस्तु

1. **शारीरिक विशिष्टतायें (Physical specification)** – शारीरिक विशिष्टताओं में सम्मिलित है– स्वास्थ्य, शक्ति, शरीर का आकार–प्रकार, ऊंचाई, भार, वाणी, दृष्टि, कार्य करते समय हाथ–पांव, आंख का समन्वय, यन्त्रवत् काम करने की क्षमता आदि।
2. **जनांकिकी–** लिंग, उम्र, राष्ट्रीयता, वैवाहिक स्तर जनांकिकी विषयक जानकारी कार्य विशिष्टता पत्रक में शामिल की जाती हैं।
3. **अनुभव** – अनुभव में दो बातें देखी जाती हैं– पहला, अनुभव की अवधि और दूसरा, अनुभव का स्तर।
4. **मनोवैज्ञानिक विशिष्टतायें–** मनोवैज्ञानिक विशिष्टताओं में सम्मिलित है– निर्णय क्षमता, विश्लेषणात्मक योग्यता, मानसिक संतुलन तथा सतर्कता आदि।
5. **व्यक्तिगत विशिष्टतायें–** मानसिक व्यवहार, मानसिक स्थिरता, वाक् चातुर्य, सामन्य उत्साह, पहल करने की क्षमता, अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहार, किसी विषय को ठीक ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता, विशेष गुण – जैसे, देखकर, सूंघकर, सुनकर किसी घटना या परिस्थिति की पहचान करने की क्षमता।
6. **उत्तरदायित्व के प्रति दृष्टिकोण–** उत्तरदायित्व के प्रति व्यक्तियों में विविध दृष्टिकोण देखे जाते हैं, जैसे– उत्तरदायित्व को स्वीकार करने की भावना, उत्तरदायित्व से बचने की प्रवृत्ति, उत्तरदायित्व के प्रति उत्साह, उत्तरदायित्व वहन करने में आनन्द अनुभूति। कर्मचारियों में उत्तरदायित्व के प्रति दृष्टिकोण का तुलनात्मक स्तर भी देखा जाता है कि किस कर्मचारी में प्रतिक्रिया का स्तर तुलनात्मक रूप से कितना है?

कार्य विशिष्टता (Job Specification) विवरण का प्रारूप

संस्था का नाम	
कार्य का शीर्षक आयु सीमा ....वर्ष से ....वर्ष	कार्य संख्या

वैवाहिक स्तर..............विवाहित........... अविवाहित कर्मचारी योग्यतायें अनिवार्य योग्यतायें : (i) (ii) (iii) वांछनीय योग्यतायें (i) (ii) (iii) विगत अनुभव (अ) अनिवार्य (ब) वांछनीय क्षमताएं (अ) बुद्धि कुशाग्रता (ब) धारा प्रवाह संभाषण योग्यता (स) लेखन एवं पठन (द) गणित सम्बन्धी योग्यता (य) प्रशासकीय क्षमता (र) सामाजिक सरोकार	
चयनकर्ताओं की टिप्पणी हस्ताक्षर	दिनांक स्थान

कार्य निष्पादन प्रमाप (Job Performance Standard)

इस प्रलेख में कर्मचारी से अपेक्षित कार्य की मात्रा एवं गुणवत्ता के प्रमाप दर्शाये जाते हैं। कार्य निष्पादन प्रमाप, वास्तव में कार्य विवरण का ही विस्तार है। कार्य निष्पादन प्रमाप लक्ष्य निर्धारण का कार्य करते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से, कार्य निष्पादन प्रमाप अभिप्रेरणा साधन का भी कार्य करते हैं। कर्मचारी को यह ज्ञान हो कि उससे क्या अपेक्षित है, तब वह अपने उत्तरदायित्व का निर्वहन अधिक अच्छे ढंग से कर सकता है। साथ ही, कार्य निष्पादन प्रमाप बाद में कार्य मूल्यांकन का आधार बनते हैं। प्रमापों के अभाव में कोई भी नियन्त्रण प्रणाली लागू नहीं हो सकती। इसलिये प्रमापों का विकास एवं उनका उपयुक्त अभिलेखन जरूरी हो जाता है। इन प्रमापों को कर्मचारियों के मध्य प्रचारित करना आवश्यक है। यह कार्य प्रमाप विवरण के माध्यम से सम्पन्न होता है।

कार्य विवरण (Job Description) एवम् कार्य विशिष्टता (Job Specification) विवरण में अन्तर

	कार्य विवरण (Job Description)	कार्य विशिष्टता (Job Specification) विवरण अथवा व्यक्ति विशिष्ट (Man Specification)

		विवरण
1	इसमें कार्य की प्रकृति का विवरण होता है तथा कार्य की विशेषतायें लिखी जाती हैं।	इसमें कार्य करने वाले व्यक्ति में अपेक्षित विशेषताओं का वर्णन होता है।
2	कार्य के सम्बन्ध में किये जाने वाले कर्तव्यों का विवरण होता है।	उत्तरदायित्व वहन करने वाले चरित्र की अनिवार्य और वांछनीय योग्यताओं का उल्लेख होता है।
3	प्रयुक्त कच्चे माल, मशीनों और औजारों की विशिष्टताओं को लिखा जाता है।	कार्य के लिये नियुक्त व्यक्ति के कौशल और कला के बारे में संकेत किया जाता है।

3.5 कार्य विश्लेषण की प्रमुख तकनीकें (Main Techniques of Job Analysis)

1. **प्रश्नावली विधि अथवा सर्वेक्षण विधि (Questionnnaire method or Survey Method)** – इस विधि में सर्वेक्षण के लिये एक प्रश्नावली तैयार कर ली जाती है। यह प्रश्नावली कर्मचारियों से भरवा ली जाती है, कर्मचारी अपने कार्य के बारें में पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देते हैं। प्रश्नावली में कार्य सम्बन्धी विस्तृत जानकारी के लिये व्यवस्थित प्रश्न दिये होते हैं। एक ही प्रकार के कृत्यों के लिये समान प्रश्नावली का उपयोग किया जाता है। संकलित प्रश्नावलियों को कृत्य विश्लेषक विभाग को भेज दिया जाता है। प्रश्नावली विधि के अपने गुण और दोष हैं, इसलिये यह विधि सदैव उपयुक्त नहीं रहती। इसलिये कभी–कभी इस रीति को सहायक विधि के रूप में अपनाया जाता है। इसके लिये प्रमापित प्रश्नावलियों का उपयोग भी चलन में है। प्रमापित प्रश्नावलियों के उदाहरण इस प्रकार हैं–

   CODAP - Comprehensive Occupational Data Analysis Programmes
   PAQ - Position Analysis Questions
   FJA - Functional Job Analysis
   MPDQ - Management Position Description Questionnaire
   JAIF - Job Analysis Information Form

2. **साक्षात्कार विधि (Interview method)** – इस विधि के अन्तर्गत कृत्य विश्लेषक कर्मचारी के सामने उपस्थित होकर अर्थात् प्रत्यक्ष सम्पर्क करके कार्य सम्बन्धी सूचनायें प्राप्त करता है। यह सूचनायें प्रश्न पूछकर एकत्रित की जाती हैं। इसके लिये प्रश्नों का प्रमापित प्रारूप भी प्रयोग किया जा सकता है। इस विधि में कार्य के प्रति कर्मचारी तथा पर्यवेक्षकों दोनों के विचार जाने जा सकते हैं। इस विधि में सूचनायें प्राप्त करना तभी सम्भव होता है, जबकि कृत्य विश्लेषक तथा सूचनादाता के बीच पारस्परिक विश्वास हो। कई कार्यों के साक्षात्कार टेलीफोन पर भी लिये जा सकते हैं। वर्तमान में, वीडियो कॉल से भी साक्षात्कार का चलन बढ़ा है। इसके लिये व्यक्तिगत सम्पर्क की आवश्यकता नहीं होती। सामूहिक साक्षात्कार भी सम्पन्न किये जा सकते हैं। साक्षात्कार विधि के भी अपने गुण एवं दोष हैं। केवल इस विधि पर ही निर्भर नहीं रहा जाता, बल्कि किसी दूसरी रीति के साथ संयुक्त रूप से इसका उपयोग होता है। साक्षात्कारकर्ता के लिये कुछ सावधानियां हैं जिनके आश्रय से इस विधि से बेहतर परिणाम लिये जा सकते हैं, जैसे– प्राश्निक को पहले कर्मचारियों के काम को भलीभांति समझ लेना चाहिए, उसे उनके कार्य में रूचि प्रकट करनी चाहिए, उसे कार्मिक के काम में सुझाव देने से बचना चाहिए आदि।

3. **अवलोकन विधि (Observation Method)** – कार्य विश्लेषण की यह एक सुगम विधि है। कर्मचारी को काम करते हुए देखकर सूचनायें एकत्र कर ली जाती हैं। यदि काम की गति धीमी हो, तब कैमरे का उपयोग कर लिया जाता है। अवलोकन के दौरान प्रश्न पूछकर क्रियाओं को समझना सरल होता है। ऐसे कार्यों में यह विधि उपयुक्त नहीं रहती, जहां कार्य रूक–रूककर लम्बे समय तक चलता हो। जब काम शारीरिक गतिविधि का हो और उत्पादकता मापी जा सकती हो, तब प्रत्यक्ष अवलोकन विधि उपयुक्त रहती है। किन्तु, यदि उत्पादन मानसिक प्रतिभा पर आधारित हो या रचनात्मक प्रकृति का हो, तब उत्पादकता का मापन कठिन हो जाता है, जैसे –लेखन कार्य, संगीत, पत्रकार। ऐसे व्यवसायों में अवलोकन विधि प्रासंगिक नहीं होती।
4. **अभिलेख विधि (Record Method)** – इस विधि को कर्मचारी अभिलेख विधि भी कहा जाता है। यह विधि तभी अपनाई जा सकती है, जब कर्मचारियों द्वारा कार्य का दैनिक रिकार्ड रखा जाता हो। संगठन में प्रायः कर्मचारी डायरी, रोजनामचा, बही, अथवा लॉग बुक आदि लिखते हैं। इस विधि में कर्मचारियों द्वारा रखे जाने वाले अभिलेख का उपयोग किया जाता है। साथ ही, यह विधि कर्मचारियों द्वारा इस प्रकार का रिकार्ड रखने पर बल देती है। इस रिकार्ड में प्रतिदिन किये गए कार्य का व्यवस्थित ब्योरा दर्ज होता है। इस रिकार्ड से पद विशेष के सम्बन्ध में कर्तव्यों, दायित्वों, उनकी भूमिका आदि का सम्यक् ज्ञान हो जाता है। इस रिकार्ड में असामान्य और आकस्मिक घटनाओं का भी उल्लेख रहता है जिससे कार्य के बारे में अप्रत्याशित आशंकाओं का भी संकेत मिल जाता है, जबकि रूटीन कार्य और रूटीन गलतियों का विवरण सामान्यतया इसमें उपलब्ध रहता ही है।
5. **कृत्य निष्पादन विधि (Job Performance Method)**– इस विधि में विश्लेषक कार्य का प्राथमिक अनुभव करने तथा उत्तरदायित्वों को समझने की दृष्टि से स्वयं उस कार्य को सम्पादित करता है, जिसका विश्लेषण किया जाना है। यह विधि वहीं उपयुक्त होती है, जहां कार्य के लिये साधारण कौशल की आवश्यकता हो और जिसे सरलतापूर्वक सीखा जा सकता है। अन्यथा, ऐसे कार्य जिन्हें करने के लिये विस्तृत प्रशिक्षण दिया जाता हो, वहां इस विधि का उपयोग नहीं हो सकेगा।
6. **महत्वपूर्ण घटना विधि (Critical Incidents Method)** – इस रीति में केवल महत्वपूर्ण घटनाओं का सन्दर्भ लिया जाता है जो कार्य के सफल अथवा विफल होने के लिये जिम्मेदार हों। इन घटनाओं का विस्तृत अध्ययन और विश्लेषण किया जाता है। पदधारकों से असाधारण घटनाओं, बातों, प्रसंगों का वर्णन करने को कहा जाता है जो कार्य की प्रकृति पर प्रकाश डालती हों। ये अनोखी एवं कठिन निर्णय वाली घटनायें या अवसर होते हैं जिनसे यह अनुमान किया जा सकता है कि कार्य में किन योग्यताओं, सूचनाओं, गुणों, मानसिक सतर्कता की आवश्यकता होगी। इन प्रसंगों का विवेचन करके कार्य के लिये अपेक्षित उत्तरदायित्वों, कार्य व्यवहार का ज्ञान किया जा सकता है। यह विधि कार्य से जुड़ी महत्वपूर्ण घटनाओं के आधार पर कार्य की आवश्यकताओं एवं वांछित गुणों का निर्धारण करती है।
7. **तकनीकी सम्मेलन विधि (Technical Conference Method)** – विशिष्ट लक्षणों वाले कृत्यों का विश्लेषण करने के लिये विशेषज्ञों का एक तकनीकी सम्मेलन बुलाया जाता है। प्रायः, ये विशेषज्ञ अपने कार्य स्थल पर सुपरवाइजर होते हैं, जिन्हें अपने कार्य की विस्तृत

जानकारी होती है। इनसे कार्य के विविध पहलुओं के पर जानकारी प्राप्त करके कार्य विश्लेषण किया जाता है। विशेषज्ञों से विचार विमर्श करके कार्य की जटिलताओं को समझने का प्रयास किया जाता है। पर्यवेक्षकों का मत एवं दृष्टिकोण कार्य विश्लेषण में बहुत उपयोगी रहता है।

8. **विधि विश्लेषण रीति** (Methods Analysis Technique) – इस रीति का विकास औद्योगिक अभियान्त्रिकी के क्षेत्र में हुआ। इसका प्रयोग गैर–प्रबन्धकीय कार्यों के विश्लेषण में किया जाता है, जहां वैयक्तिक इकाइयों का निर्धारण करना सरल होता है। इस रीति में कार्य को सम्पन्न करने के लिये आवश्यक शारीरिक गतियों (body movements) तथा कार्य पद्धति सम्बन्धी चरणों का निर्धारण किया जाता है। कृत्य विश्लेषक कर्मचारियों के कार्य स्थल पर अवलोकन करके सूचनायें एकत्र करता है। इसके बाद वह कार्य को करने की विधि का एक प्रचालन चार्ट (operational chart) तैयार करता है। एक श्रमिक द्वारा किये जाने वाले कार्य की विभिन्न क्रियाओं की जानकारी इस चार्ट से मिल जाती है। चार्ट में तकनीकी शब्दों एवं चिन्हों का प्रयोग किया जाता है, जो विशिष्ट क्रियाओं एवं उनके अनुक्रम को दर्शाते हैं। इसके आधार पर सम्पूर्ण कार्य का विस्तृत विवरण मिल जाता है।

3.6 कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया (Process of Job Analysis)

1. **संगठनात्मक विश्लेषण (Organisational Input)**–सर्वप्रथम संगठन के समस्त कृत्यों का एक समग्र एवं व्यापक अवलोकन किया जाता है, ताकि विभिन्न कार्यों के बीच सम्बन्ध स्पष्ट हो सके। समग्र अवलोकन से, संस्था के लक्ष्यों का पता होता है। साथ ही, विभिन्न कार्यों के महत्व का ज्ञान होता है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये विभिन्न अभिलेख देखे जाते हैं, संगठनात्मक चार्ट, कार्य श्रेणी विशिष्ट विवरण, कार्य प्रवाह चार्टों का अध्ययन किया जाता है। इससे विभिन्न कार्यों के पारस्परिक सम्बन्धों, कृत्य समूह की सामान्य आवश्यकताओं तथा कृत्य में सम्मिलित विभिन्न क्रियाओं के प्रवाह की जानकारी मिल जाती है।
2. **विश्लेषण हेतु कार्यों का चयन (Selection of Jobs for Analysis)**– सामान्य सर्वेक्षण के बाद, विभागीय प्रमुखों के परामर्श से यह तय किया जाता है कि उनके विभाग में कौन–कौन से कार्य हैं जिनका विश्लेषण किया जाना है। इनमें कुछ काम ऐसे हो सकते है जोकि नये हों, इनका विश्लेषण संगठन में पहली बार किया जाना है। दूसरे, वे काम हो सकते हैं जिनके वर्तमान प्रपत्रीकरण में सुधार अथवा संशोधन की आवश्यकता समझी जा रही है। अनुभागों के अधीक्षक और प्रबन्धकीय पदाधिकारी कार्य विश्लेषण के लिये कार्यों की सूची तैयार करवाते हैं। प्रायः सभी कृत्यों का विश्लेषण नहीं कराया जाता, अपितु प्रतिनिधि कृत्यों का चयन कर लिया जाता है। इससे समय, श्रम और लागत में बचत होती है। विश्लेषण की दृष्टि से कृत्यों में प्राथमिकता तय कर ली जाती है।
3. **कार्य विश्लेषण कार्यक्रम का निर्माण (Organising Job Analysis)**– कार्य विश्लेषण हेतु कार्यों की सूची विकसित करने के बाद, कार्य विश्लेषण के लिये कार्यक्रम निर्धारित किया जाता है। कार्यक्रम के मुख्य बिन्दु होते हैं– प्रभारी अधिकारी, बजट, समय अनुसूची। कार्यक्रम पर होने वाला व्यय और कार्यक्रम में लगने वाला समय, ये दोनों कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण होते हैं, इन पर उच्च प्रबन्ध द्वारा निगरानी की जाती है। कार्य विश्लेषक को इन सीमाओं का ध्यान रखना आवश्यक हो जाता है।

4. **कृत्य संरचना को समझना (Understanding Job Design)** – विश्लेषक कार्य के स्वरूप को समझने का प्रयास करता है, इसके लिये कार्य के विद्यमान प्रारूप एवं डिजाइन के बारे में जानकारी की जाती है। इसके लिये, समान उद्योग में संलग्न अन्य संयत्रों से भी मदद ली जाती है। साथ ही, संगठन में उपलब्ध कार्य विवरण, कार्य पद्धति पुस्तिका, प्रणाली प्रवाह चार्ट आदि का अध्ययन किया जाता है।
5. **सूचनाओं का संकलन (Data Collection)** – कार्य से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सूचनायें एकत्र की जाती हैं। इन तथ्यों को एकत्र करने के लिये विविध स्रोतों का उपयोग किया जाता है। समंकों के संकलन के लिये कई रीतियां उपयोग में लाई जाती हैं। परिस्थितियों के अनुरूप विश्वसनीय और उपयुक्त रीति का चयन किया जाना चाहिए। तथ्यों को एकत्र करने के लिये प्रमुख स्रोत हैं–
   (अ) कार्यरत कर्मचारी
   (ब) पर्यवेक्षक अथवा फोरमैन
   (स) दूसरे संयत्रों में संलग्न कार्मिक
   (द) स्वैच्छिक अध्ययनशील व्यक्ति अथवा समूह
6. **कार्य विवरण तैयार करना (Develop Job Description)**– एकत्रित सूचनाओं का सूक्ष्म अध्ययन किया जाता है। अध्ययन के आधार पर कार्य विवरण का ड्राफ्ट तैयार कर लिया जाता है। इस ड्राफ्ट पर कर्मचारियों, अधिकारियों और विशेषज्ञों से विचार विमर्श किया जाता है। उनके अभिप्राय को विषय वस्तु में समाहित कर लिया जाता है। तदुपरान्त, कार्य विवरण को अन्तिम रूप दिया जाता है। तैयार प्रारूपों के विभिन्न समूहों को कोड नम्बर प्रदान किया जाता है, ये कोड नम्बर विभाग, सम्भाग, अन्य विशेषताओं पर आधारित होते हैं।
7. **कार्य विशिष्टता विवरण तैयार करना (Develop Job Specification)**– कार्य विवरण तैयार करने के बाद, कार्य विशिष्टता विवरण तैयार किये जाते हैं। कार्य विशिष्ट विवरण को व्यक्ति विशिष्ट विवरण भी कहा जाता है। यह एक ऐसा प्रपत्र है जिसमें कार्य निष्पादन के लिये आवश्यक न्यूनतम योग्ताओं और वांछित योग्यताओं का वर्णन होता है। कृत्य विशिष्टिता विवरण में कार्य विशेष के लिये कर्मचारी में अपेक्षित गुणों का विस्तार से उल्लेख किया जाता है।
8. **प्रस्तुतिकरण एवं अनुमोदन (Presentation & Approval)**– कार्य विवरण और कार्य विशिष्टता विवरण तैयार करके उच्चाधिकारियों के अवलोकन हेतु प्रस्तुत किया जाता है। यदि उपयुक्त समझा जाये, तब इन प्रपत्रों पर कर्मचारियों का समर्थन सुनिश्चित करने के लिये कर्मचारी संघों से भी विचार–विमर्श किया जाता है। संघ के सुझाव और दृष्टिकोण को भी इसमें समाहित करने का प्रयास किया जाता है। अधिकारियों के विचारार्थ रखने के बाद उनके निर्देशों के अनुरूप यदि कोई संशोधन वांछित हो, तब उसे शामिल करने बाद इसे अधिकृत अधिकारी अथवा इस कार्य के लिये नियुक्त समिति को अनुमोदन के लिये भेज दिया जाता है। अनुमोदन के उपरान्त, ये प्रपत्र संगठन में लागू करने के लिये जारी कर दिये जाते हैं।

3.7 कार्य अभिरूप (Job Design)

कार्य अभिरूप का उद्देश्य है कि कार्य को युक्तिपूर्वक इसप्रकार स्वरूप दिया जाये कि काम करना सरल और रूचिकर हो। कार्य अभिरूप के अन्तर्गत, कार्य को छोटे से छोटे से भाग में बांटा जाता है। कार्य के उपांगों को इस तरह संयोजित किया जाता है कि कार्य करना रूचिकर रहे। कार्य के सुरूचिपूर्ण होने का सकारात्मक प्रभाव कार्य निष्पादन पर पड़ता है। कार्य डिजाइन कार्य विश्लेषण के लिये तर्कपूर्ण अनुक्रम प्रस्तुत करता है। किसी काम की विविध क्रियायें, उनको करने की रीतियां, दूसरे सम्बद्ध कार्यों से सम्बन्ध का अध्ययन कार्य डिजाइन के अन्तर्गत किया जाता है। कार्य डिजाइन का अर्थ है– किसी कार्य की विषय वस्तु तय करना जिसमें कार्य से सम्बन्धित कर्तव्य और दायित्व सम्पादित करने की रीतियां, तकनीकें, क्रियाविधि एवं प्रणालियों पर ध्यान दिया जाता है। कार्य डिजाइन तय करने में मानवीय सम्बन्धों को भी सम्मिलित किया जाता है– कर्मचारी का अपने अधिकारी के साथ, अपने अधीनस्थ के साथ, अपने सहकर्मियों के साथ सम्बन्ध। कार्य डिजाइन के चार प्रमुख अंग हैं–

- कार्य सरलीकरण (Job Simplification)
- कार्य चक्रानुक्रम (Job Rotation)
- कार्य समृद्धिकरण (Job Enrichment)
- कार्य विस्तारण (Job Enlargement)

(1) **कार्य सरलीकरण (Job Simplification)** – कार्य सरलीकरण में कार्य को छोटे–से छोटे भाग और उप–भाग में बांट दिया जाता है। एक कर्मचारी को केवल एक छोटा भाग ही करने को दिया जाता है। उसे अपना एक काम ही बार–बार दोहराना होता है। इससे विशिष्टीकरण के लाभ मिलने लगते हैं। प्रशिक्षण लागत बहुत कम आती है क्योंकि निष्पादन के लिये छोटा–सा कार्य होता है। इसका कार्य निष्पादन और उत्पादन पर अनुकूल प्रभाव होता है। परिणामतः लाभ में अभिवद्धि होती है। किन्तु, इसका नकारात्मक पहलू यह है कि एक ही सरल काम को दोहराते रहने पर कर्मचारी बहुत नीरसता का अनुभव करता है और कार्य उसके लिये बिल्कुल अरूचिपूर्ण हो जाता है और उसका प्रदर्शन खराब होने लगता है जिसका संगठन के हितों पर भी प्रतिकूल प्रभाव आने लगता है।

(2) **कार्य चक्रानुक्रम (Job Rotation)** – कार्य सरलीकरण के कारण संगठन में जो नीरसता का दोष आ जाता है, उसका समाधान कार्य चक्रानुक्रम करता है। एक निर्धारित अवधि के बाद, कर्मचारी का कार्य बदल दिया जाता है, लेकिन कार्य समान प्रकृति और समान स्तर का होता है। एक क्रम में कर्मचारियों के कार्य परिवर्तन करने का प्रभाव यह होता है कि एक कर्मचारी कई कार्यों में निपुण हो जाता है। यह काम में क्षैतिज परिवर्तन होता है। काम में बदली के कारण कुछ दुष्प्रभाव भी आते हैं, जैसे– काम बदलने से एक बार व्यक्ति के सम्मुख व्यवधान उपस्थित होता है जिसका नकारात्मक असर संगठन पर भी आयेगा; परिवर्तन की सम्भावना अथवा आशंका से कर्मचारी पूरा मनोयोग से काम नहीं कर पाते और उनमें एक उदासीनता अथवा तटस्थता देखी जा सकती है; अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य के प्रति उत्साहित रहने वाले कार्मिक समान स्तर के परिवर्तित काम से अभिप्रेरित नहीं हो पाते।

(3) **कार्य समृद्धिकरण (Job Enrichment)** – कार्य सरलीकरण के जिन दोषों को चक्रानुक्रम के जरिये दूर नहीं किया जा सका, उनका समाधान कार्य समृद्धिकरण के द्वारा करने का प्रयास किया जाता है। एक मानवीय गुण है कि व्यक्ति चुनौतियों को स्वीकार करके आनन्द का अनुभव

करता है। यहां कार्य परिवर्तन क्षैतिज के विपरीत उर्ध्वाधर अथवा लम्बबत् होता है। कार्य समृद्धिकरण में कार्य में परिवर्तन इस प्रकार किया जाता है कि कार्मिक को चुनौतीपूर्ण उत्तरदायित्व देकर और अधिक जबावदेह बनाया जाता है। उसका संवाद मात्र पर्यवेक्षक के साथ न रखकर, उच्च प्रबन्ध के साथ स्थापित कराया जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह अपने काम और अपने को अधिक महत्वपूर्ण समझने लगता है। इस प्रकार, संगठन को कार्मिक का अधिक योगदान मिलने लगता है जिसमें उसके मौलिक विचार और रचनात्मकता भी शामिल है।

(4) **कार्य विस्तारण (Job Enlargement)** – किसी एक कार्य में किसी दूसरे कार्य को जोड़ देना कार्य का विस्तार कहा जाता है। यह कार्य का क्षैतिज विस्तार है, जबकि कार्य समृद्धिकरण में विस्तार उर्ध्वाधर अथवा लम्बबत् होता है। कार्य विस्तार से निष्पादन करने वाले व्यक्ति के कार्य में विविधता आ जाती है और एकरसता दूर होती है, काम करना थोड़ा रूचिकर हो जाता है। मनोवैज्ञानिक आधार है कि उत्तरदायित्व में वृद्धि से कार्मिक में एक प्रकार का संतोष उत्पन्न होता है।

कार्य विश्लेषण और कार्य अभिरूप में अन्तर

कार्य विश्लेषण (Job Analysis)	कार्य अभिरूप (Job Design)
• कार्य विशेष की पहचान और कार्य वितरण को अधिकतम तर्कसंगत और विवकेपूर्ण बनाना कार्य विश्लेषण का उद्देश्य होता है।	• कार्य को सरल और रूचिकर बनाने के उपायों का नियोजन करना कार्य डिजाइन का उद्देश्य है।
• कार्य विश्लेषण की विषय वस्तु है– कार्य विवरण, कार्य विशिष्टता, कार्य प्रमाप।	• कार्य अभिरूप की विषय वस्तु है– कार्य सरलीकरण, कार्य चक्रानुक्रम, कार्य समृद्धिकरण, कार्य विस्तारण।
• कार्य विश्लेषण, कार्य के केवल भौतिक आयामों तक सीमित है।	• कार्य अभिरूप में मानवीय सम्बन्धों को समाविष्ट किया जाता है– कर्मचारी का अधिकारी, अधीनस्थ, समकक्षों के साथ सम्बन्ध।
• कार्य विश्लेषण में कार्य निष्पादन का नियोजन एवं नियंत्रण प्रस्तावित किया जाता है।	• कार्य अभिरूप में कार्य निष्पादन को बेहतर बनाने की योजना प्रस्तुत की जाती है

3.8 सारांश

कार्य विश्लेषण मानव संसाधन प्रबन्ध का महत्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत संगठन में होने वाले कार्यों की पहचान इस दृष्टि से की जाती है कि उन्हें कर्मचारियों को सौंपा जा सके। कार्य के विषय में सामान्य समझ विकसित की जाती है। कार्य से सम्बद्ध तथ्यपरक सूचनायें एकत्र की जाती हैं। कार्य विश्लेषक दो अति महत्वपूर्ण पत्रक तैयार करता है– (1)कार्य विवरण, (2) कार्य विशिष्टता विवरण। संगठन में कार्मिक नियोजन, भर्ती, प्रशिक्षण, मजदूरी प्रशासन, कार्य निष्पादन और नियंत्रण के लिये कार्य विश्लेषण द्वारा आधार प्रस्तुत किया जाता है। कार्य विश्लेषण में तैयार विवरण और प्रपत्र कर्मचारियों के वैज्ञानिक मार्गदर्शन में मदद करते हैं।

कार्य विश्लेषण में तीन प्रपत्र तैयार किये जाते हैं–कार्य विवरण, कार्य विशिष्टता विवरण एवं कार्य निष्पादन प्रमाप प्रपत्र। कार्य विवरण में प्रमुखता से लिखे जाने वाले बिन्दु हैं– कार्य की पहचान, कार्य संक्षेप, कार्य कर्तव्य, अन्य कार्यों से सम्बन्ध, पर्यवेक्षण व्यवस्था, मशीनें और औजार, कार्य की दशायें, सम्भावित संकट। कार्य विशिष्टता विवरण को व्यक्ति विशिष्ट विवरण भी कहा जाता है। कार्य विशिष्टता पत्रक की विषय–वस्तु में शामिल हैं – कार्य के लिये अपेक्षित विविध योग्यताओं और अनुभव आदि का विवरण, उदहारण के लिये– शारीरिक योग्यतायें, जनांकिकीय सूचनायें, अनुभव का उल्लेख, मनोवैज्ञानिक क्षमतायें, विशेष दक्षतायें, दृष्टिकोणपरक गुण।

कार्य निष्पादन प्रमाप में कर्मचारी से अपेक्षित कार्य की मात्रा एवं गुणवत्ता के प्रमाप दर्शाये जाते हैं। इनसे लक्ष्य निर्धारण किया जाता है, कार्य निष्पादन प्रमाप, बाद में कार्य मूल्यांकन का आधार बनते हैं। ये प्रमाप अभिप्रेरणा स्रोत के रूप में भी काम करते हैं। प्रमाप नियन्त्रण प्रणाली का भी अंग हैं। कर्मचारियों के मध्य प्रचारित करना आवश्यक है। कार्य विश्लेषण के लिये प्रयुक्त रीतियों में प्रमुख रीतियां हैं– प्रश्नावाली विधि, साक्षात्कार विधि, अवलोकन विधि, अभिलेख विधि, कृत्य निष्पादन विधि, महत्वपूर्ण घटना विधि, तकनीकी सम्मेलन रीति, विधि विश्लेषण रीति। अलग–अलग प्रकार के कार्यों के लिये अलग रीति उपयुक्त रहती है। साथ ही, कार्य विश्लेषण के लिये केवल एक नहीं अपितु कई रीतियों का आश्रय किया जाता है।

कार्य डिजाइन में कार्य की विषय–वस्तु को निर्धारित किया जाता है। कार्य की विधियों पर ध्यान दिया जाता है। साथ ही, कार्य डिजाइन में मानवीय पक्ष और व्यवहारपरक बिन्दुओं को भी शामिल किया जाता है। कार्य अभिरूप के चार अंग हैं– कार्य सरलीकरण, कार्य चक्रानुक्रम, कार्य समृद्धिकरण, कार्य विस्तारण। कार्य अभिरूप का एक उद्देश्य है कि कार्य को रूचिकर बनाये रखा जाये। कार्य अभिरूप का दूसरा प्रयोजन है कि बेहतर कार्य निष्पादन सुनिश्चित किया जा सके।

3.9 शब्दावली

कार्य विश्लेषण (Job Description) – कार्य विश्लेषण में कार्य विवरण तथा कार्य विशिष्टता विवरण तैयार किया जाता है।

कार्य विवरण (Job Description) – कार्य विवरण में कार्य की सम्पूर्ण सूचनायें इंगित की जाती हैं। कार्य सम्बन्धी कर्तव्य एवं दायित्वों का विशेष उल्लेख होता है।

कार्य विशिष्टता (Job Specification) – कार्य के लिये वांछित योग्यताओं एवं अनुभव का विशेष वर्णन होता है।

कार्य निष्पादन प्रमाप (Job Performance Standard) – कर्मचारी से अपेक्षित काम की मात्रा एवं गुणवत्ता के लिये मानदण्ड तय किये जाते हैं जोकि बाद में निष्पादन मूल्यांकन का आधार बनते हैं।

कार्य अभिरूप (Job Design) – काम को छोटे से छोटे भाग में बांटा जाता है, इसमें अभिवृद्धि की जाती है, काम का विस्तार किया जाता है, काम को चक्रानुक्रम में कराना प्रस्वावित किया जाता है।

कार्य निष्पादन रीति (Job Performance Method) –यह कार्य विश्लेषण की एक रीति है जिसमें विश्लेषक कार्य को स्वयं करके अनुभव प्राप्त करता है और इससे समंक सृजन किया जाता है।

कार्य सरलीकरण (Job Simplification) – कार्य को छोटे से छोटे भाग में विभक्त करने को कार्य सरलीकरण कहा जाता है।

कार्य चक्रानुक्रम (Job Rotation) – एक–सा कार्य करने पर नीरसता आती है, कर्मचारियों के कार्य में परिवर्तन होते रहने की योजना बनाई जाती है जिसे चक्रानुक्रम कहा जाता है।

कार्य समृद्धिकरण (Job Enrichment) – अधिक उत्तरदायित्व सौपकर, कर्तव्य परिधि को बढ़ाना, यह कार्य समृद्धिकरण कहा जाता है।

कार्य विस्तारण (Job Enlargement) – कार्य की इकाई में कुछ अतिरिक्त कार्य जोड़कर कार्य को विस्तारित किया जाता है, इससे कर्मचारी की भूमिका बढ़ जाती है।

3.10 बोध प्रश्न

1. कार्य विश्लेषण का अंग –
   (ए) कार्य विवरण है
   (बी) व्यक्ति विशिष्टता है
   (सी) निष्पादन प्रमाप है
   (डी) उपर्युक्त सभी हैं
2. कार्य डिजाइन का अंग है–
   (ए) कार्य विवरण
   (बी) कार्य विशिष्टता
   (सी) कार्य चक्रानुक्रम
   (डी) उपर्युक्त में कोई नहीं
3. कार्य विशिष्टता किससे सम्बन्धित है?
   (ए) कार्य के लिये अपेक्षित योग्यताओं से
   (बी) कार्य चक्रानुक्रम से
   (सी) कार्य डिजाइन से
   (डी) उपर्युक्त में कोई नहीं
4. कार्य विवरण किससे सम्बन्धित है?
   (ए) कार्य विश्लेषण
   (बी) प्रवृत्ति विश्लेषण
   (सी) प्रतीपगमन विश्लेषण
   (डी) मार्कोव मॉडल
5. व्यक्ति विशिष्टता का सम्बन्ध किससे है?
   (ए) मार्कोव विश्लेषण
   (बी) अधिशासी विकास
   (सी) कार्य विश्लेषण
   (डी) उपर्युक्त में किसी से नहीं

3.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (डी) उपर्युक्त सभी हैं
2. (सी) कार्य चक्रानुक्रम
3. (ए) कार्यके लिये अपेक्षित योग्यताओं से
4. (ए) कार्य विश्लेषण
5. (सी) कार्य विश्लेषण

3.12 स्वपरख प्रश्न

1. कार्य विश्लेषण का अर्थ स्पष्ट कीजिए एवं कार्य विश्लेषण की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. कार्य विश्लेषण की विविध तकनीकों/ विधियों का वर्णन कीजिए।
3. कार्य विश्लेषण का क्या अर्थ है? कार्य विश्लेषण के अंग बताइए।
4. कार्य विश्लेषण का क्या आशय है? कार्य विश्लेषण की प्रक्रिया समझाइए।
5. कार्य विवरण का क्या अर्थ है? कार्य विवरण का प्रारूप दीजिए।
6. कार्य विशिष्टता विवरण की विषय–वस्तु क्या है? कार्य विवरण और कार्य विशिष्टता विवरण में अन्तर कीजिए।
7. कार्य डिजाइन को परिभाषित कीजिए। कार्य डिजाइन और कार्य विश्लेषण में भेद कीजिए।
8. ''कार्य विश्लेषण एक विशिष्ट कार्य की क्रियाओं एवं उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित सूचनाओं के अध्ययन एवं एकत्र करने की प्रक्रिया है।'' फि्लप्पो के कथन की विवेचना कीजिए एवं कार्य विश्लेषण का महत्व स्पष्ट कीजिए।

3.13 सन्दर्भ पुस्तकें

1. प्रसाद एल.एम. प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुलतान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2010
2. एण्डरसन, राबर्ट, प्रोफेसनल सेल्स मैनेजमेंट , प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1981
3. स्मिथ एफ. रोजर, सेल्स मैनेजमेंट–ए प्रैक्टिसनर्स गाइड प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1987

इकाई 4 मानव संसाधन नियोजन (Human Resource Planning)

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 मानव संसाधन नियोजन का अर्थ एवं परिभाषा
4.3 मानव संसाधन नियोजन की विशेषतायें
4.4 मानव संसाधन की मांग और पूर्ति को प्रभावित करने वाले घटक
4.5 मानव संसाधन नियोजन के अंग
4.6 मानव संसाधन पूर्वानुमान की विधियां
4.7 मानव संसाधन नियोजन की प्रक्रिया
4.8 मानव संसाधन नियोजन के मात्रात्मक पक्ष तथा गुणात्मक पक्ष
4.9 मानव संसाधन नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व
4.10 सारांश
4.11 शब्दावली
4.12 बोध प्रश्न
4.13 बोध प्रश्नों के उत्तर
4.14 स्वपरख प्रश्न
4.15 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- मानव संसाधन नियोजन के विविध आयाम व विशेषताओं को समझ सकें।
- मानव संसाधन नियोजन को परिभाषित कर सकें और इसका आशय स्पष्ट कर सकें।
- मानव संसाधन के विभिन्न अंग बता सकें।
- मानव संसाधन पूर्वानुमान की विविध विधियां समझ सकें।
- मानव संसाधन नियोजन की प्रक्रिया का वर्णन कर सकें।
- मानव संसाधन के मात्रात्मक और गुणात्मक पक्ष पर प्रकाश डाल सकें।
- मानव संसाधन नियोजन की आवश्यकता और महत्व स्पष्ट कर सकें।

4.1 प्रस्तावना

साधारणतौर पर यह कहा जाता है कि ऐसी अर्थव्यवस्था जहां पर श्रम आधिक्य है, वहां मानव संसाधन नियोजन करने की कोई आवश्यकता नहीं है। संगठन में जब जरूरत हो, भर्ती की जा सकती है। किन्तु, प्रबन्धकीय दृष्टिकोण इससे भिन्न है क्योंकि श्रम आधिक्य होना पृथक बात है, पर संस्था के लिये उपयुक्त और अपेक्षा अनुरूप कुशल मानव संसाधन उपलब्ध होना दूसरी बात है। कुशल श्रम शक्ति का सभी जगह अभाव देखा जाता है। संस्थायें अपनी भावी आवश्यकताओं के लिये कम से कम एक–दो वर्ष पूर्व अपने भावी कर्मचारियों की खोज शुरू कर देती हैं। अधिक कौशलपूर्ण भूमिकाओं के लिये यह जन शक्ति प्रबन्धन और भी कठिन हो जाता है। संगठन में जन शक्ति की उपलब्धता के लिये बहुत युक्तिपूर्ण योजना बनाई जाती है। इस योजना बनाने के कार्य को मानव

संसाधन नियोजन कहा जाता है। मानव संसाधन नियोजन के स्थान पर सेविवर्गीय नियोजन शब्द भी प्रयुक्त होता है। इसी प्रकार, जन शक्ति नियोजन अथवा मानव शक्ति नियोजन शब्द भी मानव संसाधन नियोजन के समानार्थी के रूप में इस्तेमाल किये जाते हैं। यहां, यह उल्लेखनीय है कि मानव संसाधन अपेक्षाकृत नई अवधारणा है । मानव संसाधान दृष्टिकोण में मानव व्यवहारपरक पहलुओं को अधिक विस्तार दिया गया है। किंचित भिन्न सन्दर्भ में, मानव संसाधन नियोजन को रोजगार नियोजन की संज्ञा भी दी जाती है।

4.2 मानव संसाधन नियोजन का अर्थ एवं परिभाषा

मानव शक्ति नियोजन का उद्देश्य है कि संगठन में कर्मचारियों की मांग और पूर्ति में संतुलन बनाये रखा जाये। व्यासायिक प्रतिष्ठान पूरा प्रयास करते हैं कि उनकी संस्था में कर्मचारियों की मांग और पूर्ति में सदैव संतुलन बना रहे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये सुनियोजित पद्धति का विकास किया जाता है। मानव शक्ति नियोजन का प्रमुख लक्ष्य है कि संगठन में आवश्यकतानुरूप कर्मचारियों की उपलब्धता को सतत् बनाये रखा जाये। इसके अन्तर्गत, मानव संसाधन की आवश्यकता का पूर्वानुमान लगाया जाता है। यह पूर्वानुमान सटीक हो इसके लिये विविध तकनीकों का आश्रय लिया जाता है। इस कार्य के लिये निर्धारित प्रक्रिया का अनुसरण किया जाता है। इस क्रम में सर्वप्रथम, उन कार्यों की पहचान की जाती है जिनके लिये नवीन कार्मिकों की भर्ती की जायेगी। दूसरे, मानव संसाधन नीति का सन्दर्भ लिया जाता है और पदोन्नति से भरे जाने वाले अवसरों का निर्णय किया जाता है। तीसरे, उस कौशल की पहचान की जाती है जिसकी वांछित कार्य के लिये आवश्यकता होगी। चौथे चरण में, मानव संसाधन कार्यक्रम निर्धारित किये जाते हैं। अब इन कर्याक्रमों के क्रियान्वयन और मूल्यांकन का कार्य शेष रहता है। मानव संसाधन का एक अंग मानव संसाधन अंकेक्षण है जिसे नियन्त्रण गतिविधि के रूप में प्रयोग किया जाता है।

एडबिन बी. गिसलर के अनुसार, मानव शक्ति नियोजन मानव संसाधनों का पूर्वानुमान करने, विकसित करने, उपयोग करने तथा नियन्त्रित करने की एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक संस्था यह सुनिश्चित करती है कि वह सही स्थान पर सही संख्या में, सही प्रकार के कर्मचारियों को सही कार्यों के लिये रखती है, जिसके लिये आर्थिक दृष्टि से वे अधिक उपयोगी हैं।''

" Man power planning is a process including forecasting, development, implementing and controlling by which a firm ensures that it has the right number of people and right kind of people at the right place at the right time for things for which they are economically most useful." – **Edwin B. Giesler**

डेल एस. बीच के शब्दों में, '' मानव शक्ति नियोजन यह निर्धारित एवं सुनिश्चित करने की प्रक्रिया है कि संगठन में पर्याप्त मात्रा में ऐसे योग्य व्यक्तियों को, सही समय पर, ऐसे कार्यों को निष्पादित करने के लिये रखेगा जो उपक्रम की आवश्यकताओं की पूर्ति के साथ–साथ उन व्यक्तियों को भी संतुष्टि प्रदान करेंगे।''

According to **Dale S. Beach,** " The man power planning is a process for determining and assuring that the organization will have an adequate number of qualified persons, available at the proper times, performing jobs which meet the needs of the enterprise and which provides satisfaction for the individuals involved.

4.3 मानव संसाधन नियोजन की विशेषतायें अथवा लक्षण (Characteristics of Human Resource Planning)

मानव संसाधन नियोजन की विविध परिभाषाओं के आधार पर मानव संसाधन नियोजन की निम्नांकित विशेषतायें रेखांकित की जा सकती हैं:–

- मानव संसाधन नियोजन मानव संसाधन प्रबन्ध का महत्वपूर्ण अंग है। मानव संसाधन नियोजन एक सतत् प्रक्रिया है।
- मानव संसाधन नियोजन संगठन के समग्र नियोजन एवं रणनीति का एक अंश है।
- मानव संसाधन नियोजन का उद्देश्य संगठन में मानव शक्ति की मांग और पूर्ति में संतुलन बनाये रखना है।
- मानव संसाधन नियोजन प्रायः तीन स्तरों पर किया जाता है– अल्पकालिक, दीर्घकालिक, आकस्मिक।
- मानव संसाधन नियोजन में सम्मिलित हैं– जन शक्ति आवश्यकताओं का पूर्वानुमान, वर्तमान कार्य शक्ति का विश्लेषण, संभावित कार्मिक समस्याओं का आकलन।
- मानव संसाधन नियोजन के अन्तर्गत मानव संसाधन अधिप्राप्ति, सही उपयोग, मानव विकास, एवं अनुरक्षण क्रियायें और कार्यक्रम आते हैं।
- मानव संसाधन नियोजन संगठन के लक्ष्यों के साथ–साथ कर्मचारियों के विकास एवं कार्य संतुष्टि पर भी बल देता है।

4.4 मानव संसाधन की मांग और पूर्ति को प्रभावित करने वाले घटक

मानव संसाधन नियोजन की प्रमुख विषय–वस्तु मानव संसाधन की मांग और पूर्ति में सामंजस्य बनाना है। जन शक्ति की मांग और पूर्ति को प्रभावित करने वाले अनेक तत्व हैं। जन शक्ति की मांग और पूर्ति पर घरेलू अर्थव्यवस्था के अलावा वैश्विक घटकों का भी प्रभाव होता है। व्यावसायिक वातावरण के विविध अंग भी श्रम बाजार को सीधे तौर पर प्रभावित करते हैं। मानव संसाधन की मांग एवं पूर्ति को प्रभावित करने वाले मुख्य बिन्दुओं को निम्न तालिका में इंगित किया गया है–

	मानव संसाधन की मांग को प्रभावित करने वाले घटक	**मानव संसाधन की पूर्ति को प्रभावित करने वाले घटक**
1.	वैश्विक, राष्ट्रीय, क्षेत्रीय आर्थिक विकास	जनसंख्या वृद्धि, जन्म, मृत्यु, माइग्रेशन दरें, आयु संरचना
2.	मौद्रिक नीति	वैश्विक क्षेत्रीय ग्रुपों की नीतियां एवं शर्तें
3.	उपभोक्ताओं की अभिरूचि प्रवृत्तियां, उत्पादित वस्तुओं और सेवाओं की संरचना	पर्यावरण, सामाजिक और सांस्कृतिक तत्व
4.	टैक्नॉलॉजी	शिक्षा और प्रशिक्षण
5.	श्रम कानून, सुरक्षा नियम, प्रशिक्षण एवं विकास	पारिश्रमिक दरें
6.	कर संरचना, कर प्रशासन, विनियोग और प्रेरक योजनायें	कार्य की दशायें
7.	श्रम उत्पादकता, श्रम की प्रति घंटा उत्पादन दर	करिअर काउंसलिंग एवं गाइडेंस, रोजगार सूचनायें एवं प्लेसमेण्ट प्रविधि

4.5 मानव संसाधन नियोजन के अंग (Components of Human Resource Planning)

1. **भावी आवश्यकताओं का पूर्वानुमान**– मानव संसाधन नियोजन का प्रथम चरण उपक्रम की भावी आवश्यकताओं का पूर्वानुमान करना है। यह पूर्वानुमान कम्पनी की भावी योजनाओं को

ध्यान में रखकर किया जाता है। पूर्वानुमान करते समय अर्थव्यवस्था में वर्तमान प्रवृत्तियां, उद्योग में संभावित परिवर्तन, उपक्रम विकास दर, श्रम बाजार की प्रकृति आदि घटकों को ध्यान में रखा जाता है। पूर्वानुमान के लिये कई विधियों का उपयोग किया जाता है जिनमें प्रमुख हैं– निर्णय एवं अनुभव, बजटीय नियोजन, कार्य प्रमाप समंक, मुख्य भविष्यवाची घटक। नियोजन की सफलता के लिये पूर्वानुमान का सटीक होना जरूरी है। अतः इस कार्य में यथेष्ठ सावधानी रखी जाती है।

2. **वर्तमान संसाधनों का विश्लेषण एवं गणना–** मानव संसाधन नियोजन का दूसरा प्रमुख कार्य संगठन में नियुक्त वर्तमान मानव शक्ति की गणना, विश्लेषण एवं मूल्यांकन करके वास्तविक स्थिति का अध्ययन करना है। इसका उद्‌देश्य यह है कि वर्तमान मानव संसाधन का अधिकतम उपयोग किया जा रहा है अथवा नहीं। वर्तमान में कर्मचारियों की कमी है अथवा आधिक्य है, यह जानकारी होने पर आगे की योजना बनाना युक्तियुक्त रहता है। साथ ही, वर्तमान संसाधनों के सर्वोत्तम उपयोग के लिये सुझाव और मार्गदर्शन भी मिल जाता है।
3. **मानव संसाधन समस्याओं का पूर्वाभास–** मानव संसाधन से सम्बन्धित भविष्य की समस्याओं को भी नियोजन करते समय ध्यान में रखा जाता है। नियोजन का आधार होत हैं – विगत अनुभव और वर्तमान परिस्थितियां। पूर्व के अनुभव और वर्तमान परिदृश्य से आने वाले समय की सम्भावित समस्याओं का आकलन करने का प्रयास किया जाता है। इन समस्याओं को ध्यान में रखकर ही भविष्य के लिये योजना बनाई जाती है। मानव संसाधन के मात्रात्मक और गुणात्मक दोनों पहलुओं पर विचार किया जाता है।
4. **आवश्यक कार्यक्रमों का निर्माण–** मानव संसाधन नियोजन के अन्तर्गत भर्ती, चयन, प्रशिक्षण, अभिप्रेरण, क्षतिपूर्ति, निर्देशन एवं नियंत्रण के लिये कार्यक्रम तैयार किये जाते है। मानव संसाधन प्रबन्ध की सफलता इन कार्यक्रमों की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। कार्यक्रमों में कार्यान्वयन के साथ ही, निर्देशन और नियंत्रण की भूमिकायें भी स्पष्ट की जाती हैं ताकि संगठन में मानव संसाधन का आदर्श उपयोग हो सके और मानव शक्ति का सर्वोत्तम योगदान प्राप्त किया जा सके।

4.6 मानव संसाधन पूर्वानुमान की विधियां (Methods for Forecasting Human Resources)

मानव संसाधन की भावी आवश्यकताओं के विषय में पूर्वानुमान किया जाता है, पूर्वानुमान करने के लिये कुछ विधियां प्रयुक्त होती हैं। प्रायः पूर्वानुमान के तीन स्तर होते हैं– (1) अल्पकालिक, (2) दीर्घकालिक, और (3) आकस्मिक । अलग–अलग प्रकार के उद्योगों में भिन्न प्रकार की पूर्वानुमान विधि उपयुक्त होती है। इसीप्रकार, अवधि के आधार पर भी उपयुक्त विधि का चयन किया जाता है। मानव संसाधन नियोजन के लिये पूर्वानुमान की प्रचलित विधियां हैं–

(1) निर्णय एवं अनुभव (Judgement & Experience)
(2) बजटीय नियोजन (Budgetary Planning)
(3) कार्य प्रमाप समंक (Work Standards Data)
(4) मुख्य भविष्यवाची घटक (Key Predictive Factors)

(1) **निर्णय एवं अनुभव (Judgement & Experience)** – यह विधि अल्पकालिक पूर्वानुमान के लिये उपयोगी मानी जाती है। यह पद्धति विगत अनुभव (thumb rule) और निर्णय नियम (decision rule) पर आधारित है। इसमें उन व्यक्तियों के अनुभव आधारित अनुमान शामिल किये जाते हैं जो

उपक्रम के उत्पादों और प्रक्रियाओं से बहुत ज्यादा परिचित होते हैं। पर्यवेक्षक और मध्य स्तरीय प्रबन्धक व्यावसायिक क्रियाओं के विषय में करीब से जानकारी रखते हैं। वे आसानी से अनुमान कर सकते हैं कि कितने उत्पादन के लिये कितने श्रमिक और कितने सुपरवाइजर की आवश्यकता होगी। इस श्रेणी में एक **डेल्फी विधि (Delphi Technique)** भी अपनाई जाती है। इसमें विशेषज्ञों के समूह से विचार प्राप्त किये जाते हैं और उन्हें व्यवस्थित करके निष्कर्षों में तब्दील किया जाता है। विषय के ऐसे विशेषज्ञ जो समस्या से बहुत अच्छी तरह परिचित होते हैं, व्यक्तिगत रूप से अपने पूर्वानुमान प्रस्तुत करते हैं। मॉडरेटर सभी पूर्वानुमानों को एकत्र करता है और इनका सार–संक्षेप सभी विशेषज्ञों को बांट देता है। अब, विशेषज्ञ इन पर पुनः विचार विमर्श करते हैं। अन्त में, एक सर्व–सम्मत पूर्वानुमान को स्वीकार कर लिया जाता है।

(2) **बजटीय नियोजन (Budgetary Planning)** – बजट संगठन में नियोजन और नियंत्रयण दोनों का प्रमुख उपकरण है। प्रायः सभी उपक्रम बजट अवश्य बनाते हैं। बड़ी संस्थायें वार्षिक के साथ–साथ मासिक बजट भी बनाती हैं। सम्पूर्ण उपक्रम का बजट विभागीय बजटों के आधार पर बनाया जाता है। बजट मानव संसाधन नियोजन के लिये बहुत ही प्रासंगिक अभिलेख है। प्रत्येक विभाग के प्रभारी अपनी क्रियाओं के स्तर, योजनाओं, विकास कार्यक्रमों, अनुसंधान, नये उत्पाद आदि से सम्बन्धित सूचनाओं को कर्मचारियों, सामग्रियों, खर्चों, उपकरणों, सुविधाओं आदि की आवश्यकताओं में रूपान्तरित कर सकते हैं। बजट में प्रबन्धक कर्मचारियों की विभिन्न श्रेणियों के अन्तर्गत अपनी आवश्यकताओं को प्रकट करते हैं। इसप्रकार वार्षिक विभागीय बजटों के आधार पर संस्था के लिये कर्मचारियों की आवश्यकता का पूर्वानुमान तैयार हो जाता है।

(3) **कार्य प्रमाप समंक (Work Standards Data)** –औद्योगिक इंजीनियरिंग, कार्य मापन तकनीकों के द्वारा प्रत्येक कार्य के लिये श्रम घंटे तथा इकाई समय निर्धारित करती है। विभिन्न विभागों के लिये कार्य प्रमाप निश्चित किये जाते हैं। यद्यपि ये कार्य प्रमाप अधिकांशतः उत्पादन विभाग द्वारा ही तैयार किये जाते हैं, किन्तु कई कम्पनियों में अनुरक्षण, मशीनी तथा लिपिकीय क्रियाओं के लिये भी कार्य प्रमाप तैयार किये जाते हैं। इस प्रकार कार्य प्रमाप समंकों, व्यक्ति –दिनों, व्यक्ति–घंटों, इकाई–समय व उत्पादन अनुसूचियों को कर्मचारियों की संख्या में बदल लिया जाता है।

(4) **मुख्य भविष्यवाची घटक (Key Predictive Factors)** – इस प्रणाली के अन्तर्गत एक अथवा कुछ सीमित ऐसे घटकों की पहचान की जाती है जिनका मानव संसाधन से गहरा सम्बन्ध होता है। इन्हें प्रभावी संकेतक भी कहा जाता है। ऐसे घटकों की पहचान करने के लिये मानव संसाधन विभाग कई तत्वों– विक्रय मात्रा, उत्पादित इकाईयों की संख्या, ग्राहकों की संख्या, बाजार का आकार, प्रतिस्पर्धा आदि पर विचार करता है और संकेतकों का निर्धारण किया जाता है। विभिन्न व्यावसायिक संकेतकों और मानव शक्ति में होने वाले परिवर्तनों के सम्बन्ध को तय करने के लिये परिमाणात्मक विश्लेषण भी किया जाता है। मानव संसाधन नियोजक विभिन्न घटकों– टेक्नॉलॉजी के परिवर्तनों, मानव शक्ति उपयोग, कार्य घंटों, कार्य क्षमता, नये अनुसंधानों, उपभोग प्रवृत्तियों का अध्ययन करके मानव संसाधन की मांग के बारे में पूर्वानुमान कर सकता है।

4.7 मानव संसाधन नियोजन की प्रक्रिया (Process of Human Resource Planning)

मानव संसाधन नियोजन के लिये अपनाई जानी वाली प्रक्रिया का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है–

(1) **मानव संसाधन नियोजन के उद्देश्य** – मानव संसाधन नियोजन कारपोरेट नियोजन का एक अंग है। इसलिये, मानव संसाधन नियोजन को समग्र संगठनात्मक नियोजन के अनुरूप ही तैयार

किया जाना चाहिए। मानव संसाधन नियोजन का उद्देश्य होता है कि मानव संसाधन पर किये गए निवेश पर भविष्य में अधिकतम प्रत्याय अर्जित हो सके। मानव संसाधन नियोजन को पर्याप्त सावधानी से किया जाना चाहिए क्योंकि इसके दूरगामी प्रभाव होते हैं। एक बार इस कार्य में त्रुटि हो जाने पर, इसमें सुधार करना बहुत कठिन और हानिप्रद हो जाता है। मानव संसाधन नियोजन करते समय मानव संसाधन के दोनों पहलुओं पर उचित ध्यान दिया जाना जरूरी है– मात्रात्मक पक्ष और गुणात्मक पक्ष। विविध उद्योगों में परिदृश्य भिन्न होता है, कहीं मात्रा का अधिक महत्व है, कहीं गुणवत्ता अधिक महत्वूपर्ण होती है। आजकल व्यवसायों में
नॉलेज वर्कर्स की मांग बहुत ज्यादा है। इनकी जल्दी व्यवस्था करना सम्भव नहीं होता है।

(2) **मानव संसाधन का पुनर्गठन** – वर्तमान में उपक्रम में कार्यशील कर्मचारियों की स्थिति का विश्लेषण किया जाता है। मानव संसाधन विभाग में संस्था में कार्यरत कर्मचारियों की योग्यता की सूची तैयार की जाती है। सूचीयन के इस कार्य को कौशल सूची (skill inventory) बनाना कहते हैं। इस सूची में विभिन्न श्रेणियों जैसे –प्रबन्धकीय, तकनीकी, लिपिकीय, पेशेवर, दस्तकार आदि में नियुक्त कर्मचारियों के विषय में विस्तृत जानकारी रहती है। इसे मानव संसाधन सूचना प्रणाली (Human Resource Information System) कहा जाता है। कौशल सूची में निम्न सूचनाओं का समावेश होता है–

- वैयक्तिक सूचनायें
- शिक्षा
- नियुक्ति सूचनायें
- निष्पादन एवं संभावना (potential)
- करिअर लक्ष्य
- पूर्व नियोजन/नियुक्तियां
- उत्पादकता/ कार्य कुशलता

वर्तमान मानव शक्ति (manpower inventory) का विश्लेषण करते समय काम के साप्ताहिक घंटे, अवकाश, अनुमन्य अवकाश (admissible leave) आदि पहलुओं का आकलन भी किया जाता है। इस आधार पर, संगठन की सम्भावित आवश्यकताओं का अनुमान करना आसान हो जाता है। संगठन के लिये निपुण कार्मिकों की खोज निरन्तर जारी रखी जाती है। संस्थायें अपने पास भविष्य की भर्ती के लिये प्रतीक्षा सूची बनाकर रखती हैं।

(3) **कार्य अध्ययन (work study) एवं कार्य विश्लेषण (Job analysis)** –किसी उद्योग में काम करने के तरीकों का आकलन करने की प्रणाली जिससे अधिकतम दक्षता और अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके, कार्य अध्ययन कही जाती है। कार्य अध्ययन तकनीक को काम में लाया जा सकता है, जब यह जानने के लिये काम मापांकन लागू किया जाना सम्भव हो कि गतिविधियां कब तक चलेंगी तथा कितना श्रम अपेक्षित है। यह कार्य भार विश्लेषण (work load analysis) कहा जाता है। आने वाले वर्षों में, प्रत्येक संयत्र के कार्यभार के आधार पर कार्य शक्ति की समीक्षा की जाती है। यह समीक्षा करते समय अनुपस्थितिवाद तथा श्रम आवर्त्त (labour turnover) दरों को ध्यान में रखा जाता है।

कार्य विश्लेषण मानव शक्ति आवश्यकताओं का गुणात्मक पहलू है। उत्तरदायित्वों और कर्तव्यों के रूप में किसी कार्य के आधार पर मांग का निर्धारण किया जाता है। कार्य के लिये अपेक्षित

चातुर्य, गुण और मानवीय व्यवहार कौशल आदि निश्चित किये जाते हैं। इससे कार्यों की संख्या और प्रकारों के लिये अपेक्षित योग्यतायें तय की जाती हैं। कार्य समीक्षा की सहायता से यह देखा जाता है कि काम की मात्रा कितनी है और एक औसत श्रमिक एक दिन में कितना काम कर सकता है। मानव शक्ति नियोजन के लिये यह आधारभूत गतिविधि है कि काम की मात्रा और अपेक्षित कार्य शक्ति के लिये अनुमान किया जाये। प्रबन्धकीय स्तरों पर, सही कार्य विवेचन प्रशासकीय प्रतिभा की स्टॉक सूचियों की रचना करने में सहायता करता है।

(4) **भर्ती एवं चयन योजना (Recruitment & Selection Plan)** – भर्ती करने से पूर्व, भर्ती नीति निर्धारित की जाती है। भर्ती नीति में सर्वप्रथम भर्ती के उद्देश्य स्पष्ट किये जाते हैं। बाद में, भर्ती की विधि को विस्तार दिया जाता है। भर्ती के विविध स्रोत उपलब्ध हैं, इन स्रोतों के अपने गुण–दोष हैं। साथ ही, अलग प्रकार के मानव संसाधन के लिये भिन्न भर्ती स्रोत की उपयुक्तता हो सकती है। इस स्थिति में भर्ती के स्रोतों की पहचान और उनमें से उपयुक्त स्रोत का चयन महत्वपूर्ण हो जाता है। भर्ती नीति में सरकारी नीति और नियमों का सन्दर्भ लेने भी अनिवार्य है, ताकि विषयगत कानून का उल्लंघन होने की स्थिति उत्पन्न न हो। पदोन्नति और स्थानान्तरण नीति भी भर्ती नीति से सम्बन्धित हैं। अतः इन सभी नीतियों में सामंजस्य की आवश्यकता होती है। भर्ती स्रोत निश्चित कर लेने के बाद, अगला कार्य चयन सम्बन्धी प्रक्रिया सम्पादित करना होता है। चयन प्रक्रिया में भी राजकीय नियम अनुकूलता और पारदर्शिता आदि गुण होना आवश्यक है। साथ ही, यह कार्य संगठन और मानव संसाधन की नीति और अपेक्षा के अनुरूप हो।

(5) **प्रशिक्षण तथा विकास कार्यक्रम (Training & Development Programme)** – मानव संसाधन सूचना प्रणाली में कौशल सूची का उपयोग प्रशिक्षण तथा विकास कार्यक्रम बनाने के लिये भी किया जाता है। प्रमुख रूप से प्रशिक्षण दो प्रकार के हैं– (1) प्रारम्भिक प्रशिक्षण और (2) पुनश्चर्या कार्यक्रम । दोनों ही प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों का नियोजन करते समय चातुर्य स्टॉक सूची का सन्दर्भ लिया जाता है। प्रबन्धकीय संवर्ग के लिये अधिशासी विकास कार्यक्रम आयोजित किये जाते हैं। प्रायः सभी कार्यों के लिये किसी न किसी प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रशिक्षण से निष्पादन में सुधार देखने को मिलता है। कार्यरत कार्मिकों को समय–समय पर पुनश्चर्या कार्यक्रमों के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे अपने ज्ञान और कौशल को अद्यतन कर सकें। कर्मचारियों की प्रतिभा का उपयोग करने के लिये प्रशिक्षण तथा विकास कार्यक्रम आवश्यक हो जाते हैं।

(6) **मानव संसाधन नियोजन का मूल्यांकन (Appraisal of HR Planning)** – रोजगार कार्यक्रम, पदोन्नति नीति, प्रशिक्षण कार्यक्रमों की सामयिक समीक्षा की जाती है। इन कार्यक्रमों की प्रभावोत्पादकता का आकलन किया जाना चाहिए। कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने पर इनकी कमियां मालूम होती हैं और भविष्य में त्रुटियों को दूर करने का प्रयास किया जाता है। कार्यक्रमों की समीक्षा के साथ ही, मानव शक्ति स्टॉक की विषय सूची को भी अपडेट किया जाता है। मानव संसाधन नियोजन का मूल्यांकन आने वाले समय के लिये किये जाने वाले नियोजन के लिये मार्गदर्शक का कार्य करता है। मानव संसाधन कार्यक्रमों की समीक्षा से संगठन में कई प्रकार के सुधारात्मक उपायों की आवश्यकता मालूम हो जाती है। कर्मचारियों की कमी अथवा आधिक्य, कार्मिकों में कौशल न्यूनता आदि का स्पष्ट संकेत इस मूल्यांकन के दौरान मिल जाता है और परिष्कार के लिये मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

मानव संसाधन नियोजन की प्रक्रिया

मानव संसाधन नियोजन के उद्देश्य

↓

मानव संसाधन का पुनर्गठन

↓

कार्य विश्लेषण

↓

भर्ती एवं चयन योजना

↓

प्रशिक्षण तथा विकास कार्यक्रम

↓

मानव संसाधन नियोजन का मूल्यांकन

मानव संसाधन नियोजन की प्रक्रिया

4.8 मानव संसाधन नियोजन के मात्रात्मक पक्ष तथा गुणात्मक पक्ष **(Quantitative & Qualitative Aspects of HR Planning)**

मानव संसाधन नियोजन के दो अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष हैं– मात्रात्मक पक्ष और गुणात्मक पक्ष। मात्रात्मक पक्ष को परिमाणात्मक पक्ष भी कहा जाता है। परिमाणात्मक पक्ष में पुनः दो भाग हैं – मांग पक्ष और पूर्ति पक्ष।

मानव संसाधन नियोजन का मांग पक्ष

संगठन में कर्मचारियों की आवश्यक संख्या के निर्धारण का कार्य मांग पक्ष से सम्बन्धित है। कर्मचारियों की संख्या का अनुमान लगाने के लिये यह आवश्यक है कि नियोजक को संगठन के उद्देश्यों और भावी योजनाओं के विषय में विस्तृत जानकारी हो। इसके आधार पर ही, भविष्य के किसी समय बिन्दु के लिये संगठन की मानव संसाधन आवश्यकताओं का निर्धारण किया जा सकता है। मानव संसाधन की मांग का पूर्वानुमान करने के लिये कई विधियां प्रयोग में लाई जाती हैं। संगठन में मानव संसाधन के मांग पक्ष के अध्ययन में निम्नक्रम अपनाया जाता है–

(1) **कार्य भार विश्लेषण**– कार्य भार विश्लेषण का सम्बन्ध संगठन में कुल कार्य के परिमाण से है। कार्य की मात्रा का अध्ययन बजट, उत्पादन, विक्रय और वितरण, प्रशासन, शोध आदि शीर्षकों के सन्दर्भ में किया जाता है। यह मांग पक्ष के परीक्षण का पहला कदम होता है।

(2) **वर्तमान मानव संसाधन विश्लेषण**– कार्य के कुल परिमाण के आकलन के बाद, संस्था में कार्यरत वर्तमान कर्मचारियों की संख्या को देखा जाता है। इसके साथ, श्रम आवर्त्त दर, अनुपस्थिति दर, स्थानान्तरण, पदोन्नति, त्यागपत्र आदि घटकों का सावधानीपूर्वक सन्दर्भ लिया जाता है।

(3) **निर्णय एवं अनुभव (Judgement & Experience)** आधारित अनुमान– प्रायः छोटी इकाईयों में व्यस्थित समंक रखे जाने की परम्परा नहीं होती है। साथ ही, वहां ऐसे आंकड़े एकत्र करने की आवश्यकता भी नहीं होती है। पर्याप्त सूचनाओं के अभाव में, भविष्य के लिये अनुमान लगाने का कार्य प्रबन्धक अपनी सूझबूझ और अनुभव के आधार पर करते हैं। नियुक्त किये जाने वाले कर्मचारियों, उनकी क्षमताओं आदि के विषय में प्रबन्धक अपने विवेक से निर्णय कर लेते हैं। लघु आकार संगठनों में यह रीति अपनाई जाती है। अल्पकालिक नियोजन के लिये पूर्वानुमान की यह विधि उपयुक्त मानी

जाती है। इसी श्रेणी में डेल्फी विधि भी अपनाई जाती है जिसमें विषय विशेषज्ञों के समूह की राय के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

(4) **सांख्यकीय एवं गणतीय तकनीकें**– दीर्घकालिक सेविवर्गीय पूर्वानुमान ज्यादा सांख्यकीय और गणितीय तकनीकों की अपेक्षा करता है। नवीन गणितीय प्रणालियों के विकास के साथ, पूर्वानुमान के कार्य में आसानी हो गई है। गणना कार्य के लिये कम्प्यूटर का उपयोग करके, बहुत सरलता से निष्कर्ष प्राप्त हो जाते हैं। पूर्वानुमान के लिये बहुधा प्रयुक्त होने वाली सांख्यकीय एवं गणतीय विधियां निम्न प्रकार हैं–

(अ) अनुपात तथा प्रवृत्ति विश्लेषण (Ratio and Trend Analysis)

(ब) रेखीय प्रतीपगमन (Regression Analysis)

(स) अर्थमितीय मॉडल्स (Econometric Models)

(द) ब्यूरैक्स–स्मिथ मॉडल (Bureks-Smith Model)

सभी सांख्यकीय एवं गणितीय विधियां कुछ मान्यताओं पर आधारित होती हैं। साथ ही, प्रत्येक मॉडल की अपनी सीमायें होती हैं। मान्यताओं और सीमाओं को ध्यान में रखकर किन्हीं परिस्थितियों के लिये उचित रीति अथवा मॉडल का चयन किया जाता है। इसके अतिरिक्त, विश्लेषण विधियों में विविध चरों (variables) का परस्पर सम्बन्ध महत्वपूर्ण होता है और निष्कर्ष इन सम्बन्धों के सापेक्ष होते हैं। इन सम्बन्धों की शुद्धता और स्थिरता पर परिणामों की शुद्धता और विश्वसनीयता निर्भर करती है। इसी प्रकार, मूल समंकों की शुद्धता और विश्वसनीयता भी निष्कर्षों को अत्यधिक प्रभावित करती है। नियोजनकार के लिये जरूरी हो जाता है कि उसे गणित, सांख्यिकी, क्रियात्मक शोध, प्रबन्धन एवं कम्प्यूटर अनुप्रयोग का सम्यक् ज्ञान हो।

मानव संसाधन नियोजन का पूर्ति पक्ष

मानव संसाधन प्रबन्धन का प्रमुखतम कार्य है– सही समय पर, सही काम के लिये, सही व्यक्ति का चयन। इस कार्य के लिये संगठन में नियोजन किया जाता है और पूर्ति के आन्तरिक और बाह्य, दोनों स्रोतों पर ध्यान दिया जाता है। वस्तुतः, यह भर्ती की प्रक्रिया से सम्बन्धित कार्य है। भर्ती का आशय है कि सम्भावित व्यक्तियों को किसी पद के लिये आवेदनार्थ प्रोत्साहित किया जाये। मानव संसाधन की उपलब्धता का प्रभाव उत्पादन स्तर पर पड़ता है। अन्य सभी उपलब्ध संसाधनों का सदुपयोग तभी हो सकेगा, जब पर्याप्त और कुशल जन शक्ति संगठन में बनी रहे। संस्था में स्वैच्छिक आवर्त्त, अवकाश ग्रहण, बीमारी, मृत्यु और पद त्याग आदि कारकों का ध्यान रखा जाना आवश्यक हो जाता है। सेवा निवृत्ति कानून में बदलाव से भी कर्मचारियों की अन्तः आपूर्ति में बहुत परिवर्तन आ जाता है। बाह्य स्रोतों में आजकल शिक्षण संस्थानों में कैम्पस चयन बहुत लोकप्रिय हुआ है। संगठनात्मक विकास एवं विविधीकरण कर्मचारियों की प्राप्ति हेतु बाह्य स्रोतों की अपेक्षा करता है। मानव शक्ति आपूर्ति का अनुमान लगाने के लिये कई महत्वपूर्ण विधियां काम में लाई जाती हैं, जिनमें प्रमुख रीतियां निम्नप्रकार हैं–

(1) **मार्कोव विश्लेषण (Marcov Analysis)** – इस विधि में कई वर्षों के समंकों का संकलन किया जाता है और विश्लेषण किया जाता है। सेविवर्ग की गतिशीलता का अनुमान लगाया जाता है। यह सम्भावना पता लगाने का प्रयास किया जाता है कि व्यक्ति किसी कार्य विशेष में बने रहेंगे अथवा नहीं। कार्य छोड़ने के कारणों में सम्मिलित हैं– स्थानान्तरण, पदोन्नति, निष्कासन, पदोपतन, सेवा निवृत्ति। सम्भावनायें एक संक्रमण आव्यूह में व्यवस्थित की जाती हैं तथा भावी सेविवर्गीय प्रवाह आव्यूह के आधार पर अनुमानित किये जाते हैं।

(2) **साइमुलेशन (Simulation)** – यह तकनीक मार्कोव विश्लेषण पर ही आधारित है। इस विधि में ऐतिहासिक प्रवाहों के स्थान पर वैकल्पिक प्रवाहों का अध्ययन किया जाता है जो भावी मानव शक्ति उपलब्धताओं पर प्रभाव के लिये परखे जाते हैं। वैकल्पिक प्रवाह स्वैच्छिक अथवा गैर–स्वैच्छिक आवर्त्त, अवकाश ग्रहण, पदोन्नति आदि से सम्बन्धित नीतियों में परिवर्तन के सम्भावित परिणामों को प्रस्तुत करता है।

(3) **नवीकरण समीक्षा (Renewal Analysis)** – इस तकनीक में (i) संगठन द्वारा निर्मित रिक्ताओं, (ii) रिक्ताएं भरने के लिये लागू हाने वाले निर्णय और नियमों के परिणाम निकालकर भावी प्रवाहों तथा क्रय शक्ति की उपलब्धता का अनुमान लगाते हैं। इस मॉडल में प्रगति अनुमानों, आवर्त्त, पदोन्नति तथा निर्णय नियमों में परिवर्तन के प्रभाव का निर्णय कर सकते हैं।

(4) **लक्ष्य कार्यक्रमण (Goal Programming)** – यह क्रियात्मक शोध विधि है। इसमें नियोजक उद्देश्य को अनुकूलतम बनाते हैं। इस दशा में, अनुकूलतम करने का लक्ष्य अनेक घटकों से सम्बन्धित बाधाओं के साथ स्टाफिंग पैटर्न की अभिलाषा करता है, जैसे – प्रवाहों पर उच्चता सीमाएं, प्रत्येक दशा में स्वीकृत नई भर्तियों का प्रतिशत एवं कुल बजट।

मानव संसाधन नियोजन का गुणात्मक पक्ष (Qualitative Aspects of Human Resource Planning)

संगठन में कर्मचारियों में अपेक्षित योग्यता और अनुभव के निर्धारण के लिये कार्य विश्लेषण किया जाता है। कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत प्रत्येक कार्य की पहचान की जाती है। कार्य को परिभाषित किया जाता है। कार्य के साथ जुड़ी हुई जिम्मेदारी और कर्तव्यों का अभिलेखन किया जाता है। कार्य विश्लेषण में कार्य के व्यापक विवरण का सकंलन, कार्य का दूसरे कार्यों के साथ सम्बन्ध, कार्य के लिये आवश्यक ज्ञान, योग्यता, रोजगार मानदण्ड, जबावदेही, प्रार्थी अर्हताओं का परीक्षण आदि का समावेश होता है। कार्य विश्लेषण संकेत करता है कि एक कार्य किन गतिविधियों तथा जाबवदेहियों की अपेक्षा करता है। कार्य विश्लेषण कार्य में सन्निहित समग्र गतिविधियों का व्यवस्थित अभिलेखन है। कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत कार्य विशिष्टता विवरण बनाया जाता है, इसी विवरण को व्यक्ति विशिष्टता विवरण भी कहा जाता हैं। इस विवरण में विशेष रूप से, कार्य के लिये अपेक्षित योग्यताओं और अनुभव का उल्लेख किया जाता है। साथ ही, निष्पादन प्रमापों का वर्णन करते हुए भी एक पत्रक बनाया जाता है।

4.9 मानव संसाधन नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व

एडबिन बी. फि्लप्पो के अनुसार, मानव संसाधन नियोजन का उद्देश्य योग्य कर्मचारियों की निरन्तर पूर्ति द्वारा किसी उपक्रम के स्थायित्व एवं प्रगति में योगदान करना है।' प्रबन्ध की पहली सीढ़ी है – नियोजन। प्रत्येक क्षेत्र में योजना बनाने की आवश्यकता होती है। सुनियोजित प्रयास सफलता की दिशा में सुदृढ़ कदम होते हैं। निम्न बिन्दु मानव संसाधन नियोजन के महत्व और आवश्यकता को स्पष्ट करते हैं–

- देश में एक ओर व्यापक बेरोजगारी है, दूसरी ओर नियोक्ताओं को पर्याप्त योग्य कर्मचारी नहीं मिल पाते हैं। कुशल और कार्य के लिये उपयुक्त कार्मिकों की खोज मानव संसाधन विभाग का प्रमुख कार्य है। संगठन को जितने कर्मचारियों की जिस संवर्ग में जब आवश्यकता हो, तब उस संवर्ग में उतने कर्मचारी उपलब्ध रहें, इसके लिये व्यवस्थित प्रयास किये जाते हैं। यही मानव संसाधन नियोजन का क्षेत्र है।

- संगठन में अनेक कारणों से रिक्तियां होती रहती हैं, जैसे– सेवा निवृत्ति, मृत्यु, श्रम आवर्त्त, रूग्णता, प्रोन्नति, पदावनति, आदि। इन रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिये समय से पूर्व ही एक योजना प्रस्तावित की जाती है ताकि समय–समय पर उपयुक्त कर्मचारियों की नियुक्ति होती रहे। इस उद्‌देश्य को पूरा करने के लिये मानव संसाधन नियोजन किया जाताा है। नियोजन का अर्थ ही यह है कि आने वाले समय के लिये प्रावधान और प्रबन्ध कर लिया जाये।
- मानव संसाधन प्रबन्ध के क्षेत्र में नवीन प्रवृत्ति है – बढ़ता हुआ श्रम आवर्त्त। श्रम आवर्त्त अधिक होने पर संगठन में आकस्मिक रिक्तियां होती रहती हैं। इनके पीछे कई कारण हो सकते हैं, जैसे– स्वैच्छिक पद त्याग, विवाह, मौसमी उच्चावचन, पदच्युति आदि। परिणामस्वरूप, संस्था को रिक्त स्थान भरने के लिये बार–बार नियुक्तियां करनी होती हैं। इस आशय से भी संगठन में नियोजन करते समय प्रावधान किये जाते हैं।
- व्यावसायिक वातावरण के दो प्रमुख घटक हैं– (1) तकनीकी विकास और (2) वैश्वीकरण। इनके कारण उत्पादन की विधियों में अंतर आया है। साथ ही, उत्पाद और सेवाओं के विक्रय और वितरण की रीतियों में महत्वपूर्ण बदलाव हुए हैं। फलस्वरूप, प्रबन्धन तकनीकें भी परिवर्तित हुई हैं। मानव संसाधन नियोजन की दृष्टि से, कर्मचारियों की संख्या और कर्मचारियों में अपेक्षित कौशल भी बदले हैं। कुशल मानव संसाधन नियोजन के माध्यम से नई परिस्थितियों के साथ तालमेल बिठाने की युक्ति की जाती है।
- किसी संगठन में जब विस्तार की योजना बनाई जाती है, समग्र नियोजन के साथ ही, मानव संसाधन नियोजन में भी विस्तार के आकार और प्रकार के अनुरूप व्यवस्थायें की जाती हैं। इसीप्रकार, जब संस्था विविधीकरण करती है, विविधीकरण के अनुकूल मानव संसाधन के लिये आयोजन किया जाता है। बजटीय नियोजन के साथ–साथ मानव संसाधन नियोजन भी किया जाता है।
- उद्यम में मानव संसाधन स्टॉक का आकार अनुकूलतम होना चाहिए। इसके लिये निरन्तर जांच की जाती है कि समग्र संगठन में अथवा इसके किसी विभाग में स्टाफ की कमी अथवा आधिक्य की स्थिति न रहे। दोनों ही स्थितियां संगठन के लिये हानिकारक होंगी। एक विभाग में आधिक्य होने पर, संस्था के अंदर ही किसी दूसरे विभाग या गतिविधि में अतिरिक्त कार्मिकों का समायोजन किया जा सकता है। अन्यथा, संगठन की डाउन साइजिंग की जा सकती है। इसके विपरीत स्टाफ की कमी होने पर भर्ती के लिये यथोचित प्रयास किये जाने चाहिए। इन सभी परिस्थितियों के लिये मानव संसाधन नियोजन किया जाना अनिवार्य हो जाता है।

4.10 सारांश

मानव संसाधन नियोजन वह प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत मानव संसाधन का पूर्वानुमान, भर्ती एवं विकास, नियंत्रण आदि किया जाता है। साथ ही, सही समय पर, योग्य और कुशल कर्मचारियों की उपलब्धता सुनिश्चित की जाती है। मानव संसाधन का आर्थिक दृष्टि से उपयुक्त होना भी परखा जाता है। मानव संसाधन नियोजन समग्र संगठन के नियोजन एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। यह सतत् प्रकिया है। मानव संसाधन नियोजन तीन स्तरों पर किया जाता है– दीर्घकालिक, अल्पकालिक, आकस्मिक। मानव संसाधन नियोजन संगठन के लक्ष्यों के साथ–साथ कर्मचारियों के विकास और

कार्य संतुष्टि पर बल देता है। मानव संसाधन की मांग व पूर्ति को प्रभावित करने वाले घटकों में मुख्यतः वैश्विक और राष्ट्रीय आर्थिक विकास, मौद्रिक नीति, उपभोक्ताओं की अभिरूचि, टैक्नॉलॉजी, श्रम कानून, कर संरचना, श्रम उत्पादकता, जनसंख्या वृद्धि दर, वैश्विक क्षेत्रीय ग्रुपों की नीतियां एवं शर्तें, पर्यावरण और सामाजिक तत्व, शिक्षा एवं प्रशिक्षण, पारिश्रमिक दरें, करिअर पाथ सम्मिलित हैं। मानव संसाधन नियोजन की प्रक्रिया में मानव संसाधन नियोजन के उद्देश्य, मानव संसाधन का पुनर्गठन, कार्य अध्ययन एवं कार्य विश्लेषण, भर्ती एवं चयन, प्रशिक्षण तथाा विकास कार्यक्रम, मानव संसाधन नियोजन का मूल्यांकन सम्मिलित हैं। मानव संसाधन नियोजन का उद्देश्य योग्य कर्मचारियों की निरन्तर आपूर्ति द्वारा किसी उपक्रम के स्थायित्व एवं प्रगति में योगदान करना है। योग्य कर्मचारियों की सतत् खोज करना ही मानव संसाधन नियोजन का लक्ष्य है। उपक्रम में अनेक कारणों से रिक्तियां होती रहती हैं। इन रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिये समय से पूर्व ही एक योजना प्रस्तावित की जाती है, ताकि सही समय पर उपयुक्त कर्मचारियों की नियुक्ति की जा सके। मानव संसाधन नियोजन के माध्यम से प्रयास किया जाता है कि उपक्रम में मानव संसाधन स्टॉक का अनुकूलतम आकार बना रहे।

4.11 शब्दावली

डेल्फी विधि (Delphi technique) –विशेषज्ञों के समूह की सम्मति के आधार पर किये जाने वाले पूर्वानुमान की रीति जो मानव संसाधन नियोजन मे प्रयुक्त होती है। विशेषज्ञों का समूह कम से कम दो अथवा अधिक चक्रों में प्रश्नावलियों के उत्तर देते हैं

कौशल सूची/चातुर्य स्टॉक सूची (Skill Inventory) – संगठन में विभिन्न श्रेणियों में कार्यरत कर्मचारियों की योग्यता सूची।

मानव संसाधन सूचना प्रणाली (Human Resource Information System) – कर्मचारियों की वैयक्तिक, शैक्षिक, अनुभव, उत्पादकता, संभाावित (potential) योग्यता, निष्पादन आदि की विशद सूचनाओं का संग्रह।

कार्य अध्ययन (Work Study) – किसी उद्योग में काम करने के तरीकों का आकलन करने की प्रणाली जिससे अधिकतम दक्षता और अधिकतम उत्पादन प्राप्त किया जा सके।

अनुपस्थितिवाद (Absenteesim)– ऐसी स्थिति जब एक व्यक्ति काम पर आने में असफल रहता है, जबकि उसे आना होता है।

श्रम आवर्त्त अनुपात (Labour Turn over Ratio) –कर्मचारियों के संगठन को छोड़कर जाने की दर श्रम आवर्त्त कही जाती है।

आरम्भिक प्रशिक्षण (Induction Training) – कर्मचारी की नियुक्ति के समय पहली बार दिया जाना प्रशिक्षण आरम्भिक प्रशिक्षण कहा जाता है।

प्रवृत्ति विश्लेषण (Trend Analysis) – पिछले समंकों के आधार पर, भविष्य के लिये पूर्वानुमान करने की विधियों से समंको का निर्वचन किया जाता है।

रेखीय प्रतीपगमन (Linear Regression) – ऐसे दो चर जिनमें परस्पर सहसम्बन्ध हो, उनके विगत आंकड़ों से प्रतीपगमन समीकरणों की सहायता से भविष्य के लिये पूर्वानुमान किया जाता है।

ब्यूरैक्स– स्मिथ मॉडल (Bureks Smith model)– ऐल्मर एच. ब्यूरैक्स तथा राबर्ड डी. स्मिथ ने मानव संसाधन पूर्वानुमान के लिये गणितीय मॉडल विकसित किया जिसमें मानव संसाधन आवश्यकताओं को प्रभावित करने वाले मुख्य चरों को ध्यान में रखा गया।

मार्कोव विश्लेषण (Markov Analysis) – लम्बे समय के समंक एकत्रित करके विश्लेषण किया जाता है और भविष्य के लिये सम्भावनायें व्यक्त की जाती है। स्थानान्तरण, पदोन्नति, निष्कासन, पदोपतन, सेवा निवृत्ति आदि घटकों को ध्यान में रखा जाता है।

4.12 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न : सही विकल्प का चयन कीजिए।

1. 'डेल्फी तकनीक' किससे सम्बन्धित है?
   (ए) मानव संसाधन की मांग पूर्वानुमान से
   (बी) अधिशासी विकास से
   (सी) करिअर पाथ से
   (डी) उपर्युक्त में कोई नहीं
2. पुनश्चर्या कार्यक्रम किससे सम्बन्धित है?
   (ए) मनोरंजन गतिविधि से
   (बी) आउट डोर गतिविधि से
   (सी) शिक्षण एवं प्रशिक्षण से
   (डी) उपर्युक्त में कोई नहीं
3. ओरियेण्टेशन कार्यक्रम का आशय है:
   (ए) आरम्भिक प्रशिक्षण
   (बी) पुनश्चर्या कार्यक्रम
   (सी) इन–सर्विस प्रशिक्षण
   (डी) उपर्युक्त में कोई नहीं
4. मार्कोव मॉडल किससे सम्बन्धित है?
   (ए) कार्य विश्लेषण से
   (बी) मानव संसाधन आपूर्ति पक्ष से
   (सी) मानव संसाधन मांग पक्ष से
   (डी) उपर्युक्त सभी से
5. ब्यूरैक्स–स्मिथ मॉडल किससे सम्बन्धित है?
   (ए) मानव संसाधन के मांग पूर्वानुमान से
   (बी) प्रशिक्षण एवं विकास से
   (सी) प्रतीपगमन विश्लेषण से
   (डी) कार्य विश्लेषण से

4.13 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. (ए) मानव संसाधन की मांग पूर्वानुमान से
2. (सी) शिक्षण एवं प्रशिक्षण से
3. (ए) आरम्भिक प्रशिक्षण
4. (बी) मानव संसाधन आपूर्ति पक्ष से
5. (ए) मानव संसाधन के मांग पूर्वानुमान से

4.14 स्वपरख प्रश्न

1. मानव संसाधन नियोजन का क्या आशय है? मानव संसाधन नियोजन का महत्व स्पष्ट कीजिए।
2. मानव संसाधन नियोजन की परिभाषा दीजिए। मानव संसाधन नियोजन की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. मानव संसाधन नियोजन की प्रक्रिया समझाइए।
4. मानव संसाधन नियोजन के परिमाणात्मक और गुणात्मक पक्ष पर प्रकाश डालिए।
5. मानव संसाधन की मांग का पूर्वानुमान कैसे किया जाता है? पूर्वानुमान की विविध रीतियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

संकेत– प्रश्नोत्तरों के उद्देश्य से जन शक्ति, मानव शक्ति, सेविवर्ग शब्दों को मानव संसाधन का समानार्थी मान लिया जाये।

4.15 सन्दर्भ पुस्तकें

1. प्रसाद एल.एम. प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुलतान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2010
2. एण्डरसन, राबर्ट, प्रोफेसनल सेल्स मैनेजमेंट , प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1981
3. स्मिथ एफ. रोजर, सेल्स मैनेजमेंट–ए प्रैक्टिसनर्स गाइड प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1987

इकाई – 5 भर्ती, चयन एवम कार्य परिचय (Recruitment, Selection and Induction)

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 कार्य विश्लेषण

5.3 कार्य विश्लेषण का अर्थ

5.4 कार्य विश्लेषण का उद्देश्य

5.5 भर्ती

5.6 भर्ती के श्रोत

5.6.1 भर्ती के आन्तरिक श्रोत

5.6.2 भर्ती के बाहय श्रोत

5.7 चयन

5.8 चयन विधि

5.8.1 आवेदन पत्र

5.8.2 साक्षात्कार

5.9 साक्षात्कार के प्रकार

5.10 मनोवैज्ञानिक परीक्षण

5.11 कार्य परिचय

5.12 पर्यवेक्षक द्वारा परिचय कार्यक्रम

5.13 सेविवर्गीय विभाग या पर्यवेक्षक द्वारा कलान्तर में दोहराने स्वरुप जानकारी देना

5.14 सारांश

5.15 शब्दावली

5.16 बोध प्रश्न

5.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

5.18 स्वपरख प्रश्न

5.19 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- कार्य विश्लेषण का अर्थ एवम उद्देश्य जान सकें ।
- भर्ती एवम भर्ती के श्रोत समझ सकें।
- चयन एवम चयन विधि के परीक्षण कर सकें।
- साक्षात्कार के प्रकारो को समझ सकें ।

5.1 प्रस्तावना

नये कार्मिकों को आकर्षित तथा उनका चयन करना प्रबन्धक का एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। इस इकाई में कार्य विश्लेषण, भर्ती एवं चयन के द्वारा एक अच्छें कार्मिकों को प्राप्त करने की प्रक्रिया को बताया गया है। एक बार अच्छे एवं प्रतिभावान लोगों के समूह को बनाने के पश्चात्, कार्य के अनुरूप

व्यक्तियों को प्राप्त करना सम्भव हो पाता है। चयन एक चरण दर चरण प्रक्रिया होती है, जिसमें प्रबन्धक संगठन में लोगों को नियुक्त करता है। भर्ती के पश्चात् चयन प्रक्रिया प्रारम्भ होती है, जिसमें कार्य की प्रकृति एवं आवश्यकतानुसार कर्मियों को नियुक्त किया जाता है।

5.2 कार्य विश्लेषण (Job Analysis)

कार्य विश्लेषण किसी संगठन में कार्मिक विभाग का कार्य होता है। इसलिए प्रबन्ध के मुद्दे कार्मिक प्रबन्ध के समान होते हैं। कार्य विश्लेषण के अन्तर्गत कार्य के उद्देश्यों, कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों, कार्य दशाओं का विश्लेषण, निस्पादन स्तर तथा संगठन के अन्दर पद–सोपान की स्थिति की पहचान करना सम्मिलित किया जाता है। संगठन में व्यक्तियों की आवश्यकता संगठन के विभिन्न कार्यो के प्रभावी निष्पादन के लिए होती है। कार्य निष्पादन की प्रभावशीलता व्यक्तियों एवं पदो के अनुकूलता पर निर्भर करती है। यह अनुकूलता तभी प्राप्त की जा सकती है जब कार्य की प्रकृति के विषय में विस्तृत ज्ञान हो। यह ज्ञान कार्य विश्लेषण द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। कार्य विश्लेषण एक प्रक्रिया है जिसमें कार्य के सम्बन्ध में सूचनाओं का संकलन किया जाता है एवं इनके आधार पर कार्यो की प्रकृति तथा उसे निष्पादित करने वाले व्यक्तियों मे आवश्यक विशेषताओं का निर्धारण किया जाता है।

मानव संसाधन प्रबन्ध के प्रकार्यों के प्रभावी निष्पादन एवं संगठनों में सम्पादित किये जाने वाले समस्त कार्यों का विश्लेषण करना आवश्यक होता है। इस विश्लेषण द्वारा व्यक्तियों द्वारा सम्पादित किये जा रहे कार्यों की प्रभावशीलता के बारे में जाना जा सकता है। संगठनों में किये जाने वाले कार्य तथा उनको सम्पादित करने वाले कार्मिकों में अनेक भिन्नताएं पायी जाती है। इस प्रकार प्रभावी कार्य निष्पादन हेतु यह आवश्यक है कि व्यक्तियों तथा उनके द्वारा धारित पदों की प्रकृति में अधिकतम अनुकूलता हो। इस अनुकूलता के लिये यह आवश्यक है कि कार्य की प्रकृति के विषय में विस्तृत ज्ञान हो। कार्य के विषय में विस्तृत ज्ञान कार्य विश्लेषण द्वारा प्राप्त होता है।

डेल योडर के अनुसार – ''कार्य (Job) उन कर्तव्यों, लक्ष्यों एवं उत्तरदायित्वों का समूह है जो एक व्यक्ति को सौंपे जाते है तथा जो अन्य आबन्टित कार्यो से भिन्न होते है।[1] इस प्रकार जब किसी व्यक्ति को एक कार्य पर लगाया जाता है तो उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह सौंपे गये कर्तव्यों, लक्ष्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन यथा शक्ति करेगा।

5.3 कार्य विश्लेषण का अर्थ (Meaning of Job Analysis)

कार्य विश्लेषण एक प्रक्रिया है जिसमें कार्य (Job) से सम्बन्धित सूचनाओं का संकलन किया जाता है एवं उसके आधार पर कार्यों की प्रकृति तथा उसे निष्पादित करने वाले व्यक्तियों की आवश्यक विशेषताओं का निर्धारण किया जाता है। एडविन फिलप्पों ने कार्य विश्लेषण को इस प्रकार परिभाषित किया है–

कार्य विश्लेशण एक विशिष्ट कार्य की क्रियाओं और उत्तर दायित्वों से सम्बन्धित सूचनाओं के अध्ययन एवं संकलन की प्रक्रिया है। इस विश्लेषण के परिणामस्वरुप कार्य विवरण और कार्य विशिष्ट विवरण निर्धारित होता है।''

डेल योडर के अनुसार– कार्य विश्लेषण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रत्येक कार्य से सम्बन्धित तथ्यों को योजनाबद्ध प्रणाली से खोजकर अंकित किया जाता है।

मइकल जे जूसियस के अनुसार– कार्य विष्लेषण कर्तव्यों, क्रियाओं और कार्यों के संगठनात्मक पहलुओं के अध्ययन की प्रक्रिया है जिसका उद्देश्य विशिष्टताओं की प्राप्ति, जिन्हे कुछ व्यक्ति कार्य विवरण भी कहते है।

इस प्रकार कार्य विश्लेषण द्वारा कार्य के विविध पहलुओं का तर्क संगत अध्ययन किया जाता है। इस अध्ययन में कार्य से सम्बन्धित समस्त सूचनाएं संकलित की जाती है। इन संकलित सूचनाओं के आधार पर कार्य विवरण तथा कार्य विशिष्ट विवरण बनाया जाता है। इसके आधार पर कार्य वर्गीकरण किया जाता है तथा उस कार्य को करने हेतु आवश्यक योग्यताओं एवं कौशल का निर्धारण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कार्य विश्लेषण का उपयोग मानव संसाधन प्रबंध द्वारा व्यापक रुप से किया जाता है। सामान्यतः इसका उपयोग संगठन के प्रत्येक प्रकार्य में किया जाता है।

5.4 कार्य–विश्लेषण का उद्देश्य

कार्य विश्लेषण का उद्देश्य अत्यन्त व्यापक होता है। इसके द्वारा संगठन में मानव संसाधन प्रबन्ध की अधिकांश गतिविधियों का निर्धारण किया जाता है। कार्य–विश्लेषण का प्रमुख उद्देश्य कार्य–विवरण एवं कार्य विशिष्टीकरण बनाया जाना है जिनसे संगठन में सही गुणवत्ता की कार्यशक्ति को प्राप्त करने में सहायता प्राप्त होती है।

5.5 भर्ती (Recruitment)

कार्य विश्लेषण द्वारा यह निर्धारित किया जाता है कि कितने एवं किस प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता संगठन में है। इसके पश्चात् भर्ती एवं चयन की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है। भर्ती का तात्पर्य ऐसी प्रकिया से है जिसके द्वारा कार्य करने के लिए तत्पर भावी कर्मचारियों का पता लगाया जाता है एवं उन्हें संगठन में कार्य करने हेतु आवेदन पत्र देने के लिए प्रेरित किया जाता है। एडविन फिलप्पो के शब्दों में भर्ती भावी कर्मचारियों को खोजने तथा उन्हें संगठन में रिक्त पदो ंके लिए आवेदन करने की प्रक्रिया है।

इस प्रकार भर्ती प्रक्रिया में भावी कर्मचारियों के श्रोतों को ज्ञात करना तथा उन्हें संगठन में रिक्त पदो ंके सापेक्ष आवेदन करने के लिए प्रेरित करना सम्मिलित है। इस प्रक्रिया में यह प्रयास किया जाता है कि अधिक से अधिक आवेदन पत्र प्राप्त हो जिससे चयन प्रक्रिया में सर्वश्रेष्ठ कार्मिकों को प्राप्त किया जा सके।

5.6 भर्ती के श्रोत (Sources of Recruitment)

किसी भी संगठन में रिक्त पदों को भरने के दो श्रोत होते है। प्रथम आन्तरिक श्रोत, जिसें विद्यमान कर्मचारियों की पदोन्नति आदि से भरा जाता है तथा दूसरा बाह्य श्रोत, जिसमें नये कर्मचारियों का चयन किया जाता है।

5.6.1 भर्ती के आन्तरिक श्रोत (Internal Sources of Recruitment)

कोई भी संगठन आन्तरिक श्रोतों से रिक्त पदों को भर सकता है। आन्तरिक श्रोत दो प्रकार के होते हैं – विद्यमान कर्मचारी और विद्यमान कर्मचारियों का संदर्भ

1. **विद्यमान कर्मचारी (Existing Employees)**

भर्ती के आन्तरिक श्रोत के रूप मे विद्यमान कर्मचारी अत्यन्त महत्वपूर्ण होते है। इन कर्मचारियों द्वारा संगठन में रिक्त पदों को भरा जा सकता है। यह सामान्यतः पदोन्नति एवं स्थानान्तरण द्वारा किया जाता है। यह एक महत्वपूर्ण विधि है जिसके द्वारा संगठन के आधिक्य कार्य बल को स्थानान्तरण द्वारा दूसरे विभाग में भेजा जाता है एवं संगठन की कार्यक्षमता में बृद्धि किया जाता है। विद्यमान

कर्मचारियों को पदोन्नति देकर उनके मनोबल को बढ़ाया जाता है तथा बेहतर कार्य करने के लिए प्रेरित किया जाता है। ये कर्मचारी संगठन के बारें में सब कुछ जानते है इसलिए ज्यादा कुशलता एवं प्रभावी ढंग से कार्य निष्पादन करने में सक्षम होते हैं।

2 विद्यमान कर्मचारियों के संदर्भ **(Reference of Existing Employees)**

आन्तरिक श्रोत के रूप में विद्यमान कर्मियों के सन्दर्भो से भी कर्मचारियों को नियुक्त किया जाता है। कर्मी प्रतिदिन अनेक लोगों से मिलते है तथा व्यक्तिगत तौर पर उनके बारें में जानते है। ऐसे व्यक्तियों के गुणों को वे कार्य की प्रकृति के अनुरूप देखते है तो उनको संगठनों के लिए संदर्भित करते हैं। यद्यपि कि इस प्रकार की भर्ती का श्रोत प्रायः क्रियाशील कर्मचारियों के चयन के लिए ज्यादा उपयुक्त होता है, परन्तु आधुनिक समय में सभी प्रकार के कर्मचारियों हेतु संदर्भित किया जाता है।

5.6.2 भर्ती के बाह्य श्रोत (External Sources of Recruitment)

भर्ती के बाह्य श्रोत वे होते हैं जिनके द्वारा चयनित अभ्यर्थी संगठन से पूर्व परिचित नहीं होते हैं। वे सर्वथा संगठन के लिए नये होते हैं। भर्ती के बाह्य श्रोत निम्नलिखित है :–

1. विज्ञापन **(Advertising)** :–

विज्ञापन भावी कर्मचारियों को संगठन में भर्ती हेतु प्रोत्साहित करने का सबसे सहज एवं प्रचलित श्रोत है। भर्ती के लिए विज्ञापन समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा रोजगार समाचार के द्वारा किया जाता है। विज्ञापन द्वारा संगठन अपने रिक्त पदो के बारें में सूचना देता है तथा आवेदक उपरोक्त पदों हेतु अपना अभ्यर्थन प्रस्तुत करते हैं। विज्ञापन द्वारा रिक्तियों का व्यापक प्रचार होता है तथा अधिक से अधिक लोग आवेदन करने में सफल होते हैं ।

2. इण्टरनेट **(Internet)** :–

प्रौद्योगिकी के बढ़ते प्रभाव के कारण इण्टरनेट आज एक अत्यन्त प्रचलित श्रोत हो गया है। इसके द्वारा दूर बैठे संगठन एवं आवेदक आसानी से अपनी शर्तों के अनुसार भर्ती प्रक्रिया का भाग बन सकते है। इसके द्वारा सूचनाओं का संग्रह अत्यन्त आसानी से किया जा सकता है तथा भविष्य में उसका प्रयोग किया जा सकता है।

3. परिसर भर्ती **(Campus Recruitment)** :–

विभिन्न व्यवसवायिक संगठनों द्वारा परिसर भर्ती का उपयोग इंजीनियरों, प्रबंधको तथा नियोक्ताओं द्वारा किया जाता है। इसके अन्तर्गत नियोक्ता संगठन विभिन्न विश्वविद्यालयों एवं शैक्षणिक संस्थानों में निर्धारित समय पर जाकर चयन प्रक्रिया को पूर्ण करते हैं। इस श्रोत द्वारा नियोक्ता संगठन को सुविधा रहती है तथा भर्ती लागत काफी कम पड़ती है एवं चयन प्रक्रिया शीघ्रतापूर्वक पूर्ण कर ली जाती है।

4. रोजगार कार्यालय **(Employment Office)** :–

लगभग देश के प्रत्येक शहर में भारत और राज्य सरकार द्वारा रोजगार कार्यालयों की स्थापना, रोजगार कार्यालय अधिनियम, 1959 के प्रावधानों के अन्तर्गत की गयी है। इसके अन्तर्गत यह प्रावधान किया गया है कि प्रत्येक संगठन द्वारा अपने यहाँ रिक्त पर्यवेक्षक एवं इसके नीचे के पदों की सूचना देना अनिवार्य है। रोजगार कार्यालय में पंजीकृत आवेदकों को यह सूचना उपलब्ध करायी जाती है। इस प्रकार रोजगार कार्यालय नियोक्ता एवं आवेदक के मध्य सेतु का कार्य करते हैं।

5 प्रतिस्पर्धी संगठनों के कर्मचारी **(Employee of competatitive Organisations)**:–

प्रतिस्पर्धी कम्पनियों के कर्मियों को भर्ती कर संगठन अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। ऐसा व्यक्ति प्रतिस्पर्धी संगठनों के प्रत्येक पहलू को समझता है, अतः लाभदायक होता है। यद्यपि कि यह नैतिक नहीं होता कि प्रतिस्पर्धी संगठन की कमजोरियों एवं नकारात्मक पहलू को जानकर नीतियों का निर्माण किया जाय।

6 अप्रतिस्पर्धी संगठनों के कर्मचारीं (Employee of non competatitive Organisations):–

अप्रतिस्पर्धी संगठनों के कर्मियों की नियुक्ति द्वारा भी संगठन भर्ती प्रक्रिया को पूर्ण करते है । भर्ती का यह श्रोत अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है क्योंकि कर्मचारी ऐसे प्रत्येक पहलू से अवगत होते है तथा संगठन की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में सक्षम होते है ।

5.7 चयन (Selection)

किसी संगठन द्वारा कार्मिकों की संख्या एवं प्रकार सुनिश्चित करने हेतु आवेदन पत्र प्राप्त करने के पश्चात चयन प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है। चयन प्रकिया के अन्तर्गत प्राप्त आवेदन पत्रों में से सर्वश्रेष्ठ एवं उपयुक्त आवेदकों का चुनाव किया जाता है। एक चयन प्रक्रिया के चरण निम्न होते हैं :–

- भर्ती प्रक्रिया से आवेदन पत्रो की प्राप्ति
- आवेदन पत्रो की जॉच
- चयन परीक्षण
- चयन साक्षात्कार
- संदर्भो की जॉच
- शारीरिक शिक्षा
- उपयुक्त अधिकारी द्वारा अनुमोदन
- अन्तिम चयन
- रोजगार प्रसंविदा

5.8 चयन विधि (Selection Method)

कर्मचारी के चयन में निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है :–

- आवेदन पत्र
- साक्षात्कार
- मनोवैज्ञानिक परीक्षण

5.8.1 आवेदन पत्र (Application Form):–

भर्ती के लिए आवेदकों से मॉगे गये आवेदन पत्र चयन उपकरण का कार्य करते है। आवेदन पत्र में आवेदक के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी विद्यमान रहती है। इससे आवेदक के सम्बन्ध में चयन के दौरान निर्णय किया जा सकता है। आवेदन पत्र में दी गयी सूचना के आधार पर साक्षात्कार प्रक्रिया को डिजाइन किया जाता है तथा उसकी सत्यता का परीक्षण भी किया जाता है। इससे किसी भी कर्मचारी की ईमानदारी आदि गुणों की जॉच करना आसान होता है। यदि आवेदक साक्षात्कार के दौरान पूछे गये सवाल के जवाब आवेदन पत्र में दी गयी सूचना से अलग आते है तो ऐसा कर्मचारी

ईमानदार नही होता है। इसी प्रकार कर्मचारियों के संबंध में अनेक जानकारियॉ आवेदन पत्रों में प्राप्त हो जाती है, जिनका आवश्यकतानुसार परीक्षण किया जा सकता है।

5.8.2 साक्षात्कार (Interview):–

साक्षात्कार चयन प्रक्रिया में प्रयोग की जाने वाली सबसे प्रचलित एवं प्रभावी विधि है। सामान्यतः यह चयन विशेषज्ञों एवं आवेदकों के बीच प्रत्यक्ष वार्तालाप होता है। इस वार्तालाप के परिणामस्वरूप चयनकर्ताओं द्वारा आवेदको के गुणों एवं विशेषताओं की परख की जाती है जिससे रोजगार के लिए उनकी उपयुक्तता निर्धरित की जा सके। साक्षात्कार कई प्रकार के होते है जो विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आयोजित किये जाते है। इस प्रकार साक्षात्कार द्वारा कर्मचारी के संबंध में पूर्ण जानकारी प्राप्त की जाती है। इसके द्वारा उन पहलुओं को भी जानने का प्रयास किया जाता है जो आवेदन पत्र तथा अन्य परीक्षणों द्वारा नहीं हो पाते है।

प्रबन्ध द्वारा साक्षात्कार के संबंध में अनेक निर्णय किये जाते है जिनका उद्देश्य साक्षात्कार प्रक्रिया को सुचारु ढंग से सम्पन्न कराना होता है। इस संबंध में सर्वप्रथम साक्षात्कारकर्ता एवं स्थान का निर्णय किया जाता है। यह निर्णय संगठन के आकार एवं विकेन्द्रीकरण पर निर्भर करता है। बड़े एवं विकेन्द्रित संगठनों में जहॉ यह कार्य जिला/शाखा/क्षेत्रीय प्रबन्धकों द्वारा सम्पादित होता है वहीं छोटे संगठनों में साक्षात्कार का कार्य विभाग के उच्च पदाधिकारियों द्वारा किया जाता है।

प्रबन्ध साक्षात्कारों की संख्या एवं समय के संबंध में भी निर्णय करता है। साक्षात्कारों की संख्या कार्य की प्रकृति पर निर्भर करती है तथा इसका समय उद्देश्य के आधार पर सुनिश्चित किया जाता है। कार्य भी विभिन्न प्रकार के होते है। अतः उसके अनुसार कार्मिकों की नियुक्ति की जाती है। इस प्रकार साक्षात्कारों की संख्या एवं समय के बारें में प्रबन्ध निर्णय करता है।

5.9 साक्षात्कार के प्रकार (Types of Selection)

साक्षात्कार निष्पादित करने की प्रक्रिया के आधार पर निम्न चार रूपों में होता है :–

1 प्रतिरूप साक्षात्कार :–

इसको ढॉचागत अथवा निर्देशित साक्षात्कार भी कहते है। इस साक्षात्कार में आवेदकों से पूछे जाने वाले प्रश्नों को अग्रिम रूप से तैयार कर लिया जाता है। ऐसा आवेदक के संबंध में पूर्ण जानकारी के उद्देश्य से किया जाता है। इसके अन्तर्गत आवेदक के अलग–अलग पक्षों से संबंधित प्रश्न होते है जिनमें कार्य संबंधी विषय का ज्ञान, व्यक्तित्व संबंधी विशेषताएं, निष्ठा, स्थिरता, आत्मविश्वास, नेतृत्व आदि गुणों का परीक्षण किया जाता है। प्रतिरूप साक्षात्कार में प्रश्न सूची पहले से तैयार होने के कारण आवेदक का कोई पहलू नहीं छूटता है तथा सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त हो जाती है।

2 अनिर्देशित साक्षात्कार :–

इस साक्षात्कार में पहले से प्रश्नों को नहीं तैयार किया जाता है तथा आवेदक एवं साक्षात्कारकर्ता के मध्य परस्पर विचार–विमर्श के आधार पर प्रश्न पूछे जाते है। इस प्रकार के साक्षात्कार में आवेदक अपने कार्यो की पसंद, रुचि, महत्वाकांक्षा, महत्वपूर्ण घटनाओं इत्यादि को स्वतन्त्र रूप से प्रकट करता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता में व्यक्तियों को पहचानने का कौशल होना चाहिए।

3 गहन साक्षात्कार :–

यह साक्षात्कार अर्द्ध ढांचागत होता है तथा इसके अन्तर्गत विभिन्न पक्षों जैसे शिक्षा, प्रवृत्ति, रुचि, कार्य अनुभव, पारिवारिक जीवन आदि पर प्रश्न पहले से तैयार किये हुए होते है। साक्षात्कार प्रक्रिया में इन प्रश्नों के आधार पर अन्य प्रश्नों का निर्धारण किया जाता है। आवेदक को संगठन के विषय में जैसे संगठन की नीतियॉ, कार्य का स्वभाव, पदोन्नति की संभावना और आवेदक से कार्य निष्पादन की

अपेक्षा इत्यादि के संबंध में साक्षात्कारकर्ता द्वारा सूचनाएं दी जाती है। इसका मुख्य उद्देश्य आवेदक के संबंध में अधिकाधिक सूचनाएं प्राप्त कर उसकी उपयुक्तता का परीक्षण करना होता है। इस विधि का प्रयोग महत्वपूर्ण पदों पर चयन हेतु किया जाता है।

4 **प्रतिबल साक्षात्कार :–**

प्रतिबल साक्षात्कार संकटकालीन एवं असाधारण परिस्थितियों में आवेदक के व्यवहार का परीक्षण करने हेतु किया जाता है। इसके अन्तर्गत तनावपूर्ण परिस्थितियॉ पैदा करके आवेदक के गुणों का परीक्षण किया जाता है। इनमें प्रश्नों को जल्दी–जल्दी पूॅछना, प्रश्नोत्तर के बीच बार–बार हस्तक्षेप करना तथा त्रुटिपूर्ण उत्तर के लिए आवेदक की आलोचना इत्यादि को सम्मिलित किया जाता है। जिन पदों पर दबावपूर्ण परिस्थितियों में कार्य करना होता है उनके लिए प्रतिबल साक्षात्कार किया जाता है। यह साक्षात्कार भी साक्षात्कारकर्ताओं में उच्च कोटि की योग्यता पर निर्भर करता है।

5.10 मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Pshycological Test)

मनोवैज्ञानिक परीक्षण कार्मिको की मानसिक स्थिति का परीक्षण करने के लिए किया जाता है। सामान्यतः आवेदनकर्ता कार्य के लिए कृत्रिम रुचि का प्रदर्शन करते है तथा अपने चातुर्य एवं कौशल से अन्य परीक्षण सफलतापूर्वक पास कर लेते है। ऐसे आवेदनकर्ता या तो कार्य को बाद में छोड़कर अलग हो जाते है या कार्य में रुचि न होने कारण निष्पादन खराब करते है। अतः ऐसे आवेदनकर्ताओं की पहचान अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि उनके रुचि न प्रदर्शित करने अथवा कार्य को बीच में छोड़कर जाने से कार्य सुचारु पूर्वक सम्पादित नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त यह परीक्षण बुद्धिमत्ता, व्यक्तित्व तथा उपलब्धियों को जानने में भी सहायक होता है। मनोवैज्ञानिक परीक्षणें में सामान्यतः तीन परीक्षण किये जाते हैं:–

- योग्यता का परीक्षण
- आदत की विशेषताओं का परीक्षण
- उपलब्धि परीक्षण

मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा कार्मिकों के वास्तविक चरित्र को जाना जाता है। कभी–कभी व्यक्ति स्वयं ईमानदारी से अपना परीक्षण करे फिर भी वह अपने बारे में नहीं जान पाता है। इस परीक्षण द्वारा ऐसी सभी बातों को जाना जा सकता है तथा कार्मिकों को उसी अनुसार कार्य पर लगाया जाता है।

कर्मचारियों की भर्ती एवं चयन का दायित्व प्रारम्भिक तौर पर प्रबन्धक निर्वहन करते है। कार्य विश्लेषण के पश्चात् प्रबन्धक यह निर्धारित करते है कि उन्हें किस प्रकार के तथा कितने कर्मचारी चाहिए। एक बार इस निर्धारण के पश्चात भर्ती एवं चयन की प्रक्रिया प्रारम्भ की जाती है। भर्ती में अधिक से अधिक लोगों को आवेदन करने के लिए आमंत्रित किया जाता है तथा उसके पश्चात संगठन एवं आवश्यकतानुसार उपयुक्त चयन विधि द्वारा उपयुक्त कार्मिकों का चयन किया जाता है। अंतिम रूप से चयनित कार्मिकों को कार्य करने के कार्य पर तैनात किया जाता है।

5.11 कार्य परिचय (Induction)

संगठनों में चयन प्रक्रिया एवं प्रशिक्षण कार्यक्रमों के सफलता पूर्वक सम्पादन के पश्चात् नव नियुक्त कर्मचारी को उसके द्वारा सम्पादित किये जाने वाले कार्यों से परिचित कराया जाता है। कार्य सम्पादन के दौरान अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ कर्मचारियों द्वारा महसूस की जाती है परन्तु सही तरीके से कर्मचारियों को पर्याप्त जानकारी देने के पश्चात् कार्य भली–भांति सम्पन्न किये जा सकते

है। अतः कहा जा सकता है कि कार्य परिचय नव नियुक्त कर्मचारियों को कार्य के बारे में जानकारी देने तथा सन्निहित समस्याओं को समझाने की प्रक्रिया है।

इस परिचय की प्रक्रिया को (Process of Larning) सीखने की प्रक्रिया नाम से भी जाना जाता है। यह कर्मचारी को संगठन का पूर्ण सदस्य बनाये जाने की प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत वह कार्य एवं वातावरण को पूर्ण रुपेण समझदार उसके साथ पूर्णतया समायोजन स्थापित करने के पश्चात् कर्मचारी कार्य एवं संगठन के प्रति अपनत्व का अनुभव करता है। इस प्रकार अपनत्व की भावना के बोध के फलस्वरुप कर्मचारी दिये गये उत्तर दायित्वों का पूर्ण जिम्मेदारी के साथ निर्वहन करता है तथा संगठन की प्रगति एवं विकास में अपना पूर्ण योगदान करने का प्रयत्न करता है।

1 उद्देश्य–

कार्य परिचय का प्रमुख उद्देश्य कर्मचारी को कार्य के प्रति आवश्यक जानकारी प्रदान करना है। इसके अन्य उद्देश्य निम्नलिखित है–

(i) नये कर्मचारी को कार्य के महत्त्व से अवगत कराना एवं कार्य के दौरान सम्भावित कठिनाइयों की जानकारी प्रदान करना।

(ii) संगठन की नीतियों, उद्देश्यों एवं नियमों से कर्मचारियों को अवगत कराना।

(iii) कर्मचारी को तैनात किये गये विभाग सम्बन्धी कार्य एवं संगठन में उस विभाग का संगठन बताना।

(iv) संगठन का संक्षित परिचय तथा उत्पादन की विधियों की जानकारी देना।

(v) संगठनात्मक ढाँचा, संयन्त्र की स्थिति तथा विभिन्न विभागों के कार्य के सम्बन्ध में सूचना प्रदान करना।

(vi) सेविगीर्य विभाग एवं अन्य कर्मचारियों के सम्बन्धों को स्पष्ट करना।

(vii) संगठन की सेवा शर्तो, श्रम कल्याण सुविधाओं तथा अन्य उपलब्ध लाभों की जानकारी प्रदान करना।

(viii) कार्य की अवधि, भुगतान पद्धति, अधिसमय कार्य, दुर्घटना से सुरक्षा, बचाव सम्बन्धी उपाय, छुट्टियों अवकाश, तथा थकावट अनुभव होने पर विश्राम करने आदि की जानकारी प्रदान करना।

(ix) अनुशासन प्रणाली एवं परिवाद निवारण पद्धति के बारे में सूचित करना।

(x) पदोन्नति के अवसर, रुपान्तरण, सुझाव योजनाओं एवं कार्य स्थायित्व सम्बन्धी जानकारी देना।

(xi) सामाजिक सरोकारों एवं मनोरंजनात्मक सुविधाओं से अवगत कराना।

2 **परिचय कार्यक्रम (Induction Programme):–**

संगठन में नवनियुक्त कर्मचारियों के लिए परिचय कार्यक्रम का अत्यधिक महत्त्व होता है इसके सफलता पूर्वक क्रियान्वयन द्वारा संगठन बाधा रहित विकास की ओर गतिमान होता है। परिचय कार्यक्रम के मुख्य चरण इस प्रकार है–

3 **सेववर्गीय विभाग द्वारा परिचय कार्यक्रम–**

इसके अन्तर्गत कर्मचारी को संगठन के इतिहास एवं उसकी कार्य प्रणाली से अवगत कराया जाता है। इस प्रकार कर्मचारी को संगठन के विभिन्न पहलुओं के बारे में जानकारी प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत कर्मचारियों को सेवा निवृत्ति नियम, श्रम कल्याण, स्वस्थ्य सेवाएं एवं सुरक्षात्मक कार्यक्रम

आदि सेवा नियमों की सामान्य जानकारी दी जाती है। एक अच्छी परिचय कार्यक्रम नीति के अन्तर्गत समस्त जानकारियां धीरे–धीरे प्रदान की जाती है।

5.12 पर्यवेक्षक द्वारा परिचय कार्यक्रम

पर्यवेक्षकों द्वारा द्वितीय चरण की जानकारी प्रदान की जाती है। इसके अन्तर्गत कर्मचारी को विभाग, कार्यस्थल आदि की जानकारी प्रदान की जाती है। इसके अन्तर्गत सहयोगी कर्मियों से परिचय, प्रसाधन एवं अल्पाहार गृह की स्थिति तथा कार्यस्थल पर पहुँचने के समय सम्बन्धी सूचना प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त संगठन की विशिष्ट परम्पराओं यथा, कर्मचारी दोपहर का भोजन स्वयं लाते है या नहीं, कार्य की पोशाक संगठन द्वारा उपलब्ध करायी जाती है या नही, इत्यादि बातों की जानकरी दी जाती है इस जानकारी का उद्‌देश्य कार्य तथा कार्य के वातारण से नवनियुक्त कर्मचारी का समायोजन सुनिश्चित करना।

5.13 सेविवर्गीय विभाग या पर्यवेक्षक द्वारा कलान्तर में दोहराने स्वरुप जानकारी देना

इस चरण का परिचय कार्यक्रम नियुक्ति के कुछ समय पश्चात प्रारम्भ किया जाता है। यह समय सामान्यतः एक सप्ताह से छः माह तक होता है। इस चरण में जानकारी किसी विशेषज्ञ या फोरमैन द्वारा प्रदान की जाती है। इस चरण के परिचय कार्यक्रम का उद्‌देश्य यह ज्ञात करना होता है कि कर्मचारी उपलब्ध जानकारी से संतुष्ट है अथवा नहीं, वह कार्य के प्रति संतुष्ट है या नहीं तथा पर्यवेक्षक संतुष्ट है अथवा नहीं।

यह प्रतिपुष्टि का चरण है जिसके अन्तर्गत कर्मचारी से यह पुछा जाता है कि क्या उसके कार्य के घण्टे एवं वेतन उतना है जितना उसे नियुक्ति के पूर्व बताया गया था। वरिष्ट अधिकारियों एवं साथी कर्मचारियों के प्रति उसका नजरिया क्या है? इसके अतिरिक्त कर्मचारी की परिचय कार्यक्रम प्रणाली में सुधार की सम्भावना तथा संगठन के सुधार हेतु सुझावों को भी मांगा जाता है।

परिचय कार्यक्रम को लिखते समय साक्षात्कार कर्ता अपनी स्वयं की राय भी बताता है जिससे कर्मचारियों की प्रगति को जाना जा सकता है। इस दौरान पर्यवेक्षक कर्मचारी के गुण एवं दोषों का भी उल्लेख करता है। परिचय कार्यक्रम जहाँ एक तरफ नये कर्मचारियों के मार्ग की बाधाओं को दूर करता है वही उनकी महत्त्वाकांक्षाओं को भी पूर्ण करता है।

5.14 सारांश

किसी भी संगठन में भर्ती एवं चयन के पूर्व कार्य विश्लेषण द्वारा सभी आवश्यक जानकारियाँ प्राप्त हो जाती है। कार्य विश्लेषण भर्ती एवं चयन को सुगम बनाता है। भर्ती द्वारा संगठन में पदो के सापेक्ष कार्यकारी शक्ति को नियोजित होने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है तथा चयन प्रक्रिया द्वारा उन सभी इच्छुक व्यक्तियों में से सर्वश्रेष्ठ लोगों का चुनाव किया जाता है। चयन प्रक्रिया में अनेक विधियां होती है जिनके द्वारा सर्वाधिक उपर्युक्त व्यक्ति का चुनाव किया जाता है। चयन प्रक्रिया में पद एवं कार्य के अनुरुप कर्मचारियों का चयन किया जाता है। इस प्रकर चयनित कर्मचारियों को संगठन के प्रत्येक पहलुओं से परिचय कराने हेतु परिचय कार्यक्रम अयोजित किया जाता है। इस परिचय कार्यक्रमें में कर्मचारी कों संगठन की कार्य प्रणाली उत्तरदायित्व एवं अन्य संबन्धों से परिचय कराया जाता है। परिचय कार्यक्रम को प्रशिक्षण पूर्व प्रशिक्षण भी कहा जाता है क्यांकि यदि कर्मचारी का परिचय कार्यक्रम बहुत प्रभावी ढंग से किया जाय तो अनेक समस्याओं का निदान किया जा सकता है।

5.15 शब्दावली

कार्य विश्लेशण: यह एक विशिष्ट कार्य की क्रियाओं और उत्तरदायित्वों से सम्बन्धित सूचनाओं के अध्ययन एवं संकलन की प्रक्रिया है।

चयन: इस प्रकिया के अन्तर्गत प्राप्त आवेदन पत्रों में से सर्वश्रेष्ठ एवं उपयुक्त आवेदकों का चुनाव किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक परीक्षण: यह कार्मिको की मानसिक स्थिति का परीक्षण करने के लिए किया जाता है।

5.16 बोध प्रश्न

1. भर्ती के पश्चात् .... प्रक्रिया प्रारम्भ होती है।
2. .... प्रक्रिया में भावी कर्मचारियों के श्रोतों को ज्ञात करना तथा उन्हें संगठन में रिक्त पदो ंके सापेक्ष आवेदन करने के लिए प्रेरित करना सम्मिलित है।
3. भर्ती के .... श्रोत वे होते हैं जिनके द्वारा चयनित अभ्यर्थी संगठन से पूर्व परिचित नहीं होते हैं।
4. .... साक्षात्कार को ढॉचागत अथवा निर्देशित साक्षात्कार भी कहते है।
5. कार्य परिचय की प्रक्रिया को .... की प्रक्रिया नाम से भी जाना जाता है।

5.17 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. चयन, 2. भर्ती, 3. बाह्य, 4. प्रतिरूप, 5. सीखने

5.18 स्वपरख प्रश्न

1. भर्ती से आप क्या समझते है ? भर्ती के प्रमुख श्रोतो को बताइए ।
2. चयन की विधियों का परीक्षण करें ।
3. भर्ती एव चयन मे अन्तर स्पष्ट करे।
4. एक चयन प्रक्रिया के प्रमुख चरणो की संछिप्त व्याख्या करे ।

5.19 सन्दर्भ पुस्तकें

1. प्रसाद एल.एम. प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुलतान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2010
2. एण्डरसन, राबर्ट, प्रोफेसनल सेल्स मैनेजमेंट , प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1981
3. स्मिथ एफ. रोजर, सेल्स मैनेजमेंट–ए प्रैक्टिसनर्स गाइड प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1987

इकाई – 6 प्रशिक्षण एवं विकास (Training and Development)

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 प्रशिक्षण का औचित्य
6.3 प्रशिक्षण का अर्थ
6.4 प्रशिक्षण के उद्देश्य
6.5 प्रशिक्षण का महत्त्व
6.6 प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान
6.7 प्रशिक्षण आवश्यकताओं के पहचान की विधियॉ
6.8 प्रशिक्षण के क्षेत्र
6.9 प्रशिक्षक की योग्यता
6.10 प्रशिक्षण प्रक्रिया
6.11 सीखने की शैलियॉ
6.12 प्रशिक्षण प्रतिपुष्टि
6.13 सारांश
6.14 शब्दावली
6.15 बोध प्रश्न
6.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
6.17 स्वपरख प्रश्न
6.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- कर्मियों के लिए प्रशिक्षण का महत्व समझ सकें ।
- प्रशिक्षण प्रक्रिया को जान सकें ।
- क्षेत्र में कार्यरत कार्मिको को प्रशिक्षण प्रदान किये जाने वाले विषय के सन्दर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकें ।
- प्रशिक्षण देने के प्रत्येक पहलू को समझ सकें ।

6.1 प्रस्तावना

इसके पूर्व में आपने भर्ती एवं चयन की प्रक्रिया को समझा। भर्ती एवं चयन के उपरान्त उन्हें प्रशिक्षण प्रदान करने का दायित्व भी मैनेजर निर्वहन करता है। प्राचीन समय में यह मान्यता थी कि अच्छे कार्मिक बनाए नहीं जाते वरन् पैदा होते हैं परन्तु आधुनिक युग में यह सत्य नहीं है। आजकल शिक्षण एवं प्रशिक्षण द्वारा अच्छे कार्मिक बनाए जाते है। प्रशिक्षण की आवश्कता को ध्यान में रखकर प्रशिक्षण कार्यक्रम को बनाया जाता है। अतः प्रशिक्षण एक विशिष्ट एवं पेशेवर प्रक्रिया है। यह संगठन की उत्पादकता एवं प्रभावशीलता में वृद्धि करता है।

6.2 प्रशिक्षण का औचित्य

एक पुरानी कहावत है कि ''किसी व्यक्ति को एक मछली दे दो वह खा लेगा परन्तु यदि उसे मछली पकड़ने का प्रशिक्षण दे दिया जाय तो कम से कम वह पूरे परिवार का भरण–पोषण करेगा।'' यह कहावत प्रशिक्षण के महत्त्व को इंगित करती है। कर्मचारी प्रशिक्षण एक प्रक्रिया है जिसमें वे संगठन के कार्यों को प्रभावपूर्ण ढ़ग से सम्पादित करने हेतु आवश्यक ज्ञान, कौशल, चातुर्य, मनोवृत्ति एवं व्यवहार को सीखते है अथवा उसमें अभिवृद्धि करते है। बड़े औद्योगिक संगठन अधिक समय तक प्रशिक्षण एवं विकास की आवश्यकता की उपेक्षा नहीं कर सकते है। कितना भी सावधानीपूर्वक चयन किया गया हो लेकिन प्रशिक्षण की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त कर्मचारी कितने भी योग्य एवं कुशल हो परन्तु प्रशिक्षण की आवश्यकता विद्यमान रहती है।

संस्थान में प्रशिक्षण कोई विशेष क्रिया मात्र नहीं है वरन् यह उन्नतिशील संस्थान की मूलभूत आवश्यकता है। श्री जी.आर. औलिनस के अनुसार प्रशिक्षण एक संगठित क्रिया है जिसमें तथ्य को ज्ञात करने, योजना बनाने, शिक्षा प्रदान करने और दक्षता को उत्पन्न करने की सकारात्मक कोशिश एवं क्रिया करना और इन दक्षताओं चुनाव सम्बन्धित योग्यता को प्राप्त करना है जो कि आकस्मिक तौर पर ज्ञान और अनुभव द्वारा प्राप्त की जाती है। यह संगठन का एक ऐसा साधन है जिसका उद्‌देश्य विचारधारा, दक्षता और कर्मचारियों की कार्य क्षमता को अच्छा बनाने के लिए प्रयोग करना है जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों को बनाने के लिए, दिखाने के लिए, कार्य करने के लिए और कार्य का निरीक्षण करने के पहलुओं को सम्मिलित किया जाता है ताकि कर्मचारी सम्भावनाओं के अनुरूप कार्य कर सके। प्रशिक्षण एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा दक्षता एवं कार्यक्षमता को बेहतर करने का प्रयास किया जाता है।

6.3 प्रशिक्षण का अर्थ

प्रशिक्षण संगठन के निश्चित उद्‌देश्यों की प्राप्ति हेतु एक संगठित क्रिया है जिसमें लोगों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि की जाती है तथा नये प्रासंगिक ज्ञान एवं कौशल से परिचित कराया जाता है। प्रशिक्षण में व्यावसायिक पर्यावरण के सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण तत्वों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की जाती है जिससे लोग कार्यो का प्रभावी निष्पादन सुनिश्चित कर सकें। इस प्रकार प्रशिक्षण के अन्तर्गत व्यक्ति की योग्यता, कार्यक्षमता तथा निपुणता में वृद्धि की जाती है। एडविन बी. फिलप्पो के अनुसार– ''कर्मचारी द्वारा किसी विशिष्ट कार्य को सम्पादित करने हेतु उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि की प्रक्रिया प्रशिक्षण कहलाती है।

माइकल जूसियस के अनुसार– प्रशिक्षण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा विशिष्ट कार्य के सम्पादन हेतु कर्मचारियों की अभिवृत्तियों निपुणताओं एवं योग्यताओं में अभिवृद्धि की जाती है।

विकास (Development):–

प्रशिक्षण के साथ प्रयुक्त विकास शब्द अधिशासी विकास या प्रबन्ध विकास का पर्याय माना जाता है। इसके द्वारा व्यक्तियों की प्रकृति एवं दिशा में परिवर्तन का प्रयास किया जाता है। डेल एस. बीच के अनुसार– प्रबंधकीय विकास प्रशिक्षण एवं विकास की एक ऐसी सुव्यवस्थित विधि है जिसके द्वारा व्यक्ति संगठन के कार्य का प्रभावपूर्ण प्रबंध करने के लिए ज्ञान, कौशल, आत्मज्ञान एवं दृष्टिकोण प्राप्त करते है और उनका उपयोग करते है।

''माइकल जूसियस ने अधिशासी विकास को निम्न प्रकार परिभाषित किया– ''अधिशासी विकास एक ऐसा कार्यक्रम है जिसके द्वारा वांछित उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए अधिशासी क्षमताओं में वृद्धि की जाती है।

उपरोक्त कथनों से स्पष्ट है कि विकास एक सतत् प्रक्रिया एवं इसके परिणाम काफी समय के पश्चात् परिलक्षित होते है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास किया जाता है। यह विकास संगठन के विकास में अभूतपूर्व भूमिका का निर्वहन करता है।

प्रशिक्षण एवं विकास में अन्तरः–

प्रशिक्षण एवं विकास यद्यपि कि एक साथ प्रयोग किये जाते है परन्तु दोनों में अन्तर पाया जाता है। प्रशिक्षण में जहाँ कर्मिकों के तकनीकी ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि का प्रयास किया जाता है वहीं विकास के अन्तर्गत अवधारणात्मक ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि का प्रयास किया जाता है। प्रशिक्षण एवं विकास में यह अन्तर लीरेन्स स्टीमेज के शब्दों में इस प्रकार है– ''प्रशिक्षण एक अल्प कालीन प्रक्रिया है जिसमें क्रियाशील व्यक्तियों में निश्चित उद्देश्य के लिए प्राविधिक ज्ञान एवं चातुर्य का विकास किया जाता है। विकास एक दीर्घकालीन शिक्षण प्रक्रिया है जिसके द्वारा प्रबंधकीय व्यक्ति सामान्य उद्देश्य के लिए अवधारणा सम्बन्धी और सैद्धान्तिक ज्ञान की प्राप्ति करते है।

आजकल प्रशिक्षण का एक अतिरिक्त उद्देश्य परिवर्तन हेतु अवसर प्रदान करना है। प्रबन्ध प्रशिक्षण द्वारा प्रबन्धकों को ऐसे ज्ञान, कौशल तकनीक से युक्त किया जाता है जो प्रबन्धकीय लक्ष्यों एवं प्रकार्यों के लिए प्रासंगिक हो। इसके अतिरिक्त आज प्रशिक्षण के अन्तर्गत व्यावहारिक कौशल पर अत्यधिक जोर दिया जा रहा है। इसके अन्तर्गत अन्तर्वैयक्तिक संचार, नवाचार, नेतृत्व एवं टीमवर्क सम्मिलित किये जाते है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि प्रशिक्षण व्यापक, व्यवस्थित एवं सतत् तथा संगठन की रणनीतियों के अनुसार होना चाहिए।

6.4 प्रशिक्षण के उद्देश्य

आधुनिक संगठनों में प्रशिक्षण कार्यक्रम का उद्देश्य अत्यन्त व्यापक होता जा रहा है। आधुनिक संगठनों में केवल ज्ञान एवं कौशल का विकास करना ही उद्देश्य नहीं रह गया वरन कर्मचारी का सर्वांगीण विकास तथा उनके संगठन के साथ बेहतर समन्वय द्वारा संगठन के उद्देश्यों को प्रभावशीलता से प्राप्त करना है। व्यावसायिक पर्यावरण में व्याप्त अनेक तत्वों को ध्यान में रखकर कार्य के कुछ विशिष्ट उद्देश्यों एवं कुछ सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम अयोजित किये जाते है। प्रशिक्षण के कुछ महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निम्न है–

कार्य सम्बन्धी ज्ञान एवं कौशल का विकास करना– कार्य सम्बन्धी ज्ञान एवं कौशल का विकास संगठन के महत्त्वपूर्ण उद्देश्य होते है। अधिकतर संगठन केवल इस उद्देश्य हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते है। संगठन के अन्तर्गत अनेक कार्य किये जाते है तथा प्रत्येक कार्य हेतु कुछ विशिष्ट ज्ञान एवं कौशल की आवश्यकता होती है। संगठन में उन कार्यो को सम्पादित करने वाले कार्मिकों में ज्ञान एवं कौशल के उस न्यूनतम स्तर को प्राप्त करने एवं बनाये रखने हेतु प्रशिक्षण कार्यक्रम अयोजित किये जाते है।

कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धिः–

प्रशिक्षण कार्यक्रम का एक प्रमुख उद्देश्य कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि करना होता हैं। नवागत कर्मचारी व्यावसायिक पर्यावरण ही नही वरन संगठन के पर्यावरण से भी अनभिज्ञ रहता है। अतः प्रशिक्षण द्वारा उसको कार्य एवं संगठन से सम्बन्धित विविध पहलुओं से परिचित कराकर कार्यक्षमता में वृद्धि का प्रयास किया जाता है।

मनोबल में वृद्धि–

प्रशिक्षण प्रक्रिया में कर्मचारी नये ज्ञान एवं कौशल सीखते है अथवा अपने ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि करते है जिससे उनका मनोबल बढ़ जाता है तथा वे उच्च मनोबल के साथ कार्यो का निष्पादन करते है। अन्य ऐसे भी कर्मिक होते है जो निम्न मनोबल के साथ संगठन में कार्य करते रहते है परन्तु प्रशिक्षण प्रक्रिया में प्रोत्साहन पाकर उनका मनोबल बढ़ जाता है तथा वे कार्यो को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने लगते है।

संगठन के प्रतिनिष्ठा–

कई बार वैचारिक भिन्नता के कारण कर्मचारियों के बीच मतभेद उत्पन्न हो जाता है तथा इस मतभेद के परिणामस्वरुप संगठन के प्रति निष्ठा में कमी उत्पन्न होने लगती है। प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा मतभिन्नता से उत्पन्न मनभेद को दूर किया जाता है तथा संगठन के प्रति निष्ठा को दृढ़ करने का प्रयास किया जाता है।

भविष्य में संगठन के विस्तार हेतु योग्य कार्मिक तैयार करना–

प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत भविष्य को ध्यान में रखकर कर्मचारियों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इस प्रशिक्षण द्वारा संगठन के विस्तार की दशा में योग्य कर्मचारियों की पूर्ति की जा सकती है। विस्तार के समय योग्य एवं प्रशिक्षित कर्मियों की आवश्यकता होती है। अतः यह कार्य भविष्य को ध्यान में रखकर किया जाता है।

6.5 प्रशिक्षण का महत्त्व

प्रशिक्षण एक महत्त्वपूर्ण प्रक्रिया है। यह संगठन के चतुर्दिक विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निवर्हन करता है। इससे न केवल संगठन की उत्पदकता में वृद्धि होती है वरन् कर्मचारियों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि करते हुए उनको दुर्घटनाओं से बचाता है। इसके द्वारा पर्यावरण के साधनों का श्रेष्ठतम उपयोग किया जाता है तथा संपोषणीय विकास को सुनिश्चित करते हुए समाज एवं राष्ट्र के विकास को सकारात्मक दिशा प्रदान की जाती है। प्रशिक्षण का महत्त्व निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत समझा जा सकता है–

- **संगठन की उत्पादकता एवं कार्य कुशलता में वृद्धि–** एक उत्तम प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा उत्पादन की मात्रा एवं गुणवत्ता में वृद्धि होती है। कार्यों को द्रुतगति से सम्पादित किया जाता है जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है। अधिक कौशल एवं ज्ञान द्वारा सामग्री की बर्बादी और क्षरण में कमी होती है तथा मशीनों एवं उपकरणों की टूट–फूट एवं घिसावट में कमी आती है। इस प्रकार प्रशिक्षण द्वारा कार्यकुशलता में वृद्धि होती है।
- **सुरक्षा में वृद्धि–** प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा कार्यो को करने का सही एवं सुलभ तरीका बताया जाता है। इन तरीकों से कार्य करने पर दुर्घटनाओं की संख्या एवं उनकी गम्भीरता मे कमी आती है इस प्रकार मशीन एवं कर्मचारियों की सुरक्षा में वृद्धि होती है। कर्मचारियों में विद्यमान कार्य अकुशलता, अज्ञानता एवं दोषपूर्ण आदतों का प्रशिक्षण के द्वारा निराकरण किया जाता है अथवा उनका स्तर निम्नतम किया जाता है। इस प्रकार के कार्य से कर्मचारियों की सुरक्षा में वृद्धि होती है।
- **निरीक्षण की आवश्यकता में कमीः–** प्रशिक्षण कार्यक्रम में कर्मचारियों को कार्य करने की सम्यक् विधि से अवगत कराया जाता है। अतः कर्मचारी अपने कार्य का निष्पादन कुशलता के साथ करने लगते है तथा कम त्रुटियाँ करते है जिससे समस्याओं मे कमी आती है तथा निरीक्षक के समय एवं श्रम की बचत होती है।

- **संगठन में स्थायित्व एवं लोचपूर्णता–** प्रशिक्षण द्वारा संगठन में स्थायित्व एवं लोचपूर्णता का सृजन होता है। प्रशिक्षण द्वारा तैयार किये कार्मिक कुशल कर्मचारियों की अनुपस्थिति में कार्य भार ग्रहण कर लेते है तथा संगठन में स्थायित्व प्रदान करते है। इस प्रकार संगठन की क्रियायें प्रभावशीलता के साथ चलती रहती है। किसी संगठन की लोचपूर्णता संगठन की वह क्षमता है जिसमें संगठन के कर्मचारी अल्पकाल में परिवर्तनों के अनुसार स्वयं को संगठन के अनुरुप समायोजित कर लेते है। प्रगतिशील संस्थाओं में लोचपूर्णता पायी जाती है। इस प्रकार के संगठन में ऐसे अधिकारियों एवं कर्मचारियों की बड़ी आवश्यता होती है, जिससे कि वे कम से कम समय में कुशलतापूर्वक प्रगतिशील तकनीकि एवं व्यावहारिक परिवर्तनों के अनुरुप समायोजित कर सकें। यह प्रशिक्षण द्वारा ही सम्भव हो पाता है।
- **कर्मचारियों में उत्तरदायित्व की भावना का विकास**–एक अच्छे प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा कर्मचारियों मे उत्तरदायित्व की भावना का विकास होता है। प्रशिक्षक कर्मचारियों को उनके उत्तरदायित्वों का बोध कराता है तथा उनके निर्वहन हेतु प्रेरित करता है।

6.6 प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान

समस्याओं की पहचान सुनिश्चित होने के पश्चात् प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान की जाती है। इसके अन्तर्गत यह सुनिश्चित किया जाता कि क्या किसी समस्या विशेष के उत्पन्न होने पर प्रशिक्षण की आवश्यकता है तो यह किस प्रकार के प्रशिक्षण से ठीक की जा सकती है। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण का समय तथा अवधि आदि के सन्दर्भ में भी इसके अन्तर्गत निर्णाय लिया जाता है।

जरुरी ज्ञान एवं कौशलः– प्रशिक्षण प्रक्रिया के इस चरण में जरुरी ज्ञान एवं कौशल की पहचान की जाती है। प्रशिक्षण प्रक्रिया में कर्मियों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि की जाती है। संगठन के कार्यो को निष्पादित करने में यदि कर्मियों को आवश्यक ज्ञान एवं कौशल से कर्मियों को परिचित कराया जाता है तथा यदि यह ज्ञान एवं कौशल का स्तर कम है तो उस स्तर में और अधिक वृद्धि की जाती है जिससे संगठन के कार्य बिना किसी अवरोध के पूर्ण किये जा सके।

प्रशिक्षण संसाधनों का विकासः– प्रशिक्षणों संसाधनों का विकास के अन्तर्गत कर्मियों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि को सुगमता पूर्वक सुनिश्चित करने हेतु प्रवास किये जाते है। इसके अन्तर्गत प्रशिक्षण की विधियाँ तथा उन विधियों के सफल संचालन हेतु आवश्यक संसाधनों को एकत्रित किया जात है। इसका प्रमुख उद्देश्य प्रशिक्षण प्रक्रिया की सुगमता एवं प्रभावितता में वृद्धि करना होता है।

प्रशिक्षण वस्तुओं को इकट्ठा करनाः– प्रशिक्षण प्रक्रिया के अन्तर्गत प्रशिक्षण वस्तुओं को इकट्ठा करना अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण कार्य होता है। इन वस्तुओं की सहायता से ही प्रशिक्षण कार्यक्रम न केवल पूर्ण होता है वरन् प्रभावी भी होता है।

कार्यक्रम संचालित करनाः– प्रशिक्षण प्रक्रिया के इस चरण के अन्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रम को संचालित किया जाता है। इसके पूर्व के चरण वास्तविक कार्यक्रम प्रारम्भ अपने वास्तविक के चरण थे परन्तु इस चरण में कार्यक्रम को यथार्थ रुप में प्रस्तुत किया जाता है। इस चरण में यह ध्यान रखा जाता है कि कार्यक्रम प्रभावी ढंग से कर्मियों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि कर सकें।

प्रतिपुष्टि प्राप्त करनाः– यह प्रशिक्षण प्रक्रिया का अंतिम चरण होता है जिसके अन्तर्गत प्रशिक्षण कार्यक्रम से सम्बन्धित प्रतिपुष्टि प्राप्त की जाती है। इसके अन्तर्गत कार्यक्रम कितना प्रभावी रहा है तथा लोगों के ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि करने में कितना सफल रहा इस बात का आकलन किया

जाता है। इसके अतिरिक्त प्रशिक्षण कार्यक्रम के प्रत्येक पहलू से सम्बन्धित विषयों पर प्रतिपुष्टि प्राप्त की जाती है।

6.7 प्रशिक्षण आवश्यकताओं के पहचान की विधियॉ

किसी भी प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता के लिए यह सबसे अधिक महत्वपूर्ण है कि प्रशिक्षण की आवश्यकता को सही एवं स्पष्ट रूप से पहचाना जाए। प्रशिक्षण आवश्यकता विश्लेषण कर्मचारियों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान करने में मदद करता है। प्रशिक्षण आवश्यकताओं की पहचान की कुछ विधियॉ निम्नलिखित हैः–

1. **स्वयं पर्यवेक्षण** :– कोई भी व्यक्ति अपने बारे में सबसे अच्छे तरीके से जान सकता है जितना उसको दूसरे नहीं जान सकते। इसके अन्तर्गत कार्य करते हुए कर्मी यह अनुभव करता है कि वह किस जगह पर ढंग से नहीं कर पा रहा है तथा उसको कहॉ पर प्रशिक्षण की आवश्यकता है। यदि व्यक्ति यह जानने में सक्षम है तो वह सर्वश्रेष्ठ विधि होती है। इस स्थिति में किसी भी तरह के पक्षपात की सम्भावना नहीं रहती है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक गतिविधि का स्वयं पर्यवेक्षण संभव नहीं है तथा उससे सम्बन्धित ऑकड़े व्यक्ति सहेज कर रख नहीं पाता है।

2. **प्रतिवेदन** :– प्रत्येक संगठन में अनेक प्रतिवेदन रखे होते हैं, जिसमें कार्य निष्पादन से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं के बारें में जानकारी रहती है। इनमें कार्य प्रतिवेदन के बारें में जानकारी रहती है। इन प्रतिवेदनों के सचेत अध्ययन द्वारा प्रशिक्षण आपवश्यकताओं के बारें में जाना जा सकता है। प्रतिवेदन के द्वारा प्रशिक्षण आवश्यकताओं के बारें में जानकारी प्राप्त करने का लाभ यह है कि इसके द्वारा लम्बे समय से प्रयोग किये जा रहे ऑकड़ों से निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। इस प्रकार यह जानकारी अधिक सटीक होती है। इस विधि द्वारा लागत भी नहीं लगती है परन्तु अत्यधिक ऑकड़ों के कारण इस विधि में समय अधिक लगता ळें

3. **सर्वेक्षण एवं प्रश्नावली** :– ये लिखित फार्म होते है जिनको कर्मियों एवं प्रबन्धकों द्वारा भरवाया जाता है। इनमें कार्य एवं प्रशिक्षण आदि विषयों से संबंधित प्रश्न होते हैं जिनके उत्तरों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि प्रशिक्षण की आवश्यकता है या नहीं एवं यदि है तो किस प्रकार की तथा किस स्तर की। इसके अन्तर्गत दूर बैठे व्यक्तियों की भी राय जानी जा सकती है तथा व्यक्ति बिना किसी दबाव एवं असुविधा के फार्म भर सकता है। प्रश्नावली की भाषा में यदि स्पष्टता न हो तो भरने वाले सही उत्तर नहीं दे पाते। ऐसी स्थिति में प्राप्त ऑकड़े गलत हो जाते है तथा यह विधि अप्रभावी हो जाती है।

4 **आमने–सामने साक्षात्कार** :– इसके अन्तर्ग व्यक्ति आमने–सामने बैठकर अपनी समस्याओं तथा सम्बन्धित मुद्दो पर बात करता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति की यथासम्भव समस्याओं का समाधान हो जाता है परन्तु जिनका नहीं हो पाता है, उन्हें प्रशिक्षण की आवश्यकता मानकर उस प्रकार का प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किया जाता है। कर्मी इस प्रकार के साक्षात्कार पसन्द नहीं करते जहॉ उनकी बातों को रिकार्ड किया जाता है। इस प्रक्रिया में भी समय लगता है।

5 **लक्ष्य वर्ग** :– इसके अन्तर्गत 10–15 कर्मियों का एक वर्ग बनाया जाता है जो आपस में अपनी समस्याओं के संदर्भ में बातचीत करता है। इसमें वे परस्पर विचारों का आदान–प्रदान करते हैं। इस विधि में अपरिभाषित विषयों पर विचारों का आदान–प्रदान लाभदायक होता है। लक्ष्य वर्ग मूल्यपरक परन्तु सामान्य ऑकड़ें प्रस्तुत करता है। इस विधि में भी समय अधिक लगता है।

6.8 प्रशिक्षण के क्षेत्र

प्रशिक्षण बहुत व्यापक शब्द है तथा इसमें मुख्य रूप से तीन क्षेत्र सम्मिलित किये जाते हैं – ज्ञान, दक्षता और विचारधारा। प्रभावी प्रशिक्षण हेतु इन तीनों का उन्नयन आवश्यक होता है। ज्यादातर कार्यक्रम सिर्फ ज्ञान के उन्नयन को ध्यान में रखकर बनाये जाते है एवं दक्षता तथा विचारधारा पर ध्यान नहीं देते है। एक प्रभावी प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु इन तीनों क्षेत्रों को शामिल करना आवश्यक होता है।

- **ज्ञानः–** ज्ञान प्रशिक्षण के अन्तर्गत सम्मिलित एक प्रमुख क्षेत्र है, इसके अन्तर्गत एक प्रभावी कर्मियों को किन–किन ज्ञान की आवश्यकता होती है, के संदर्भ में प्रशिक्षित किया जाता है। इसके अन्तर्गत कम्पनी का ज्ञान, उत्पादों एवं सेवाओं, कार्य का ज्ञान, विज्ञापन तथा बिक्री उत्पाद के बारें में, बिक्री नीतियॉ, ग्राहक, स्थायीकरण एवं यन्त्रीकरण तथा प्रतियोगियों के बारें में ज्ञान प्रदान किया जाता है।
- **दक्षता प्रशिक्षण :–** ज्ञान के प्रयोग की योग्यता दक्षता कहलाती है। दक्षता प्रशिक्षण के अन्तर्गत योग्यता का उन्नयन ज्ञान के प्रयोग द्वारा प्रभावी तरीके से सम्पन्न होता है। परन्तु यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि बहुत से कार्यक्रमों में प्रशिक्षण को सम्मिलित नहीं किया जाता है। इसका प्रमुख कारण लागत एवं समय की अधिकता होती है।
- **विचारधारा प्रशिक्षण :–** कम्पनी, प्रबन्धकों, उत्पादों, बिक्री कार्यो, बिक्री करने के स्वभाव और बिक्री प्रभावीकरण की विचारधारा आदि को प्रभावित करती है। विचारधारा नकारात्मक एवं सकारात्मक हो सकती है। इस सोच के परिणामस्वरूप कम्पनी के कार्यो की प्रभावशीलता प्रभावित होती है। विचारधारा के प्रशिक्षण का उद्देश्य सकारात्मक सोच को कियात्मक रूप प्रदान करना तथा नकारात्मक सोच को सकारात्मक सोच में बदलना होता है। एक प्रभावी विचारधारा के प्रशिक्षण कार्यकम में शारीरिक समर्थता के लिए प्रशिक्षण तथा व्यक्तिगत प्रभावीकरण के लिए प्रशिक्षण को सम्मिलित किया जाता है।

6.9 प्रशिक्षक की योग्यता

एक अच्छे प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षक में अनेक योग्यताएं होनी चाहिए। इन योग्यताओं द्वारा ही प्रशिक्षक सफल हो सकता है। इनके अन्तर्गत कार्य के बारें में ज्ञान तथा परिस्थितियों के साथ सहसम्बन्ध स्थापित करने का कौशल अत्यन्त आवश्यक है। कुछ अन्य प्रमुख योग्यताएं निम्नलिखित है :–

1. **तार्किक क्षमताः** एक अच्छा प्रशिक्षक परिस्थितियों का विश्लेषण करता है तथा प्रशिक्षण की वास्तविक आवश्यकता की पहचान करता है। इसके द्वारा ही वह प्रशिक्षण के वास्तविक मुद्दो की पहचान करता है तथा अनावश्यक मुद्दों को प्रशिक्षण से दूर रखता है।
2. **शैक्षणिक क्षमताः** एक प्रशिक्षक को कर्मी द्वारा निष्पादित कार्यो के ज्ञान की आवश्यकता होती है। उसे संचार के सिद्धान्तों की जानकारी होनी चाहिए। यह बेहतर होगा यदि प्रशिक्षक को प्रौढ़ सीखने के बारें में ज्ञान होता है।
3. **प्रशिक्षण तकनीकियॉ :** एक सफल प्रशिक्षक को यह समझना होता है कि लोग किन चीजों से सीखते हैं तथा किन नई चीजों से सीखते हैं तथा किन नई चीजों को स्वीकार करते हैं। उसे

प्रशिक्षण की विभिन्न तकनीकियों के बारें में जानकारी होनी चाहिए। उसे अधिकतम परिणाम हेतु इन तकनीकों के उपयोग की क्षमता होनी चाहिए।

4. **प्रतिभागियों की प्रतिभागिता सुनिश्चित करना** : एक अच्छे प्रशिक्षक में यह योग्यता होनी चाहिए कि वह प्रतिभागियों की प्रतिभागिता को सुनिश्चित कर सके। उसे उन विधियों तथा तकनीकियों का प्रयोग करना चाहिए जो लोगों को सीखने के लिए प्रेरित करे तथा उसकी रुचि बनी रहे। ऐसी विधियों के प्रयोग से बचना चाहिए जो नीरस तथा थकाऊ हो।

5. **कार्यक्रम का आयोजन** : एक बार यदि किसी पाठ्यक्रम हेतु लिखित सामग्री तैयार हो जाये तो उसका सत्र प्रारम्भ किया जा सकता है। इसके सफल आयोजन हेतु कई नियमों को ध्यान में रखा जाता है।

6.10 प्रशिक्षण प्रक्रिया

निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लोगों के निष्पादन में परिवर्तन तथा सीखने की प्रक्रिया प्रशिक्षण कहलाती है। हम कह सकते हैं कि प्रशिक्षण लोगों को उनके निष्पादन में सुधार के लिए सहयोग करती है। प्रशिक्षण प्रक्रिया को सुविधापूर्वक समझने हेतु इसे चार चरणों में बॉटा जा सकता है। ये चरण है – प्रशिक्षण आवश्यकता की पहचान, कार्यक्रम को डिजाइन करना, कार्यक्रम का संचालन तथा प्रशिक्षण प्रतियुक्ति। प्रशिक्षण के इन विशिष्ट चरणों के अतिरिक्त प्रशिक्षक को प्रौढ़ सीखने की शैली का ज्ञान होना चाहिए जिससे कार्यक्रम आवश्यकतानुसार संचालित किया जा सके।

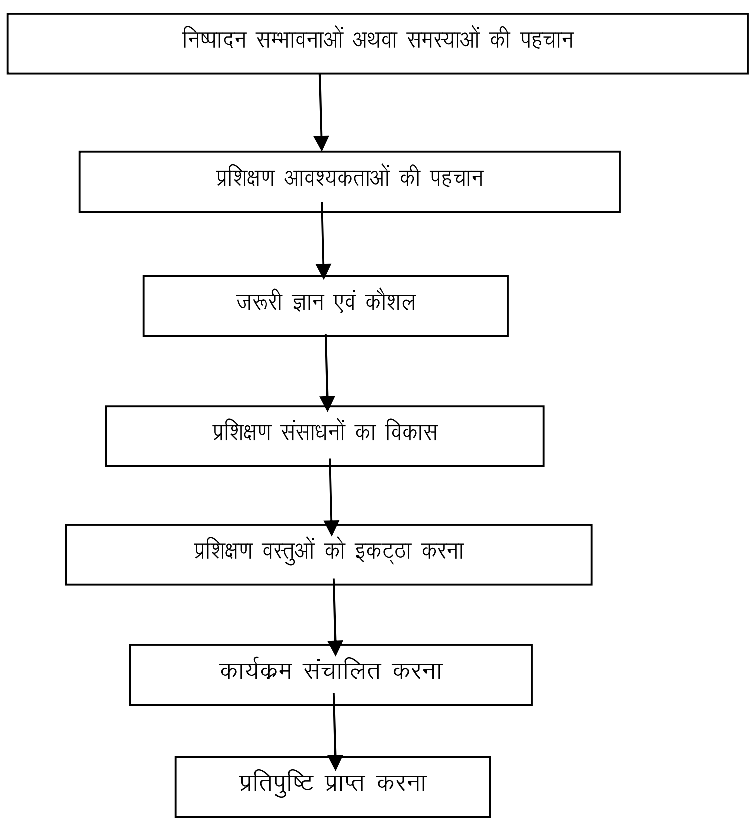

प्रशिक्षण प्रक्रिया

6.11 सीखने की शैलियॉ

एक प्रशिक्षण कार्यक्रम के निर्माण के दौरान इस बात का ख्याल रखा जाना चाहिए कि विभिन्न प्रकार के लोग विभिन्न शैलियों द्वारा सीखते हैं। अतः सीखने की एक सर्वश्रेष्ठ विधि की पहचान करना आवश्यक होता है। स्पष्टतया कहा जाय तो कोई भी व्यक्ति निम्न में से किसी न किसी शैली से सीखता है:– कार्यकर्ता, प्रतिक्षेपक, विचारक एवं व्यवहारवादी। यह तथ्य ध्यान में रखना चाहिए कि ये मात्र सीखने की शैलियॉ है। इनमें व्यक्तित्व कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होता है।

1. **कार्यकर्ता** :– एक कार्यकर्ता अपने आपको पूरी तरह से बिना किसी भेदभाव के नये अनुभव के प्रति समर्पित रखता है। यह खुले विचारों, संशय न करने वाला तथा किसी भी नये कार्य के प्रति उत्साही होता है। वह विचार–विमर्श के द्वारा समस्याओं का सामना करता है। अतः एक कार्यकर्ता के लिए कार्यक्रम बनाते समय उसकी परिस्थितियों, पसन्द आदि को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
2. **प्रतिक्षेपक** :– यह व्यक्ति अनुभवों का मनन करता है तथा उन्हें विभिन्न परिप्रेक्ष्यों से पर्यवेक्षण करता है। वह स्वयं तथा दूसरों से ऑकड़ा इकट्ठा करता है तथा किसी निष्कर्ष पर आने से पूर्व गहन चिन्तन करता है। यह सभाओं में पीछे की सीट पर बैठकर अन्य लोगों के क्रियाकलापों को देखते है। वह निचले स्तर पर कार्य करता है। एक प्रतिक्षेपक के लिए कार्यक्रम का निर्णण करते समय वास्तविक क्रिया अध्ययनों एवं अनुभवों को सम्मिलित करने के साथ उसे स्वयं निर्णय लेने में मार्गदर्शन करना चाहिए।
3. **विचारक** :– एक विचारक पर्यवेक्षणों को जटिल परन्तु तार्किक सक्षम विचारों में बॉटता है। वह समस्याओं के बारे मे एक–एक कदम सोचता है। वह उनका विश्लेषण पसन्द करता है। विचारक विवेकपूर्ण उद्देश्यों के प्रति अलगाव, विश्लेषणपरक तथा समर्पित होता है। समस्याओं के प्रति उसका रुख सदैव तार्किक होता है।
4. **व्यवहारवादी** :– यह सदैव विचारों, सिद्धान्तों एवं तकनीतियों के प्रयोग के प्रति उत्सुक रहता है। वह एक प्रकार का व्यक्ति है जो प्रशिक्षण द्वारा भरा हुआ परिणाम प्रयोग के दौरान नये विचारों से मुक्त प्रदान करता है।

6.12 प्रशिक्षण प्रतिपुष्टि

प्रशिक्षण के पश्चात् यह देखना अत्यन्त आवश्यक होता है कि प्रशिक्षण कार्यक्रम कितना सफल रहा। यह इसलिए किया जाता है जिससे पता चल सके कि प्रशिक्षण कार्यक्रम की सफलता कितनी रही तथा कहॉ पर अभी भी सुधार किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इसके द्वारा यह भी पता चलता है कि क्या और आवश्यकताएं हैं जिसके प्रयोग द्वारा भविष्य में प्रशिक्षण कार्यक्रम अधिक सफलतापूर्वक आयोजित किये जा सकते हैं।

6.13 सारांश

संगठन के उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि संगठन अपने कार्मिकों को यथासम्भव प्रशिक्षित करे। प्रशिक्षण गतिविधियों में कार्मिकों की विशिष्ट आवश्यकताएं तथा बाजार की जटिल स्थितियों को लक्ष्य में रखकर बनायी जाती है। अतः प्रशिक्षण की आवश्यकताओं की पहचान आवश्यक होती है। एक बार प्रशिक्षण की आवश्यकताओं की पहचान के पश्चात् प्रशिक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाता है। पढ़ाई के समान उपयुक्त प्रशिक्षक तथा प्रशिक्षण

विधियॉ इत्यादि के सम्बन्ध में निर्णय बहुत ही सतर्कता के साथ किया जाना चाहिए। एक व्यक्ति दूसरे के अनुभवों से सीखता है। अतः प्रशिक्षण कार्यक्रम में प्रतिपुष्टि को प्राप्त करना आवश्यक होता है।

6.14 शब्दावली

कर्मचारी प्रशिक्षणः यह एक प्रक्रिया है जिसमें वे संगठन के कार्यों को प्रभावपूर्ण ढ़ग से सम्पादित करने हेतु आवश्यक ज्ञान, कौशल, चातुर्य, मनोवृत्ति एवं व्यवहार को सीखते है अथवा उसमें अभिवृद्धि करते है।

अधिशासी विकासः यह एक ऐसा कार्यक्रम है जिसके द्वारा वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए अधिशासी क्षमताओं में वृद्धि की जाती है ।

6.15 बोध प्रश्न

1. कर्मचारी द्वारा किसी विशिष्ट कार्य को सम्पादित करने हेतु उसके ज्ञान एवं कौशल में वृद्धि की प्रक्रिया ....कहलाती है।
2. प्रशिक्षण एक .... प्रक्रिया है जिसमें क्रियाशील व्यक्तियों में निश्चित उद्देश्य के लिए प्राविधिक ज्ञान एवं चातुर्य का विकास किया जाता है।
3. .... प्रशिक्षण के अन्तर्गत योग्यता का उन्नयन ज्ञान के प्रयोग द्वारा प्रभावी तरीके से सम्पन्न होता है।
4. निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु लोगों के ....में परिवर्तन तथा सीखने की प्रक्रिया प्रशिक्षण कहलाती है।

6.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. प्रशिक्षण, 2. अल्प कालीन, 3. दक्षता, 4. निष्पादन

6.17 स्वपरख प्रश्न

1. प्रशिक्षण एक आवश्यक प्रबन्धकीय गतिविधि क्यों है ?
2. प्रशिक्षण के महत्त्वपूर्ण उद्देश्य क्या है?
3. ज्ञान को प्रशिक्षण की आवश्यकता क्यों माना जाता है ? प्रशिक्षण आवश्यकता पहचान की विधियॉ कौन–कौन सी है ?
4. सीखने की शैलियॉ कौन कौन सी है।
5. एक अच्छे प्रशिक्षण कार्यक्रम हेतु प्रशिक्षक में क्या योग्यताएं होनी चाहिए ?

6.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. प्रसाद एल.एम. प्रबन्ध के सिद्धान्त, सुलतान चन्द एण्ड सन्स, नई दिल्ली, 2010
2. एण्डरसन, राबर्ट, प्रोफेसनल सेल्स मैनेजमेंट, प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1981
3. स्मिथ एफ. रोजर, सेल्स मैनेजमेंट–ए प्रैक्टिसनर्स गाइड प्रिंटिस हाल, नई दिल्ली, 1987

इकाई – 7 निष्पादन मूल्यांकन (Performance Appraisal)

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 निष्पादन मूल्यांकन
7.3 निष्पादन मूल्यांकन के उद्देश्य
7..4 निष्पादन मूल्यांकन के प्रकार
 7.4.1 आकस्मिक अनियोजित मूल्यांकन
 7.4.2 पारस्परिक तथा सुनियोजित मूल्यांकन
 7.4.3 व्यवहार प्रणाली
7.5 कार्य मूल्यांकन कार्यक्रम के चरण
7.6 निष्पादन मूल्यांकन विधियॉ
 7.6.1 सीधी क्रमविधि
 7.6.2 श्रेणीकरण
 7.6.3 व्यक्ति दर व्यक्ति तुलना
 7.6.4 बलात् वितरण विधि
 7.6.5 आरेखीय क्रम निर्धारण विधि
 7.6.6 बलपूर्ण चुनाव वितरण
 7.6.7 संक्रमणीय प्रसंग विधि
 7.6.8 जॉच सूची
 7.6.9 उपलब्धियों के अनुसार मूल्यांकन
7.7 निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम की विशेषताएं
7.8 निष्पादन मूल्यांकन के गुण
7.9 निष्पादन मूल्यांकन के दोष
7.10 क्षमता मूल्यांकन
7.11 सारांश
7.12 शब्दावली
7.13 बोध प्रश्न
7.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
7.15 स्वपरख प्रश्न
7.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- निष्पादन मूल्यांकन की आवश्यकता को समझ सकें।
- निष्पादन मूल्यांकन का महत्व को समझ सकें।
- निष्पादन मूल्यांकन की विधियों एवं तरीकों के बारे में जान सकें।
- निष्पादन मूल्यांकन के गुण व दोष जान सकें।

- क्षमता मूल्यांकन के बारे में जान सकें।

7.1 प्रस्तावना

किसी भी संगठन की सफलता उसके कर्मचारियों द्वारा निष्पादित कार्यो पर निर्भर करती है। अतः यह आवश्यक है कि कर्मचारियों का निष्पादन मूल्यांकन यथार्थ रूप से किया जाय एवं प्राप्त कमियों को दूर करने के उपाय किये जाए। निष्पादन मूल्यांकन के द्वारा निष्पादित कार्य एवं क्षमता मूल्यांकन द्वारा उसकी कार्य करने की क्षमता का आकलन किया जाता है। निष्पादन मूल्यांकन करने की अनेक विधियॉ प्रचलित है जो संगठन की आवश्यकता के अनुसार निर्धारित की जाती है।

7.2 निष्पादन मूल्यांकन

संगठन लोगों द्वारा संचालित किये जाते है। लक्ष्यों का निर्धारण तथा उद्देश्यों की वास्तविक प्राप्ति लोगों द्वारा होती है। एक संगठन का निष्पादन इसके सदस्यों के निष्पादन का योग होता है। संगठन में विभिन्न स्तरों पर कार्यरत व्यक्तियों की योग्यता एवं गुणों का समय–समय पर मूल्यांकन आवश्यक होता है। यह मूल्यांकन वर्तमान भविष्य में कर्मचारियों के सन्दर्भ में निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है। इसके द्वारा कर्मचारियों की तुलनात्मक योग्यता का अंकन किया जाता है। फिलप्पों ने निष्पादन मूल्यांकन को निम्नलिखित रुप में परिभाषित किया है–

निष्पादन मूल्यांकन एक सुनियोजित एवं समय–समय पर किया जाने वाला, एक व्यक्ति की क्षमताओं का निष्पक्ष मूल्यांकन है जो व्यक्ति के वर्तमान कार्य का मूल्यांकन तथा भविष्य के अधिक श्रेष्ठ कार्य के प्रति अनुभाग लगाता है।

डेल बीच के शब्दों में – निष्पादन मूल्यांकन किसी व्यक्ति के कार्य निष्पादन और उसके विकास के लिए क्षमता का प्रणालीकृत मूल्यांकन है।

''किसी व्यक्ति को अपने कार्य पर रहते हुए उसकी सापेक्षिक सेवाओं का जो कम्पनी को मिलती है, मूल्यांकन ही कर्मचारी मूल्यांकन है।'

निष्पादन मूल्यांकन कर्मचारियों के कृत्य एवं परिणामों का अध्ययन एवं ऑकलन है। इस अध्ययन एवं ऑकलन द्वारा कर्मचारियों की कार्य क्षमता में वृद्धि के लिए आवश्यक प्रयास किये जाते है।

डेल योडोर के अनुसार – निष्पादन मूल्यांकन अथवा कर्मचारी मूल्यांकन शब्द का आशय उन समस्त औपचारिक कार्यविधियों से है जिनका प्रयोग कार्यरत संगठनों में कर्मचारियों के लिए किया जाता है। एडविन फिलिप्पो के अनुसार – निष्पादन मूल्यांकन किसी कर्मचारी का उसके वर्तमान कार्य के सम्बन्ध में तथा उच्चतर कार्य के लिए उसकी क्षमताओं का व्यवस्थित आवधिक एवं जहॉ तक मानवीय ढंग से सम्भव हो, एक निष्पक्ष अंकन है।

अतः निष्पादन मूल्यांकन से आशय विभिन्न स्तरों पर कार्य कर रहे कर्मचारियों के योग्यता स्तर का पता लगाने के लिए उपयोग में लाई जाने वाली विधि से है। यह मूल्यांकन कर्मचारी के पदोन्नत होने एवं विकास में ही सहायक नहीं होता अपितु उसके निष्पादन स्तर सुधार में भी सहायक होता है।

यद्यपि कि निष्पादन मूल्यांकन प्रत्येक काल में विद्यमान रहा है; परन्तु इस प्रक्रिया में वैज्ञानिक विधियों का प्रयोग प्रथम विश्व युद्व काल से माना जाता है। इस समय अमेरिकी सेना के अधिकारियों के मूल्यांकन के लिए ''व्यक्ति से व्यक्ति का मूल्यांकन'' प्रणाली सर्वप्रथम वाल्टर डी.स्टाफ द्वारा प्रयोग की गई। 1920 ई. से 1930 ई. के बीच इस प्रणाली का उपयोग उद्योगों में समयानुसार कार्य करने वाले श्रमिकों को मजदूरी भुगतान के लिए किया जाता था। प्रारम्भिक अवस्था में इसे योग्यता अंकन

(Merit Rating) नाम से सम्बोधित किया जाता था। यह प्रयोग का क्रम 1950 तक जारी रहा। योग्यता–माप पर आधारित अधिकांश मूल्यांकन योजनाएं जिनके अन्तर्गत विभिन्न घटक उनकी श्रेणियाँ तथा प्राप्तांको पर अधिक बल दिया जाता था। प्रबंधको के निष्पादन मूल्यांकन पर ध्यान 1950 के बाद दिया जाने लगा। निष्पादन मूल्यांकन प्रणाली में तब से अनेक सुधार किये जा चुके है।

7.3 निष्पादन मूल्यांकन के उद्देश्य

- कर्मचारियों की योग्यताओं के सम्बन्ध में उच्चतर अधिकारी द्वारा तर्कसंगत मूल्यांकन का विकास।
- नवीन एवं पूर्व प्रशिक्षित कर्मचारियों की प्रगति का अभिलेख उपलब्ध कराना।
- कर्मचारी प्रशिक्षण की नवीन एवं परिवर्तित आवश्यकताओं का ज्ञान।
- कर्मचारियों की पदोन्नति, स्थानान्तरण आदि के यथार्थपरक आधारों की उपलब्धि।
- कर्मचारियों को उनके उच्चतर अधिकारी के उनके सम्बन्ध में विचारों का ज्ञान।
- पारिश्रमिक बृद्धि के औचित्य का आधार निर्माण करना।
- परिवेदनाओं का कम करना।
- कर्मचारी को उसके निष्पादन स्तर के बारे में जानकारी देकर व्यक्तिगत और समूह विकास के बनाये रखना।

7.4 निष्पादन मूल्यांकन के प्रकार

सामान्यतः निष्पादन मूल्यांकन तीन प्रकार से किया जाता है।

7.4.1 आकस्मिक, अनियोजित तथा विश्रृंखला मूल्यांकन –

इस प्रणाली में किसी निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार कर्मचारियों का मूल्यांकन नहीं किया जाता है। सामान्यतः व्यक्तिगत अवलोकन के आधार पर उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थ का मूल्यांकन करते हैं।

7.4.2 पारस्परिक तथा सुनियोजित मूल्यांकन

इस प्रणाली के अन्तर्गत कर्मचारी की विशेषताएं एवं उसका योगदान दोनों बातें सम्मिलित की जाती है। सभी कार्यो के मूल्यांकन में एक ही प्रणाली प्रयोग की जाती है जिससे विभिन्न व्यक्तियों के मूल्यांकन निर्णयों की आपस मे तुलना की जा सके।

7.4.3 व्यवहार प्रणाली

इस प्रणाली में प्रबन्ध एवं कर्मचारी सम्मिलित रूप से लक्ष्यों का निर्धारण करते है जिसमें पर्यवेक्षक सर्वेसर्वा होता है। पर्यवेक्षक समय–समय पर व्यक्ति की परख एवं आलोचना करता है। अतः इस प्रणाली में सभी दोषों को दूर करने के लिए मिल–जुलकर लक्ष्य निर्धारण की व्यवस्था की गयी है। इसमें कर्मचारी तथा कार्य मूल्यांकनकर्ता दोनों सामूहिक रूप से कार्य प्रगति की समीक्षा करते हैं, जिससे सहयोग के आधार पर आवश्यक सुधार किया जा सके।

7.5 निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम के चरण

व्यक्ति के विकास के लिए मूल्यांकन क्रियाविधि आवश्यक है। ऐसा विकास कार्य निष्पादन तथा नयी तकनीकी ज्ञान प्राप्त करने में सहायक होता है। मूल्यांकन कार्यक्रम के निर्धारण में निम्न चरण होते है:

1. **कार्य एवं उत्तरदायित्वों का विश्लेषण** – मूल्यांकन कार्यक्रम के प्रथम चरण में कर्मचारियों के कार्य एवं उत्तरदायित्वों का विश्लेषण किया जाता है। यह कार्य अधीनस्थ कर्मचारियों से विचार–विमर्श के पश्चात् किया जाना चाहिए।
2. **कार्य निष्पादन के प्रमाप निर्धारित करना** :– अधीनस्थ कर्मचारी से विचार–विमर्श करके पर्यवेक्षक उचित प्रमाप निर्धारित करते है जो यथासम्भव सही रूप में कियान्वयन के लिए आवश्यक होते हैं।
    1. कार्य निष्पादन का पर्यवेक्षण करना।
    2. कर्मचारी की योग्यता का मूल्यांकन करना तथा इनके विकास के अवसरों का अनुमान लगाना।
    3. मूल्यांकन रिपोर्ट के बारें में विचार–विमर्श करना तथा उसके गुण व दोषों को स्पष्ट करना। कर्मचारी का उचित मार्गदर्शन द्वारा कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए प्रेरित करना।
    4. विशिष्ट प्रकार के कार्यो द्वारा कर्मचारी को प्रशिक्षित कर उन्हें अधिकाधिक निर्णयन के अवसर प्रदान करना तथा कर्मचारी को अपना उत्तरदायित्व समझने का अवसर प्रदान करना।
    5. प्रगति की समीक्षा एवं मूल्यांकन।
    6. कार्य को मान्यता देना तथा
    7. मूल्यांकन के आधार पर नये लक्ष्य निर्धारित करना।

7.6 निष्पादन मूल्यांकन विधियॉ

कर्मचारियों के निष्पादन का मूल्यांकन करने की अनेक विधियॉ प्रचलित है। विभिन्न कार्यो को तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर प्रचलित प्रणालियॅा कर्मचारी की निष्पादन योग्यता ऑकने में सहायक होती है। मूल्यांकन की प्राचीन विधियॉ जहॉ पूर्वाग्रहों से ग्रसित थी, वहीं आधुनिक विधियॉ अधिक न्याय संगत एवं तर्क पर आधारित है।

मूल्यांकन की निम्न विधियॉ प्रचलित है :–

1. सीधी क्रम विधि।
2. श्रेणीकरण।
3. व्यक्ति से व्यक्ति की तुलना।
4. बलात् वितरण विधि।
5. आरेखीय क्रम निर्धारण मान।
6. बलात् चुनाव वर्णन विधि।
7. आलोचनात्मक प्रसंग विधि।
8. जॉच सूची
9. उपलब्धियों के अनुसार मूल्यांकन।

7.6.1 सीधी क्रम विधि

यह प्राचीन एवं सरल विधि है। इसमें मूल्यांकनकर्ता द्वारा व्यक्ति एवं उसका निष्पादन एक ही माना जाता है अर्थात् व्यक्ति को उसके कार्य निष्पादन से अलग नहीं किया जा सकता है। इसमें एक व्यक्ति की तुलना सीधे दूसरे व्यक्ति से की जाती है। व्यक्ति को क्रम उसकी योग्यता के आधार पर दिया जाता है। अलग–अलग समूहों के लिए अलग–अलग सूचियॉ बनायी जाती है तथा प्रत्येक

वर्ग को एक दूसरे की तुलना में रखा जाता है। यह एक अधिकतम कुशल व्यक्ति को न्यूनतम व्यक्ति के पृथक करने की सीधी विधि है।

इस विधि में कई कर्मचारियों की एक साथ आपस में तुलना करने तथा उनका योग्यता क्रम निर्धारित करना अत्यधिक कठिन है। अतः तुलना के लिए युगल तुलना तकनीक को अपनाया जाता है। इसमें एक कर्मचारी की एक समय में तुलना प्रत्येक अन्य कर्मचारी के साथ की जाती है। इस विधि के प्रत्येक निर्णय में सिर्फ दो व्यक्ति शामिल होगें। अतः कुल निर्णयों की संख्या का निर्धारण निम्न सूत्र से किया जाता है :–

तुलनाओं की संख्या $= N(N-1)/2$

उपरोक्त सूत्र में N का आशय तुलना की जाने वाली व्यक्तियों की संख्या से है। इन तुलनाओं के परिणामों के द्वारा साख वृद्धि किया जाता है जो कर्मचारी जितनी अधिक बार दूसरे कर्मचारियों से श्रेष्ठ समझा जाता है वह योग्यता क्रम में श्रेष्ठ होता है।

7.6.2 श्रेणीकरण :–

इस विधि में योग्यता की श्रेणियॉ पहले से तैयार कर उन्हें परिभाषित कर दिया जाता है। जो इस प्रकार हो सकती है – उत्कृष्ट, बहुत अच्छा, सन्तोषप्रद और असन्तोषप्रद। श्रेणियॉ निर्धारित करने के पश्चात् कर्मचारी योग्यता के विभिन्न घटको को ये श्रेणियॉ प्रदान की जाती है। यह विधि कृत्य मूल्यांकन में भी अपनायी जाती है।

7.6.3 व्यक्ति दर व्यक्ति तुलना :–

इस विधि का प्रयोग सेना द्वारा प्रथम विश्व युद्ध के दौरान किया गया। इसमें व्यक्ति की योग्यता को नेतृत्व, पहलपन, निर्भरता जैसे घटकों में विभाजित करके इनके आधार पर तुलना की जाती है। इन घटको की तुलना के लिए पैमाना विकसित किया जाता है जिसके आधार पर योग्यता अंकन किया जाता है। वह व्यक्ति जिसमें एक विशिष्टता (जैसे –पहलपन) अधिकतम हो पैमाने के उच्चतम सिरे के अंकन तथा वह जिसमें उस विशिष्टता का न्यूनतम अंश हो पैमाने के न्यूनतम सिरे का अंकन प्रदान किया जाता है। शेष व्यक्तियों को इस पैमाने के चरम बिन्दुओं के बीच में रखा जाता है। इसमें प्रत्येक विशिष्ट घटक की मात्राओं को परिभाषित करने के बजाय इन मात्राओं का प्रतिनिधित्व करने वाले विशिष्ट व्यक्तियों का प्रयोग किया जाता है। इसमें मूल्यांकनकर्ता अपने विचार के अनुसार यह पैमाना विकसित करता है।

इस तरह इस विधि में सम्पूर्ण व्यक्ति की सम्पूर्ण व्यक्ति से तुलना करने के बजाय प्रमुख घटकों के आधार पर सेविवर्गीयों की तुलना की जाती है। इस विधि का प्रयोग आजकल कृत्य मूल्यांकन में किया जाता है। इसे घटक तुलना प्रणाली के नाम से जाना जाता है। यह विधि व्यक्ति की विशिष्टताओं की अपेक्षा कृत्य के मूल्यांकन के लिए अधिक उपयुक्त है। विशिष्टताओं को लेकर अंकनकर्ताओं के अपने विचार हो सकते हैं। अतः इन योग्यता अंकनों की तुलना एक विभाग से दूसरे विभाग में नहीं हो सकती है।

7.6.4 बलात् वितरण विधि :–

मूल्यांकनकर्ताओं की अभिनति को कम करने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें सभी व्यक्ति श्रेष्ठतम या निकृष्टतम श्रेणी में नहीं रखे जा सकते हैं। इनमें मूल्यांकन कर्ता को एक श्रेणीकरण पूर्व निर्धारित करके दे दिया जाता है। इस पूर्व निर्धारित वितरण में से अपनी चयनित श्रेणी को ज्ञात करना पड़ता है।

इस पद्धति में एक पॉच विन्दु मापक को कर्मचारी का वर्गीकरण करने में प्रयुक्त किया जाता है। इस पद्धति में श्रेणीकरण का आधार इस प्रकार प्रति को पूरा प्रतिशत लिखे निश्चित किया जाता है 10 प्रतिशत बहुत अच्छे, 20 प्रतिशत अच्छे, 40 प्रतिशत सन्तोषप्रद, 20 प्रतिशत उत्तम तथा 10 प्रतिशत सामान्य से कम या असन्तोषप्रद। यह वितरण विधि इस मान्यता पर आधारित है कि कुल सेविवर्गीय में ऐसे 10 प्रतिशत प्रथम श्रेणी में, 20 प्रतिशत द्वितीय श्रेणी में, 40 प्रतिशत मध्य श्रेणी में, 20 प्रतिशत चतुर्थ श्रेणी में तथा 10 प्रतिशत निम्नतम श्रेणी में रखे जाने चाहिए।

7.6.5 आरेखीय क्रम निर्धारण मान :–

कर्मचारी मूल्यांकन में रेखीय पैमाना का सर्वाधिक उपयोग किया जाता है। इसमें कुछ निश्चित योग्यता घटकों के लिए रेखीय पैमाने का निर्धारण किया जाता है। यह विधि व्यक्ति दर व्यक्ति तुलना विधि से मिलती जुलती है। अन्तर सिर्फ यह है कि घटक पैमाने पर योग्यता को परिभाषाओं द्वारा प्रदर्शित किया जाता है I विशिष्ट व्यक्तियों द्वारा नहीं।

इस प्रकार इस विधि में कर्मचारी योग्यता अंकन के लिए कुछ घटकों को आधार बनाया जाता है। प्रत्येक घटक को कुछ पैमाने में विभक्ति कर दिया जाता है और प्रत्येक पैमाने स्तर को परिभाषित कर दिया जाता है।

रेखीय पैमाना में घटकों का चयन महत्वपूर्ण व आलोच्यपूर्ण है। इसके दो प्रकार हो सकते है – विशेषताएं– जैसे पहलपन और निर्धनता, योगदान जैसे कार्य की मात्रा व गुणवत्ता। चूँकि अनेक कार्य निष्पादन को वस्तुनिष्ठ रूप से मापा नहीं जा सकता इसलिए रेखीय पैमाने में विशेषताओं व योगदानों दोनों का उपयोग किया जाता है। इसमें योगदानों पर अधिक जोर दिया जाता है। इसमें उपयोग किए जाने वाले सामान्य घटक इस प्रकार है कार्य की मात्रा व गुणवत्ता सहयोग व्यक्तित्व, बहुविज्ञता, नेतृत्व, सुरक्षा, कार्यज्ञान, उपस्थित, निष्ठा, निर्भरता और पहलपन।

यह उपयोग में सरल व आसान विधि है। इसमें प्रत्येक कर्मचारी की अन्य कर्मचारियों के साथ तुलना की जा सकती है। लेकिन इसका दोष यह है कि इसमें कर्मचारी की एक कमी उसके दूसरे गुण की अधिकता से ढक जाती है। इसके अतिरिक्त इसमें उद्देश्यपरक मूल्यांकन न होने से पक्षपात होने की सम्भावना रहती है। इसमें घटकों तथा निष्पादन के बीच सम्बन्ध स्पष्ट नहीं है।

7.6.6 बलपूर्वक चुनाव वितरण :–

मूल्यांकन की अन्य विधियों का दोष यह है कि मूल्यांकनकर्ता मूल्यांकन करने में पक्षपात कर सकता है। यह पूर्वाग्रह से ग्रसित हो सकता है। इस विधि का विकास इस कमी को दूर करने के लिए किया गया है। इसमें मूल्यांकनकर्ता को समान मूल्य वाले कथनों में से किसी एक के चयन के लिए विवश किया जाता है। इस प्रकार सकारात्मक एवं नकारात्मक कथन चाहे मूल्यांकिती पर लागू होते है या नहीं किन्तु मूल्यांकक को इनमें से किसी एक कथन का चयन करना ही होता है। इस कथनों में से एक श्रेष्ठ निष्पादन से जुड़ा होता है और यह बात मूल्यांकनकर्ता से गोपनीय रखी जाती है। यह मूल्यांकन कुंजी वर्तमान कर्मचारियों का अध्ययन करके बनायी जाती है।

इस विधि का प्रमुख दोष यह है कि मूल्यांकन कुंजी को गुप्त रखना कठिन है। इससे कर्मचारी विकास के मामले में कोई सहायता नहीं मिलती है। इस विधि द्वारा मूल्यांकक या मूल्यांकिती कर्मचारी सुधार की आवश्यकता की दिशा का निर्धारण नहीं कर पाते हैं। इसमें मूल्यांकन की स्वतंत्रता समाप्त हो जाती है। उन्हें लगता है कि उन्हें वे निर्णय लेना है जो उन्हें नहीं लेने चाहिए। इसलिए इस विधि का उपयोग व्यापक रूप में नहीं किया जाता है।

7.6.7 संक्रमणीय प्रसंग विधि :–

इसके अन्तर्गत कर्मचारी की क्षमता का मूल्यांकन किसी विशेष घटना के आधार पर किया जाता है जिन्हें संक्रमणीय घटनाएं कहा जाता है। प्रत्येक कर्मचारी के व्यवहार में कुछ ऐसी विशेषताएं होती है जिनके कारण वह सफल या असफल हो जाता है तथा जिनकी पहचान कठिन परिस्थितियों में ही हो पाती है। संक्रमणीय घटनाएं निम्न पहलुओं से जुड़ी हो सकती है –

1. शारीरिक दशाएं
2. समन्वय की एकता
3. जॉच एवं निरीक्षण
4. कठिन गणनाएं, निर्णय तथा बुद्धि
5. यन्त्रों उपकरणों की जानकारी
6. उत्पादकता
7. विश्वसनीयता
8. प्रतिवेदन का सही प्रस्तुतीकरण
9. विभागीय आवश्यकताओं को महत्व देना
10. अन्य व्यक्तियों के साथ सहयोग
11. पहल करना
12. उत्तरदायित्व का निर्वाह करना।

इस विधि में पर्यवेक्षक के पास सभी घटनाओं का लिखित विवरण रहता है जो समय–समय पर सामयिक मूल्यांकन करते समय प्रयोग में लाया जाता है। कर्मचारियों को कार्य निष्पादन की दृष्टि में मूल्यांकित करना ही मूल्यांकन प्रणाली की सफलता की कुंजी होती है। अक्सर नीची श्रेणी प्राप्त व्यक्ति पदोन्नति के लिए सक्षम समझा जाता है क्योंकि विषम परिस्थितियों में वह संगठन को कठिनाई से बचाता है। इस प्रकार इस पद्धति द्वारा व्यक्ति की निष्पक्ष परख होती है परन्तु कर्मचारी का सही मूल्यांकन न हो पाना इस प्रणाली का मुख्य दोष है।

7.6.8 जॉच सूची :–

इस विधि में मूल्यांकनकर्ता कर्मचारी निष्पादन का मूल्यांकन नहीं करता, बल्कि एक प्रतिवेदन कार्य के बारे में प्रस्तुत करता है। यह प्रतिवेदन कर्मचारी के कार्य व्यवहार के सम्बन्ध में होता है। इसके आधार पर सेविवर्गीय विभाग उस कर्मचारी का मूल्यांकन करता है।

इसमें कर्मचारी और उसके व्यवहार के बारे में अनेक प्रश्न होते है। मूल्यांकनकर्ता प्रश्नों का उत्तर कर्मचारी की योग्यता को ध्यान में रखते हुए हॉ या नहीं में देता है। इन प्रश्नों को भारंकित किया जा सकता है। इससे प्रत्येक गुण को पृथक–पृथक महत्व मिल सकता है। इसके अतिरिक्त इसमें एक ही गुण का मूल्यांकन करने के लिए भिन्न–भिन्न रूपों में प्रश्न दिए जा सकते हैं ताकि मूल्यांकनकर्ता के पक्षपात या उसकी गलती का मूल्यांकन पर प्रतिकूल प्रभाव न हो।

इस विधि का लाभ यह है कि इसमें व्यक्तिपरकता की मात्रा कम होती है। व्यक्तिगत पक्षपात कम किया जा सकता है। इस विधि का मुख्य दोष यह हे कि कर्मचारी की विशेषताओं व योगदानों के बारे में दिए गये कथनों का विश्लेषण करना व उन्हें भार देना दुष्कर कार्य है। इसके अतिरिक्त कर्मचारियों के प्रत्येक गुण की पारस्परिक तुलना नहीं की जा सकती है।

7.6.9 उपलब्धियों के अनुसार मूल्यांकन :–

यह निष्पादन मूल्यांकन की आधुनिकतम विधि है। इस विधि में पूर्व निर्धारित उद्देश्यों के अनुसार अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य का प्रबन्धकों द्वारा मूल्यांकन किया जाता है। इसमें श्रमिक का

कार्य के प्रति व्यवहार रुचि का अध्ययन भी किया जाता है। मूल्यांकन से प्राप्त निर्णय कार्य अवलोकन तथा निष्पादन पर आधारित होते हैं न कि वरिष्ठ अधिकारियों की सलाह पर । इसके प्रमुख तत्व निम्न है :–

1. कार्य तथा उत्तरदायित्व का निर्धारण वरिष्ठ अधिकारी तथा कर्मचारी मिलकर करते हैं। सम्भावित उपलब्धियों का अनुमान लगाते हुए वे मुख्य उत्तरदायित्व का निर्धारण वरिष्ठ अधिकारी तथा कर्मचारी मिलकर करते हैं। सम्भावित उपलब्धियों का अनुमान लगाते हुए वे मुख्य उत्तरदायित्व तथा कार्य के जटिल स्तरों का निर्धारण करते हैं।
2. अधीनस्थ कर्मचारी अपने लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का निर्धारण पहले से एक वर्ष या छः माह के लिए करते हैं। तत्पश्चात् नियोजन के समय पर्यवेक्षक के साथ विचार–विमर्श कर उसमें आवश्यक संशोधन करते हैं। इस प्रकार संयुक्त रूप से लिये गये निर्णयों के अनुसार कार्य किया जाता है।
3. आपसी विचार–विमर्श द्वारा वे अधिक ठोस निर्णय लेने में समर्थ होते हैं।
4. पर्यवेक्षक कार्य निष्पादन के उपरान्त कर्मचारियों के कार्य का मूल्यांकन करता है तथा उसकी पूर्व निर्धारित लक्ष्यों से तुलना करता है।
5. पर्यवेक्षक पुनरावलोकन साक्षात्कार में उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत करता है तथा मूल्यांकन के समय अधीनस्थ कर्मचारी के साथ विचार–विमर्श करता है। इस समय लक्ष्यों, उद्देश्यों तथा कार्यविधियों में आवश्यक सुधार किया जाता है।
6. मूल्यांकन में व्यक्तिगत गुणों तथा निष्पादन उपलब्धियों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता वरन् कर्मचारी को सामान्य उपलब्धियों का विवेचन किया जाता है।

उपलब्धियों के अनुसार मूल्यांकन को सोद्देश्य प्रबन्ध तथा उपलब्धियों के अनुसार प्रबन्ध भी कहा जाता है।

7.7 निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम की विशेषताए ं

- सहयोग प्राप्ति
- सरलता
- सूचना
- समन्वय
- सामयिक विचार विमर्श
- पुनः अवलोकन

7.8 निष्पादन मूल्यांकन के गुण

- पारितोषक एवं दण्ड की प्रक्रिया में सहायक
- पदोन्नति योग्य कर्मचारियों की जानकारी
- भावी प्रशिक्षण विकास की सम्भावनाओं का ज्ञान
- उत्तम तथा प्रभवशाली पर्यवेक्षण
- कर्मचारी का आत्म विकास
- कर्मचारी मनोबल बनाये रखने में सहायक

- योग्य एवं महत्वाकांक्षी व्यक्तियों के लिए आकर्षण

7.9 निष्पादन मूल्यांकन के दोष

- निष्पादन मूल्यांकन में आवश्यक धन तथा समय नष्ट होता है।
- मूल्यांकन का कर्मचारियों की विपरीत मनोदशा पर प्रभाव पड़ता हैं
- मूल्यांकन के समय उसके कार्य का जोश कम रहता है। मूल्यांकन के परिणामों की अनिश्चितता के कारण उनके मन में घबराहट रहती है और वे अपने कार्य पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते हैं।
- कर्मचारियों का निष्पक्ष मूल्यांकन सरल कार्य नहीं है। मूल्यांकन में व्यक्तिगत पक्षपात की सदैव गुंजाइश रहती है और इसका यथार्थपरक होना संदिग्ध रहता है।
- जब मूल्यांकन एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो विचार भिन्नता के कारण मूल्यांकन भी भिन्न–भिन्न हो सकता है।
- ऐसे व्यक्ति जो योग्यता के आधार पर श्रेष्ठ पाये जाते हैं वे तुरन्त पदोन्नति की मॉग करने लगते हैं। पदोन्नति न मिलने पर उनके हृदय में कुण्ठाये जन्म लेने लगती हैं।
- निष्पादन मूल्यांकन के आधार पर पदोन्नति की व्यवस्था से वरिष्ठता का महत्व कम हो जाता है और यह भी कर्मचारी असन्तोष का कारण सिद्ध होता है।

7.10 क्षमता मूल्यांकन

परिणाम को प्राप्त करने के लिए किये गये वर्तमान निष्पादन का पदोन्नति की क्षमता से सम्बन्धित नहीं किया जा सकता है। निष्पादन मूल्यांकन प्रक्रिया कर्मचारी की वास्तविक स्थिति को सही रूप में व्यक्त करने में सक्षम नहीं होती है। क्षमता मूल्यांकन का उद्देश्य कर्मचारी की किसी अधिक महत्वपूर्ण कार्य को करने की योग्यता का अनुमान लगाना होता है। क्षमता मूल्यांकन निम्न कारणों से आवश्यक होता है :–

- भविष्य की संभावनाओं के बारे में कर्मचारी को सूचित करना।
- प्रबन्ध उत्तराधिकार योजना को बनाने में संगठन को सक्षम बनाना।
- प्रशिक्षण एवं नियुक्ति कार्यक्रम को आधुनिक बनाना।
- कर्मचारियों को वृत्ति सम्भावनाओं को बढ़ाने के बारे में सलाह देना।

क्षमता मूल्यांकन का लक्ष्य कर्मचारियों की योग्यता एवं आकांक्षा को संगठन की आवश्यकता के अनुरूप बनाना है। उच्चस्थ अधिकारियों की एक मूलभूत समस्या यह है कि वे अपने अधीनस्थों का आकलन उनकी कार्य क्षमता के आधार पर न करके उनके द्वारा प्राप्त सफलताओं के आधार पर करते हैं। क्षमता मूल्यांकन का एक नकारात्मक पक्ष यह है कि यह कर्मचारियों के मनोबल को गिरा देता है। अतः यह मूल्यांकन गुप्त रखना चाहिए।

7.11 सारांश

संगठनों की सफलता उसके कर्मचारियों द्वारा किये गये कार्यो पर निर्भर करती है। इसके द्वारा कर्मचारी के निष्पादित कार्य की गुणवत्ता को परखा जाता है तथा संगठनों के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को सफलतापूर्वक एवं प्रभावपूर्ण ढंग से प्राप्त किया जाता है। निष्पादन मूल्यांकन के द्वारा कर्मचारी प्रशिक्षण की नवीन एवं परिवर्तित आवश्यकताओं का पता लगाकर उनकी पदोन्नति एवं

स्थानान्तरण के आधार सुनिश्चित किये जाते हैं। निष्पादन मूल्यांकन के अनेक प्रकार होते हैं जिनमें आकस्मिक, अनियोजित तथा विश्रृंखला, पारस्परिक तथा सुनियोजित एवं व्यवहार प्रणाली प्रमुख है। निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम के चरण के अन्तर्गत कार्य एवं उत्तरदायित्वों का विश्लेषण कर कार्य निष्पादन के प्रमाप निर्धारित करना तथा कार्य निष्पादन का पर्यवेक्षण आदि सम्मिलित होता है।

कर्मचारियों के निष्पादन के मूल्यांकन करने की अनेक विधियॉ प्रचलित हैं। कर्मचारियों की निष्पादन योग्यता को ऑकने में विभिन्न प्रचलित विधियों का प्रयोग कार्य की प्रकृति एवं अन्य आधारों पर किया जाता है। इसके अन्तर्गत जहॉ कुछ प्राचीन विधियॉ पूर्वाग्रहों से ग्रस्त पायी जाती हैं वहीं कुछ आधुनिक विधियॉ अधिक न्याय संगत एवं तर्क पर आधारित है। इसके साथ ही कर्मचारी की क्षमता का ऑकलन भी संगठनों के द्वारा किया जाता है। इसका लक्ष्य कर्मचारियों की योग्यता एवं आकांक्षा को संगठन की आवश्यकता के अनुरूप बनाना है।

7.12 शब्दावली

निष्पादन मूल्यांकनः यह किसी व्यक्ति के कार्य निष्पादन और उसके विकास के लिए क्षमता का प्रणालीकृत मूल्यांकन है।

क्षमता मूल्यांकनः इसका उद्देश्य कर्मचारी की किसी अधिक महत्वपूर्ण कार्य को करने की योग्यता का अनुमान लगाना होता है।

7.13 बोध प्रश्न

1. किसी भी संगठन की सफलता उसके कर्मचारियों द्वारा .... कार्यो पर निर्भर करती है।
2. .... प्रणाली में प्रबन्ध एवं कर्मचारी सम्मिलित रूप से लक्ष्यों का निर्धारण करते है जिसमें पर्यवेक्षक सर्वेसर्वा होता है।
3. .... विधि में एक व्यक्ति की तुलना सीधे दूसरे व्यक्ति से की जाती है। व्यक्ति को क्रम उसकी योग्यता के आधार पर दिया जाता है।
4. .... विधि मूल्यांकनकर्ताओं की अभिनति को कम करने के लिए इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

7.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. निष्पादित, 2. व्यवहार, 3. सीधी क्रम, 4. बलात् वितरण

7.15 स्वपरख प्रश्न

प्र0 1 निष्पादन मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं ? निष्पादन मूल्यांकन के प्रकारों का वर्णन करें।

प्र0 2 निष्पादन मूल्यांकन कार्यक्रम के प्रमुख चरणों को बताये तथा इसके गुण दोषों का वर्णन करें।

प्र0 3 निष्पादन मूल्यांकन के प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन करें तथा किसी एक विधि का वर्णन करें।

प्र0 4 कार्मिक निष्पादन मूल्यांकन के महत्व का वर्णन कीजिए।

प्र0 5 कार्मिक के मूल्यांकन के प्रमुख मुद्दे क्या हैं ?

7.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. योडर, डेल – पर्सनेल मैनेजमेन्ट एण्ड इन्डस्ट्रियल रिलेशन्स प्रिन्टिस हाल, नई दिल्ली–1980
2. मैक्ग्रेमर डगलस – द ह्यूमन साइड ऑफ इन्टरप्राइस, मैग्राहिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क–1964
3. फिलप्पो एडविन बी0 पर्सनल मैनेजमेन्ट, मेक्ग्राहिल, टोक्यो – 1981

इकाई 8 वृत्ति नियोजन एवं विकास (Career Planning & Development)

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 वृत्ति नियोजन एवं विकास
8.3 वृत्ति नियोजन का महत्व
8.4. वृत्ति नियोजन एवं विकास के तत्व
8.5 वृत्ति नियोजन एवं विकास के उद्देश्य
8.6 वृत्ति नियोजन के लाभ
8..7 करियर के चरण
8.7.1 अन्वेषण
8.7.2. स्थापना
8.7.3 मध्य–वृत्ति
8.7.4 देर वृत्ति
8.7.5 क्षरण
8.8 करियर एंकर
8.9 वृत्ति योजना
8.10 वृत्ति विकास
8.11 बाह्य गतिशीलता बनाम आन्तरिक गतिशीलता
8.11.1 आन्तरिक गतिशीलता की आवश्यकता
8.11.2 बाह्य गतिशीलता
8.12 सारांश
8.13 शब्दावली
8.14 बोध प्रश्न
8.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
8.16 स्वपरख प्रश्न
8.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उददेश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- वृत्ति नियोजन एवं विकास का अर्थ समझ सकें।
- वृत्ति नियोजन एवं विकास के तत्व को समझ सकें।
- वृत्ति नियोजन के लाभो को समझ सकें।
- करियर के चरणो की स्थिति जान सकें।

8.1 प्रस्तावना

संगठनात्मक विकास, उच्च उत्पादकता तथा कार्पोरेट उद्देश्यों की प्राप्ति तभी प्राप्त की जा सकती है जब संगठन में कार्यरत कर्मचारी उपलब्धि प्राप्त करे एवं संतुष्टि का अनुभव करे या अपने आप को संगठन का अहम् एवं अभिन्न अंग समझे। सामान्यतः संगठन में कार्यरत कर्मचारियों में आगे

बढ़ने की इच्छा पायी जाती है तथा उच्च एवं संतुष्टि दायक निष्पादन की अभिलाषा रहती है। एक संगठन में प्राण एवं शक्ति का संचार होता है जब उसके कर्मचारी वित्तीय लाभों के अतिरिक्त मानसिक एवं भावनात्मक संतुष्टि के लिए व्यग्र होते है। उपरोक्त सभी को प्राप्त करने हेतु वृत्ति नियोजन एक सर्वश्रेष्ठ साधन है।

8.2 वृत्ति नियोजन एवं विकास (Career Planning and Development)

वृत्ति नियोजन का सामान्यतः अर्थ है कि संगठन के कर्मचारी अपनी क्षमताओं के अनुसार अपने वृत्ति (Career) का नियोजन संगठनात्मक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में करते है। वृत्ति नियोजन के बारे में कहा जा सकता है कि यह ''किसी कर्मचारी के संगठन में नियुक्ति से सेवा निवृत्ति के बीच वृत्ति (Career) की दिशा एवं वृद्धि के अवसर उपलब्ध कराने की प्रक्रिया है।'' वृत्ति नियोजन एकं प्रबंधकीय तकनीक है जिसमें युवा कर्मचारियों के वृत्ति को माप कर उनको उच्च कौशल, पर्यवेक्षण एवं प्रबंधकीय पदों का रचायित किया जाता है। इस प्रकार यह प्रतिभा की खोज एवं विकास तथा उनकी नियोजित तैनाती एवं पुर्नतैनाती होती है। यह तैनाती एवं पुर्नतैनाती संगठन की आवश्यकता एवं कर्मचारी की उपयुक्तता के अनुसार सुनिश्चित की जाती है।

8.3 वृत्ति नियोजन का महत्त्व (Imprtance of Career Planning)

वृत्ति नियोजन कर्मचारियों एवं संगठनों दोनो ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होता है। कर्मचारियों की दृष्टि से देखा जाय तो उन्हे पता होना चाहिए कि अमुक योग्यता कौशल एवं प्रतिभा के द्वारा वे संगठन में कहाँ तक अपनी वृद्धि सुनिश्चित कर सकते है तथा क्या वर्तमान संगठन उसके निजी उद्देश्यों एवं लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायक होगा अथवा नहीं। यदि कर्मचारी को यह विश्वास होता है कि वह संगठन में अपने उद्देश्यों की पूर्ति करने में सफल होगा तो वह संगठन के कार्यो को अत्यन्त तन्मयता के साथ करेगा तथा संगठन के चतुर्दिक विकास में अथवा अद्वितीय योगदान करेगा।

संगठन के दृष्टि से देखे तो वृत्ति नियोजन इस प्रकार सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि कर्मचारियों को पद एवं उसमें वृद्धि उनकी योग्यता, कौशल, चातुर्य एवं अनुभव को दृष्टि में रखकर की जानी चाहिए। कर्मचारियों में यह बिना किसी भेदभाव के किया जाना चाहिए। ऐसा करने से योग्य एवं कौशलयुक्त कर्मचारी संगठन में बना रहता है एवं संगठन के विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है अन्यथा वह किसी दूसरे संगठन की तरफ देखता है। इस प्रकार संगठन के कर्मचारी अभिप्रेरित एवं बफादार बने रहते है एवं संगठन की दीर्घकालीन प्रगति के साझेदार बनते है।

8.4. वृत्ति नियोजन एवं विकास के तत्व (Features of Career Planning & Development)

वृत्ति नियोजन विकास के तत्व निम्नलिखित है–

- यह एक सतत् प्रक्रिया है।
- यह संगठन के विभिन्न कार्यो के सम्पादन हेतु आवश्यक कौशल के विकास में सहायता प्रदान करती है।
- यह संगठन में कार्य से सम्बन्धित गतिविधियों को मजबूत करता है।
- यह कर्मचारियों के जीवन, वृत्ति, योग्यताओं एवं रुचि को प्रदर्शित करता है।
- यह वृत्ति को व्यावसायिक दिशा प्रदान करता है।

8.5 वृत्ति नियोजन एवं विकास के उद्देश्य (Objectives of Career Planning & Development)

वृत्ति नियोजन एवं विकास के निम्नलिखित उद्देश्य है–

- कर्मचारियों की सकारातमक विशेषताओं की पहचान करना।
- प्रत्येक कर्मचारी की विशिष्टता के विषय में जागरुकता का विकास करना।
- अन्य कर्मचारियों की भावनाओं का सम्मान करना।
- प्रतिभावान कर्मचारियों को संगठन की ओर आकर्षित करना।
- कर्मचारियों को टीम निर्माण कौशल में प्रशिक्षित करना।
- विवाद, भावनाओं एवं तनाव को दूर करने के स्वस्थ तरीके का निर्माण करना।

8.6 वृत्ति नियोजन के लाभ (Benefits of Career Planning)

वृत्ति नियोजन संगठनों के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण होता है। इसके लाभ निम्नलिखित है–

- वृत्ति नियोजन प्रमोशन योग्य कर्मचारियों की सतत् आपूर्ति बनाये रखता है।
- यह कर्मचारियों की स्वामीभक्ति को बनाये रखता है।
- वृत्ति नियोजन कर्मचारियों की वृद्धि एवं विकास को प्रोत्साहित करता है।
- यह उच्च अधिकारियों के उस नकारात्मक दृष्टिकोण को हतोत्साहित करता है जिसमें वे अधीनस्थों की वृद्धि को दबाने का प्रयास करते है।
- यह सुनिश्चित करता है कि वरिष्ठ प्रबन्ध ऊपर की ओर गतिमान कर्मचारियों के बुद्धि का विस्तार एवं क्षमता को जानते है।
- यह एक ऐसे दल को तैयार करता है जो किसी भी आवश्यकता के लिए तैयार रहते है।
- प्रत्येक संगठन द्वारा तैयार किये जाने वाले उत्तराधिकारी नियोजन में वृत्ति नियोजन पहला कदम होता है।

8.7 करियर के चरण (Stages of Career)

वृत्ति चरण के आधार पर वृत्ति का विश्लेषण किया जा सकता है। वृत्ति के पाँच चरण होते है जिससे सामान्यतः हम गुजरते है या गुजरेंगे। इन चरणों में सम्मिलित है– अन्वेषण, स्थापना, मध्य वृत्ति, देर वृत्ति एवं क्षरण।

8.7.1 अन्वेषण (Explotatory Stage) – वृत्ति का यह चरण नये कर्मचारी द्वारा संगठन में प्रवेश के साथ प्रारम्भ होता है, परन्तु उसे सदमा लगता है जब वह देखता है कि आदर्श संगठन एवं वास्तविक संगठन में बड़ा अन्तर है। वह महसूस करता है कि न तो उसकी विश्वविद्यालय की शिक्षा एवं न ही कार्य परिचय कार्यक्रम उसकी जाँब की आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूर्णतया सक्षम है। इस चरण में कर्मचारी सामान्यतः कम उम्र का एवं ऊर्जावान होता है। यदि उसको कार्य संतुष्टि नही होती है तो वह दूसरे संगठन में जाने का प्रयास करता है, तथा संतुष्ट कर्मचारी बहुत तेजी से सीखता है एवं संगठन की कार्य संस्कृति पर अपना प्रभाव छोड़ता है।

8.7.2 स्थापना (Establishment) – अन्वेषण चरण की समाप्ति के पश्चात कर्मचारी स्थिर होने लगता है तथा वह किसी निश्चित क्षेत्र एवं कार्य में विशिष्टीकरण प्राप्त करने लगता है। इस चरण में

कर्मचारी संगठन में अपने आपको स्थापित करता है तथा संतुष्टि एवं विकास को अपने कार्य में देखना प्रारम्भ कर देता है। इस चरण में कर्मचारी को अपने द्वारा सम्पादित कार्यो की प्रतिपुष्टि प्राप्त होने लगती है जिसे वह और सुदृढ़ एवं सकारात्मक करने लगता है। इसमे समान्यतः कर्मचारी का निष्पादन बढ़ता है।

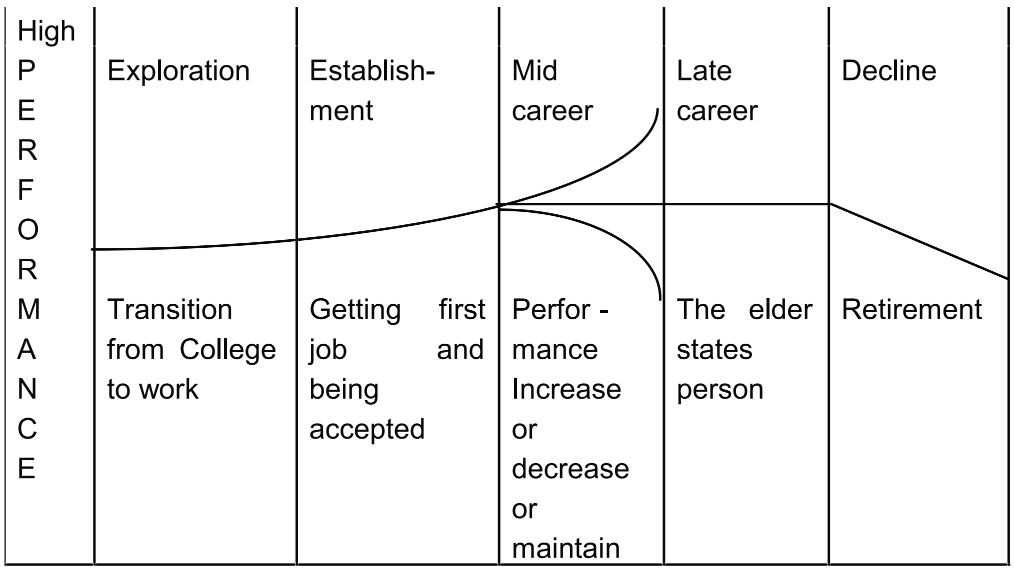

Exhibit - Stages in Career Development
Source: D.E. Super and D.T. Hall, Career development, Annual review of Psychology.

8.7.3 मध्य–वृत्ति (Mid Carreer) – इस चरण में कर्मचारी का निष्पादन बढ़ भी जाता है एवं घट भी जाता तथा स्थिर भी रहता है। इस चरण में कर्मचारी के पास पर्याप्त अनुभव रहता है तथा यदि वह पर्यावरण के साथ सामंजस्य बिठाने में सक्षम होता है तो वह प्रगति के पथ पर बढ़ जाता है अन्यथा वह स्थिर हो जाता है अथवा नकारात्मक हो जाता है यह व्यक्ति की प्रकृति एवं उनके अन्य गुणों पर निर्भर करता है।

8.7.4 देर वृत्ति (Late Career) – इस चरण में कर्मचारी पर अन्य पर्यावरणीय तत्वों का प्रभाव बढ़ जाता है तथा उसका निष्पादन स्थिर हो जाता है। उसकी मानसिक एवं शारीरिक स्थिति भी कमजोर पड़ने लगती है अतः वह नयी तकनीकियों एवं कार्य पद्धतियों के साथ सामंजस्य नहीं बिठा पाता है। इस प्रकार उसका कार्य निष्पादन स्थिर हो जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें उत्साह एवं अभिप्रेरणा की कमी दिखाई देने लगती है।

8.7.5. क्षरण (Decline) – वृत्ति के इस आखिरी चरण में कर्मचारियों का निष्पादन गिरने लगता है। उनको सेवानिवृत्ति का डर सताने लगता है। वे बचे हुए समय को काटने की प्रवृत्ति से काम करने लगते है तथा काम में जोखिम नही लेते है। इसके अतिरिक्त पारिवारिक दायित्व भी लोगों को ऐसा करने को मजबूर करते है। अनेक संगठन अपने सेवानिवृत्ति हो रहे कर्मचारियों को प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करते है। उनको यह एहसास कराने का प्रयत्न किया जाता है कि सेवा निवृत्ति जीवन का एक अवश्यम्भावी क्रिया है परन्तु जीवन का अन्त नहीं है।

8.8 करियर एंकर (Career Anchor)

आधुनिक संगठनात्मक मनोविज्ञान के संस्थापकों में से एक के रूप में प्रख्यात एडगर स्जिन ने सुझाव दिया कि हममें से प्रत्येक का किसी एक कार्य के प्रति एक विशिष्ट अभिविन्यास होता है और हम सभी प्राथमिकता एवं मूल्यों के एक निश्चित सेट के साथ कार्य सम्पादन करते हैं। वह इस अवधारणा को करियर एंकर कहते हैं। एक करियर एंकर पेशेवर काम विकल्पों से संबंधित दृष्ट योग्यताओं, उद्देश्यों और मूल्यों के कथित क्षेत्रों का संयोजन है। अक्सर लोग करियर का चुनाव एकदम गलत कारणों से करते हैं एवं कार्यस्थल पर उनकी प्रतिक्रिया उनके वास्तविक मूल्यों से असंगत पायी जाती है। यह स्थिति अशांन्ति एवं असंतोष की भावना को जन्म देती है, जिसके परिणामस्वरूप उत्पादकता में कमी देखी जाती है। लोगों को इस प्रकार की समस्याओं से बचने में मदद करने के लिए करियर एंकर उनके वास्तविक मूल्यों को उजागर करने में सहायता करते हैं एवं उनको बेहतर करियर विकल्प चुनने में उनका उपयोग करते हैं।

करियर एंकर में प्रतिभाओं, उद्देश्यों, मूल्यों और व्यवहारों को सम्मिलित किया जाता है, जो किसी व्यक्ति के करियर को स्थिरता और दिशा प्रदान करते हैं। यह उस व्यक्ति के अभिप्रेरक या चालक है। एक करियर एंकर आप की स्वअवधारणा में एक तत्व है जिससे कि आप मुश्किल विकल्पों की स्थिति में भी हार नहीं मानेंगें।

8.9 वृत्ति योजना (Career Planning)

वृत्ति योजना एक सतत् प्रक्रिया है जो लोगों को सीखने और विकास को प्रबन्धित करने में उनकी सहायता करती है। सामान्यतः वृत्ति नियोजन प्रक्रिया में चार चरण पाये जाते हैं :–

1. खुद को जानना
2. खोजना
3. निर्णय लेना
4. कार्यवाही करना

1. खुद को जानना :–

करियर नियोजन का प्रथम चरण है खुद को जानना। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण है क्योंकि कोई भी व्यक्ति यदि खुद को सही अर्थो में अच्छी तरह से जान लेगा तो उसकी अधिकांश समस्याएं वहीं समाप्त हो जाती है। इसके अन्तर्गत सर्वप्रथम व्यक्ति को यह जानना होता है कि वह कहॉ है अर्थात् उसकी वर्तमान स्थिति क्या है ? इसके पश्चात् वह जहॉ जाना चाहता है वहॉ पहुॅचने के रास्ते खोजता है। वह यह जानने का प्रयास करता है कि नौकरी या करियर में वह कहॉ तथा क्या चाहता है। इसके पश्चात् वह उस अभीष्ट को पाने का प्रयत्न करता है। इस अभीष्ट की प्राप्ति के साथ ही उसे अपनी पसंद, ताकत तथा उसके लिए क्या महत्वपूर्ण है यह जानना आवश्यक होता है। यह इसलिए आवश्यक है क्योंकि यदि व्यक्ति का लक्ष्य उसकी ताकत, पसंद एवं व्यक्तिगत वरीयताओं के अनुसार होगा तो वह अधिक सुविधापूर्वक एवं प्रभावी ढंग से लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होगा। इस प्रकार खुद को जितना अच्छी तरह से कोई व्यक्ति अपने आपको जान पायेगा उतनी ही अच्छी तरह से वह अपने करियर नियोजन को अंजाम दे पायेगा।

2. खोजना :–

प्रथम चरण में स्वयं को भलीभॉति जानने के पश्चात् द्वितीय चरण में व्यक्ति अपनी ताकत एवं पसंद के व्यवसायों तथा सीखने के क्षेत्रों की पहचान करता है। इसके अन्तर्गत व्यक्ति व्यवसाय

हेतु आवश्यक विशिष्ट कौशल एवं योग्यता की खोज करता है। इस चरण में उन व्यवसायों का अन्वेषण करें जो आप में दिलचस्पी रखते हैं। इसमें व्यक्ति द्वारा धारित योग्यता एवं कार्य के लिए आवश्यक योग्यता के अन्तराल का पता लगाया जाता है। इस अन्तराल को भरने के लिए व्यवसाय के पास उपलब्ध विकल्पों की भी तलाश की जाती है। इस चरण में व्यक्ति के लिए आवश्यक कौशल एवं उसकी आवश्यकता किस स्थान पर है, सुनिश्चित किया जाता है। इस चरण की समाप्ति पर व्यक्ति के सम्मुख पसंदीदा व्यवसायों या सीखने के विकल्प की एक सूची होती हैं।

3. निर्णय लेना :–

यह अत्यन्त महत्वपूर्ण चरण होता है, जिसके अन्तर्गत व्यक्ति निर्णय लेता है। यह निर्णय की प्रक्रिया अत्यन्त जटिल एवं संवेदनशील होती है। व्यक्ति उपलब्ध विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ विकल्प का चुनाव करता है जिससे उसका वृत्ति सर्वोत्तम रूप से प्रगति के पथ पर अग्रसर हो सके एवं व्यक्ति अपने वृत्ति चयन से जीवन भर संतुष्ट नजर आये। कभी–कभी ऐसा लगता है कि सर्वश्रेष्ठ निर्णय लिया जा रहा है परन्तु वह निर्णय गलत साबित होता है एवं व्यक्ति का करियर संघर्ष करता है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में व्यक्ति अनेक तत्वों का विश्लेषण करता है एवं उसके आधार पर निर्णयन की प्रक्रिया को सम्पादित करता है। यद्यपि कि निर्णय लेने की इस प्रक्रिया में वातावरण एवं परिस्थितियों का अहम् योगदान होता है जिनके आलोक में व्यक्ति का निर्णय प्रभावित होता है। कई बार निर्णय दबाव में लिए जाते हैं जो कि निर्णय की प्रक्रिया के लिए सही नहीं होते हैं।

4. कार्यवाही करना :–

इस चरण के अन्तर्गत व्यक्ति अन्ततः अपनी कार्य योजना को मूर्त रूप प्रदान करता है तथा अपने वृत्ति नियोजन को आखिरी अन्जाम तक पहुॅचाता है। एक बार निर्णय लेने के पश्चात् वृत्ति योजना को उसी रूप में कार्यवाही करना अत्यन्त दुष्कर कार्य होता है। इस चरण में अनेक प्रायोगिक समस्यायें सम्मुख उपस्थित होती है, जिससे व्यक्ति निर्णय के अनुसार कार्यवाही करने में मुश्किलों का सामना करता है।

8.10 वृत्ति विकास (Career Development)

वृत्ति/करियर विकास एक निरन्तर प्रक्रिया है जो वृति नियोजन को लागू करने के लिए आवश्यक है। वृत्ति विकास के अन्तर्गत व्यक्तिगत विकास व्यक्गित कर्मचारियों द्वारा तथा प्रशिक्षण, विकास एवं शैक्षणिक कार्यक्रम संस्थाओ तथा विभिन्न संगठनों द्वारा प्रदान किये जाते हैं। वृत्ति विकास की सबसे महत्वपूर्ण बात होती है कि सभी लोगों को अपने विकास की जिम्मेदारी स्वयं निर्वहन करनी होती है। वृत्ति विकास की क्रियाएं तभी सार्थक होती हैं जब एक कर्मचारी वृत्ति विकास के लिए समर्पित होता है।

वृत्ति विकास की क्रियाएं निम्न है :–

1. कार्य निष्पादन
2. अनावरण
3. त्याग–पत्र
4. कार्य बदलना
5. वृत्ति दिशा–निर्देश

इस प्रकार उपरोक्त क्रियाएं कर्मचारियों की दो तरह की गतिशीलता होती है जो वृत्ति विकास को सुनिश्चित करती है। यह आन्तरिक गतिशीलता एवं बाह्य गतिशीलता होती है।

8.11 बाह्य गतिशीलता बनाम आन्तरिक गतिशीलता

विभिन्न स्रंगठनों की आवश्यकता तथा कर्मचारी के कौशल के आधार पर कर्मचारी का एक संगठन से दूसरे संगठन की ओर गति बाह्य गतिशीलता कहलाती है। जब एक संगठन के अन्दर व्यक्ति को बेहतर अवसर नहीं उपलब्ध होते हैं तो वह बाह्य गतिशीलता करता है। एक कर्मचारी आन्तरिक गतिशीलता को बहुत अधिक वरीयता देता है। इसी प्रकार संगठनों में भी आन्तरिक गतिशीलता को वरीयता प्रदान की जाती है।

8.11.1 आन्तरिक गतिशीलता की आवश्यकता (Need for Internal Mobility)

सामान्यतः किसी कर्मचारी का कौशल एवं संगठन की मॉग दोनों में मिलान आवश्यक होता है। आन्तरिक गतिशीलता की आवश्यकता निम्न कारणों से होती है :–

1. कार्य संरचना, कार्य अभिकल्प एवं कार्य समूहीकरण में परिवर्तन।
2. तकनीकी एवं मशीनीकरण में परिवर्तन।
3. उत्पादन के विस्तार एवं विविधीकरण।
4. कर्मचारियों के ज्ञान, कौशल, योग्यता तथा मूल्यों आदि में परिवर्तन।
5. अपने सदस्यों के हितों के संरक्षण हेतु परिवर्तित मॉग।
6. मानव संसाधन प्रबन्ध में सरकार की बदलती भूमिका।
7. राष्ट्रीय आर्थिक एवं व्यवसायिक दौर तथा उनका कार्य अभिकल्प एवं मॉग पर प्रभाव।
8. अन्तरवैयक्तिक सम्बन्धों तथा मजबूत मानव सम्बन्धों की समस्या को बनाये रखने हेतु।
9. भौतिक विस्तार एवं विविधीकरण हेतु।
10. क्षेत्र के कर्मचारियों की सामाजिक एवं धार्मिक दशा

आन्तरिक गतिशीलता के प्रयोजन (Purpose of Internal Mobility)

आन्तरिक गतिशीलता के प्रयोजन निम्नलिखित हैं :–

1. संगठन की प्रभावशीलता में वृद्धि।
2. कर्मचारी निपुणता को अधिकतम करना।
3. अनुशासन सुनिश्चित करना।
4. संगठनात्मक परिवर्तनों को आत्मसात् करना।

आन्तरिक गतिशीलता तीन प्रकार की होती है :–

1. पदोन्नति
2. पदावनति
3. स्थानान्तरण

1. पदोन्नति (Promotion)

किसी संगठन में रिक्त पद को भरने के दो तरीके होते हैं। वे या तो आन्तरिक कर्मचारियों द्वारा भरे जाये या बाह्य व्यक्तियों द्वारा भरे जाय। यद्यपि कि संगठन बाह्य व्यक्तियों को चयन प्रक्रिया द्वारा चयनित करने को वरीयता प्रदान करते हैं। इस प्रक्रिया में आन्तरिक कर्मचारी भी आवेदन कर सकते हैं। परन्तु आन्तरिक कर्मचारी के चयन होने को पदोन्नति नहीं कहा जा सकता है। जब संगठन रिक्त पद हेतु केवल आन्तरिक कर्मचारियों को ही चयनित करता है तो इस प्रकार के उर्ध्वगतिशीलता को पदोन्नति कहते हैं। पदोन्नति की दशा में –

- कर्मचारी को उच्च स्तर के कार्य हेतु नामित किया जाता है जो वह पूर्व में कर रहा था।

- कर्मचारी को पहले से अधिक अधिकार एवं उत्तरदायित्व प्रदान किये जाते हैं।
- पदोन्नति में सामान्यतः कर्मचारी को अधिक वेतन का लाभ प्राप्त होता है।

कभी–कभी कर्मचारी पहलें से उच्च स्तर के कार्यो का निष्पादन करते हैं, परन्तु उन्हें वेतन वहीं मिलता रहता है।

पदोन्नति के उद्देश्य (Purpose of Promotion)

किसी संगठन में कर्मचारियों की पदोन्नति निम्न उद्देश्यों से की जाती है :–

1. कर्मचारियों के कौशल एवं ज्ञान का संगठनात्मक पदानुक्रम में सही स्तर पर प्रयोग करने के लिए, जिसके परिणामस्वरूप संगठनात्मक प्रभावशीलता एवं कर्मचारी संतुष्टि को प्राप्त किया जा सके।
2. उच्च स्तर के कार्यो हेतु संगठन में प्रतिस्पर्धात्मक भावना का विकास एवं ज्ञान तथा कौशल प्राप्त करने हेतु कर्मचारियों के उत्साह में बृद्धि करना।
3. बदलते परिवेश में संगठन में उच्च स्तर पर कार्य करने हेतु संगठन के आन्तरिक कर्मचारियों के श्रोतों का विकास करना।
4. कर्मचारियों में स्वयं विकास को प्रोत्साहित करना तथा उन्हें पदोन्नति के अवसर की प्रतीक्षा के लिए तैयार करना।
5. प्रशिक्षण, विकास कार्यक्रमों एवं टीम विकास क्षेत्रों में रुचि को बढ़ावा देने के लिए।
6. वफादारी एवं मनोबल में बृद्धि करने हेतु।
7. समर्पित एवं वफादार कर्मचारियों को पुरस्कार हेतु।
8. कर्मचारी नेताओं द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं से मुक्ति प्राप्त करने हेतु।

पदोन्नति के आधार (Basis of Promotion)

संगठन अपनी प्रकृति, आकार एवं प्रबन्धन के आधार पर पदोन्नति के विभिन्न आधारों को ग्रहण करते हैं। पदोन्नति के अच्छी तरह से स्थापित आधारों में वरिष्ठता और योग्यता होती है। अन्य आधारों में पक्षपात संगठन में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है। संगठन में सही व्यक्ति को सही जगह पर स्थापित करने में इन आधारों का प्रयोग विवेकशीलता के साथ करना चाहिए।

योग्यता पदोन्नति का आधार (Merit as a basis of Promotion)

योग्यता के अन्तर्गत कर्मचारी का कौशल, ज्ञान, क्षमता, सक्षमता आदि गुणों का मापन उनके शैक्षणिक, प्रशिक्षण तथा पूर्व के रोजगार अभिलेखों से ज्ञात होता है। योग्यता आधार की प्रमुख खूबियॉ निम्न है :–

1. एक कर्मचारी के उच्च कोटि के संसाधनों का प्रयोग कर्मचारी उच्च स्तर पर करता है, जिसके परिणामस्वरूप संगठनों में मानव संसाधन का अधिकतम उपयोग सम्भव होता है।
2. योग्य कर्मचारी अपने सभी संसाधनों के उपयोग को अभिप्रेरित होते हैं तथा संगठन की निपुणता एवं प्रभावशीलता में योगदान देते है।
3. यह कर्मचारी नौकरी छोड़ने में सुनहरी हथकड़ी की तरह कार्य करता है।
4. अन्ततः यह सम्पूर्ण विकास हेतु कर्मचारियों को लगातार नये ज्ञान, कौशल आदि के लिए प्रोत्साहित करता है।

योग्यता आधार की प्रमुख कमियॉ निम्न है :–

(1) योग्यता का मापन अयन्त कठिन कार्य है।

(2) बहुत से लोग विशेषकर श्रम संघ प्रबन्धन द्वारा योग्यता मापन पर भरोसा नहीं करते हैं।
(3) योग्यता मापन की विधियॉ व्यक्तिपरक होती है।
(4) योग्यता अधिकतर पिछली उपलब्धियों को इंगित करती है लेकिन भविष्य की सफलताओं को नहीं।

अतः पदोन्नति के उद्देश्य को सिर्फ योग्यता के आधार पर नहीं प्राप्त किया जा सकता है।

2. वरिष्ठता–पदोन्नति का आधार **(Seniority as a basis of Promotion)**

वरिष्ठता उसी कार्य एवं संगठन में सेवाकाल की सापेक्षिक लम्बाई है। वरिष्ठता को पदोन्नति का आधार मानने के पीछे तर्क यह है कि किसी कार्य में सेवा काल के समय तथा प्राप्त ज्ञान एवं कौशल की मात्रा में धनात्मक सह सम्बन्ध पाया जाता है। यह तन्त्र इस परम्परा पर निर्भर करता है कि जो पहले आया है उसे लाभ एवं सुविधाएं भी पहले प्रदान की जानी चाहिए। वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति के निम्न लाभ हैः–

1. सेवा काल की लम्बाई का मापन एवं वरिष्ठता का निर्धारण सापेक्षिक रूप से आसान है।
2. श्रम संघों द्वारा इस प्रारूप का पूरा समर्थन रहता है।
3. सभी पक्षों को प्रबन्ध के इस गतिविधि पर भरोसा ह्रोता है क्योंकि इसमें पक्षपात एवं विभेदीकरण की सम्भावना नहीं रहती है।
4. इसमें प्रत्येक कर्मचारी के पदोन्नति के अवसर समय आने पर उपलब्ध रहते हैं।
5. इस तंत्र में वरिष्ठ कर्मचारियों में संतुष्टि की भावना होती है तथा पुरने कर्मचारियों को सम्मान प्राप्त होता है तथा उनकी कार्यक्षमता पर प्रश्न चिन्ह नहीं लगता।
6. पदोन्नति से संबंधित शिकायतों एवं विवादों को यह निम्नतम करता है।
7. यह तंत्र कर्मचारियों द्वारा समय के साथ सीखने के उद्देश्य की पूर्ति करता है।

उपरोक्त गुणों के अतिरिक्त इस मंत्र की कुछ सीमाएं होती है, वे निम्न है :–

1. यह मान्यता कि कर्मचारी सापेक्षिक रूप से लम्बे सेवा काल में अधिक सीखते हैं, वैध नहीं है। अन्य शब्दों में कर्मचारी एक निश्चित उम्र तक सीखते हैं, उसके पश्चात् उनके सीखने व समझने की शक्ति क्षीण होने लगती है।
2. यह युवा एवं अधिक सक्षम कर्मचारियों को हतोत्साहित करता है।
3. यह लोगों के विकास के उत्साह एवं रुचि को समाप्त कर देती है क्योंकि सभी व्यक्तियों को बिना किसी सुधार के पदोन्नति प्राप्त हो जाती है।

इस प्रकार पदोन्नति के दो प्रमुख आधारों में जहॉ कुछ खूबियॅा हैं वहीं कुछ खामियॅा भी पायी जाती है। अतः इन दोनों का मिश्रित रूप प्रभावी पदोन्नति कार्यक्रम के लिए उपयुक्त होता है।

वरिष्ठता बनाम योग्यता (Seniority cum Merit)

प्रबन्ध सामान्यतः पदोन्नति के लिए योग्यता को वरीयता प्रदान करता है क्योंकि वे संगठनात्मक प्रभावशीलता में बृद्धि करना चाहते हैं। अतः मानव संसाधन को समृद्ध बनाते हैं। इसके विपरीत श्रम संघ अपने बहुसंख्यक सदस्यों के हितों को ध्यान में रखकर वरिष्ठता को पदोन्नति का आधार स्वीकार करते हैं। इस प्रकार वरिष्ठता एवं योग्यता दोनों ही आधारों की अपनी सीमाएं हैं। एक पक्ष जहॉ वरिष्ठता को आधार बनाता है वहीं दूसरा योग्यता को आधार बनाकर पदोन्नति चाहता है। ऐसी स्थिति में पदोन्नति के आधार में योग्यता एवं वरिष्ठता दोनों का समन्वय आवश्यक है । इस प्रकार के कुछ तरीके जिनमें दोनों को सम्मिलित किया जाता है, निम्न है :–

1. न्यूनतम सेवा काल एवं योग्यता **(Minimum length of Service and Merit)**

पदोन्नति के इस आधार में वे सभी कर्मचारी जो एक निश्चित सेवा अवधि पूर्ण करते हैं, पदोन्नति के लिए योग्य होते हैं। परन्तु इसके पश्चात् केवल योंग्यता को ही पदोन्नति का आधार सुनिश्चित किया जाना चाहिए। आजकल अनेक संगठनों में यह विधि पदोन्नति में प्रयोग की जाती है।

2. वरिष्ठता एवं योग्यता का मापन एक उभयनिष्ठ तत्व द्वारा **(Measurement of Seniority and Merit through a common factor)**

(क) वरिष्ठता एवं योग्यता को अनुपातिक रूप से अधिभार प्रदान करना।

(ख) सेवा–काल का मापन अंकों में करना तथा उसके लिए एक अधिकतम अंक सीमा निश्चित करना।

(ग) योग्यता को भी आबंटित अधिभार के अनुसार अंकों में मापा जाय तथा प्रत्येक पहलू को अधिकतम अंक की सीमा से बाधा जाय।

(घ) पदोन्नति के अभिलाषीं सभी कर्मचारियों को दोनों ही श्रेणियों में अंक प्रदान किये जाने चाहिए।

(ड0) सभी अंकों के योग के आधार पर सूची तैयार की जानी चाहिए।

3. न्यूनतम योग्यता एवं वरिष्ठता **(Minimum Merit and Seniority)**

पूर्व की विधियों के विपरीत इसमें न्यूनतम योग्यता, जो भविष्यय के कार्यो के लिए सफल सम्पादन हेतु आवश्यक है, के निर्धारण के पश्चात् कर्मचारियों की पदोन्नति वरिष्ठता के आधार पर सम्पन्न की जानी चाहिए।

प्रबन्ध कर्मचारियों की पदोन्नति उपरोक्त में से किसी आधार पर आन्तरिक एवं बाह्य पर्यावरणीय तत्वों को ध्यान में रखकर कर सकता है। पर्यावरणीय तत्वों में संगठन की प्रकृति एवं आकार, कार्य की प्रकृति, श्रम संघ, राजनैतिक हस्तक्षेप, पक्षपात एवं आरक्षण आदि को सम्मिलित किया जाता है।

पदोन्नति के लाभ (Benefits of Promotion)

कर्मचारियों की निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी में पदोन्नति से संगठन एवं कर्मचारियों को निम्न लाभ होते हैं :–

1. पदोन्नति कर्मचारियों को उस स्थिति में रखती है, जहॉ उनके ज्ञान एवं कौशल का बेहतर इस्तेमाल हो सके।
2. यह संगठन के अन्य कर्मचारियों में रुचि एवं विश्वास पैदा करती है कि उनका भी क्रम पदोन्नति में आयेगा।
3. यह कर्मचारियों में वर्तमान कार्य दशाओं एवं रोजगार के प्रति सहमति उत्पन्न करती है।
4. पदोन्नति की आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु यह कर्मचारियों में उच्च शिक्षा की प्राप्ति हेतु रुचि उत्पन्न करती है।
5. पदोन्नति से कर्मचारियों का मनोबल एवं कार्य संन्तुष्टि बेहतर होता है।
6. अन्ततः यह संगठनात्मक स्वास्थ्य में बृद्धि करता है।

पदोन्नति से समस्यायें (Problems with Promotion)

यद्यपि कि पदोन्नति से कर्मचारियों एवं संगठनों को लाभ होता है, परन्तु कुछ निश्चित समस्याएं भी उत्पन्न होती है। ये समस्याएं कर्मचारियों में निराशा एवं पदोन्नति से मनाही है।

कुछ कर्मचारियों में पदोन्नति से निराशा :–

जब संगठन में समान शैक्षणिक योग्यता एवं अनुभव वाले कर्मचारी की पदोन्नति पक्षपात एवं अन्य कारणों से की जाती है तो साथी कर्मचारी में निराशा व्याप्त होती है। इस स्थिति में जिस कर्मचारी की पदोन्नति नहीं की गई है वह नकारात्मक दृष्टिकोण अपनाता है एवं संगठन के कार्यो में रुचि लेना कम कर देता है। इस प्रकार वह संगठन एवं व्यक्तिगत तरक्की को कम करने लगता है।

कुछ कर्मचारी पदोन्नति से इन्कार कर देते हैं :–

एक सामान्य परम्परा है कि कर्मचारी पदोन्नति को स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु ऐसे अनेक उदाहरण है जब कर्मचारी पदोन्नति से इन्कार कर देते हैं। ये स्थितियॉ तब पैदा होती है जब कर्मचारी को यह लगता है कि पदोन्नति के साथ उसका स्थानान्तरण हो जायेगा तथा वह नयी जगह एवं जिम्मेदारी को कुशलतापूर्वक नहीं निर्वहन कर पायेगा। इसके अतिरिक्त कर्मचारी को यह भी भय रहता है कि उसका अधिकारी उसको कार्यमुक्त नहीं करेगा।

पदोन्नति से सम्बन्धित समस्याएं वृत्ति परामर्श द्वारा निम्नतम की जा सकती है।

स्थानान्तरण (Transfer)

संगठनों की अन्य गतिशीलता सही कर्मचारी को सही कार्य पर नियुक्त करना है। इसके लिए स्थानान्तरण द्वारा संगठन की आवश्यकता को पूर्ण किया जाता है।

स्थानान्तरण संगठन की ऐसी आन्तरिक गतिशीलता है, जिसमें किसी कर्मचारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर अथवा एक अनुभाग से दूसरे अनुभाग में समान ज्ञान एवं कौशल के कार्य को सम्पादित करने के लिए तैनात किया जाता है। स्थानान्तरण एक क्षेतिज गतिशीलता है, जिसमें कर्मचारी के उत्तदायित्व, स्थिति एवं वेतन में कोई अन्तर नहीं आता है।

स्थानान्तरण के उद्देश्य (Purpose of Transfer)

संगठनों में स्थानान्तरण निम्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु सम्पन्न किये जाते हैं :–

1. संगठन की आवश्यकता की पूर्ति हेतु।
2. कर्मचारी आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु।
3. कर्मचारी के कौशल, ज्ञान आदि के सही उपयोग हेतु।
4. कर्मचारी की विभिन्न कार्यो, विभागों, इकाइयों एवं क्षेत्रों में तैनाती द्वारा उनकी पृष्ठभूमि को सुदृढ़ बनाना।
5. अन्तर वैयक्तिक सम्बन्धें को सही करना।
6. एक विभाग/प्लाण्ट के श्रम शक्ति को दूसरे विभाग/प्लाण्ट पर कार्यबन्दी के दौरान समायोजित करना।
7. कार्य का अतिरिक्त बोझ झेल रहे कर्मचारियों को राहत प्रदान करना।
8. अनुशासन तोड़ने वाले कर्मचारियों को दण्डित करना।

स्थानान्तरण के लाभ (Benefits of Transfer)

स्थान्तरण द्वारा कर्मचारी एवं संगठन दोनों को लाभ होता है। स्थानान्तरण द्वारा कर्मचारियों की नीरसता एवं उदासी को दूर करता है तथा कर्मचारी संतुष्टि में बृद्धि करता है। इसके अलावा स्थानान्तरण कर्मचारी के ज्ञान एवं कौशल में भी बृद्धि करता है। स्थानान्तरण गलत स्थापना एवं अन्तर वैयक्तिक विवादों को सही करता है। इसके अतिरिक्त स्थानान्तरण संगठन की जरूरतों को पूरा करने तथा व्यवसाय एवं संगठन की उतार चढ़ाव की जरूरतों को पूरा करता है। इस प्रकार स्थानान्तरण मानव संसाधन प्रबन्ध संगठनात्मक प्रभावशीलता के योगदान में बृद्धि करता है।

स्थानान्तरण की समस्यायें (Problems of Transfer)

स्थानान्तरण से लाभ के अतिरिक्त कुछ समस्याएं भी होती है, जो निम्नलिखित हैं :–

1. नये कार्य, स्थान, वातावरण, अधिकारियों एवं सह कर्मियों के साथ कर्मचारियों के समायोजन की समस्या।
2. स्थानान्तरण से कर्मचारियों एवं उनके परिवार के सदस्यों को अनेक समस्याओं जैसे – आवास एवं बच्चों की शिक्षा की समस्या उत्पन्न होती है।
3. स्थानान्तरण से कार्य दिवसों का नुकसान होता है।
4. कम्पनी द्वारा किये गये स्थानान्तरण से कर्मचारियों के योगदान में कमी पायी जाती है।
5. भेदभाव पूर्ण स्थानान्तरण से कर्मचारियों के मनोबल, संतुष्टिकरण समर्पण एवं योगदान पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

पदावनति (Demotions)

यह आन्तरिक गतिशीलता का तीसरा प्रकार होता है जो पदोन्नति के विपरीत होता है। पदावनति के अन्तर्गत कर्मचारी को एक निम्न स्तर का कार्य दिया जाता है तथा उसी कार्य के अनुसार अधिकार एवं उत्तरदायित्व प्रदान किया जाता है। इसके अन्तर्गत सामान्यतः निम्न स्तर का वेतन भी प्रदान किया जाता है। कर्मचारियों के वृत्ति सम्भावना एवं मनोबल को ध्यान में रखकर संगठन सामान्यतः कर्मचारियों की पदावनति नहीं करते हैं।

पदावनति की आवश्यकता (Need for Demotions)

पदावनति निम्न कारणों से किया जाता है :–

1. कर्मचारी को उच्च स्तर के कार्य के लिए अनुपयुक्तता।
2. व्यवसाय की विपरीत परिस्थितियॉ।
3. नयी प्रौद्योगिकी, संचालन प्राविधियॉ एवं नये कौशल की उच्च स्तर पर मॉग।
4. कर्मचारियों की पदावनति अनुशासनात्मक आधार पर।

8.11.2 बाह्य गतिशीलता (External Mobility)

वे कर्मचारी जो अपने वर्तमान संगठन के वृत्ति से संतुष्ट नहीं है, किसी दूसरे संगठन में सुयोग्य रोजगार की तलाश कर सकते हैं। उसी प्रकार संगठन भी बाह्य श्रोतों से कर्मचारियों की नियुक्ति कर सकते हैं, यदि वे आन्तरिक कर्मचारियों को योग्य नहीं पाते हैं। यह स्थिति संगठन एवं कर्मचारी दोनों के लिए बाह्य गतिशीलता या कर्मचारी द्वारा नौकरी छोड़ना के रूप में परिणित होती है। बाह्य गतिशीलता बाह्य वृत्ति के नाम से भी जानी जाती है।

अर्थ (Meaning)

बाह्य गतिशीलता का अर्थ है –कर्मचारियों का एक संगठन से दूसरे संगठन में स्थानान्तरण।
यह एक निश्चित समय में संगठन में कर्मचारी परिवर्तन की दर होती है। यह पुराने कर्मचारियों के संगठन छोड़ने एवं नये कर्मचारियों के संगठन में प्रवेश की हद का मापन है।

बाह्य गतिशीलता के प्रकार (Types of External Mobility)

बाह्य गतिशीलता दो प्रकार की होती है :–

1. अभिगमन (Accessions)
2. पृथक्करण (Separations)

1- **अभिगमन (Accessions)**

वर्तमान कर्मचारियों में नये कर्मचारियों को जोड़ना अभिगमन कहलाता है। इसके अन्तर्गत नये कर्मचारियों का रोजगार पूर्व कर्मचारियों की पुर्ननियुक्ति, बन्दी के बाद कर्मचारियों को वापस बुलाना।

2- **पृथक्करण (Separations)**

पृथक्करण का अर्थ होता है, सेवा की समाप्ति। यह निम्न होता है :–

1. **स्वतः छोड़ना या त्यागपत्र देना (Voluntary Quit or Resignation)**

कर्मचारी अपने वर्तमान कार्य एवं संस्था से असंतुष्ट होकर अन्य कार्य संस्था में बेहतर रोजगार अवसर हेतु चले जाते हैं एवं पूर्व संस्था में त्यागपत्र दे देते हैं।

2. **कार्य की कमी से बन्दी (Lay off or lack of work)**

संगठन कर्मचारियों की सेवा, नयी तकनीकी, विपरीत व्यवसाय परिस्थितियों या बिजली की अनुपलब्धता अथवा मशीनों के खराब होने के कारण समाप्त कर दी जाती है।

3. **अनुशासनात्मक बन्दी अथवा हटाना (Disciplinary lay off or Discharge)**

यदि संगठन कर्मचारियों के निष्पादन से संतुष्ट नहीं है तो वह उनकी सेवाएं समाप्त कर देती है।

4. सेवानिवृत्ति
5. मृत्यु

बाह्य गतिशीलता की गणना (Computation of External Mobility)

सामान्यतः बाह्य गतिशीलता की दर की गणना अभिगमन दर, पृथक्करण दर एवं सम्मिलित दर के रूप में की जाती है। उसकी गणना के सूत्र निम्न है :–

अभिगमन दर (Accession Rate) = $\frac{\text{प्रतिवर्ष कुल अभिगमन}}{\text{वर्ष के कुल औसत कर्मचारी}} \times 100$

पृथक्करण दर (Separation Rate)= $\frac{\text{प्रतिवर्ष कुल पृथक्करण}}{\text{वर्ष के कुल औसत कर्मचारी}} \times 100$

सम्मिलित दर (Comosite Rate)= $\frac{\text{प्रतिवर्ष कुल अभिगमन. प्रतिवर्ष कुल पृथक्करण/2}}{\text{वर्ष के कुल औसत कर्मचारी}}$

8.12 सारांश

आधुनिक संगठनों में वृत्ति नियोजन एवं विकास एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रकार्य माना जाता है। इसके पीछे ऐसा मानना है कि यदि संगठन के कर्मचारी अपने वृति नियोजन एवं विकास से संतुष्ट होगें तो वे संगठन के विकास में अपना सर्वश्रेष्ठ देगें एवं संगठन की प्रगति में योगदान देंगें। वृत्ति के अनेक चरण होते है जिनसे होकर एक व्यक्ति गुजरता है एवं अपने करियर की योजना इस प्रकार बनाता है कि वह अपने ज्ञान एवं कौशल का उपयोग करते हुए विकास कर सके। इस वृत्ति विकास की प्रक्रिया में सामान्यतः बाह्य एवं आन्तरिक गतिशीलता पायी जाती है। इन गतिशीलताओं का करियर विकास में अहम् योगदान होता है। आन्तरिक गतिशीलता में पदोन्नति, पदावनति एवं स्थानान्तरण होते है तथा बाह्य गतिशीलता में अभिगमन एवं पृथक्करण की क्रियांए होती है। प्रत्येक गतिशीलता की अपनी विशेषताएं एवं आवश्यकताएं होती है जबकि इनकी अपनी सीमाए भी है। इस प्रकार वृत्ति नियोजन एवं विकास इनके सफल एवं प्रभावी कार्य प्रणाली द्वारा सुनिश्चित किया जा सकता है।

8.13 शब्दावली

वृत्ति नियोजनः यह एक प्रबंधकीय तकनीक है जिसमें युवा कर्मचारियों के वृत्ति को माप कर उनको उच्च कौशल, पर्यवेक्षण एवं प्रबंधकीय पदों का रचायित किया जाता है।

करियर एंकरः इसमें प्रतिभाओं, उद्देश्यों, मूल्यों और व्यवहारों को सम्मिलित किया जाता है, जो किसी व्यक्ति के करियर को स्थिरता और दिशा प्रदान करते हैं।

8.14 बोध प्रश्न

1. ....का सामान्यतः अर्थ है कि संगठन के कर्मचारी अपनी क्षमताओं के अनुसार अपने वृत्ति का नियोजन संगठनात्मक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में करते है।
2. ....वृत्ति का यह चरण नये कर्मचारी द्वारा संगठन में प्रवेश के साथ प्रारम्भ होता है ।
3. .... चरण में कर्मचारी का निष्पादन बढ़ भी जाता है एवं घट भी जाता तथा स्थिर भी रहता है।
4. वृत्ति/करियर विकास एक .... प्रक्रिया है जो वृति नियोजन को लागू करने के लिए आवश्यक है।
5. .... संगठन की ऐसी आन्तरिक गतिशीलता है, जिसमें किसी कर्मचारी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर अथवा एक अनुभाग से दूसरे अनुभाग में समान ज्ञान एवं कौशल के कार्य को सम्पादित करने के लिए तैनात किया जाता है।

8.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. वृत्ति नियोजन, 2. अन्वेषण, 3. मध्य–वृत्ति, 4. निरन्तर, 5. स्थानान्तरण

8.16 स्वपरख प्रश्न

1. वृत्ति नियोजन एवं वृत्ति विकास क्या है ? विभिन्न वृत्ति विकास क्रियाओं का वर्णन करें।
2. वृत्ति नियोजन एवं विकास के लाभ एवं समस्याएं क्या है ?
3. आन्तरिक गतिशीलता बाह्य गतिशीलता से किस प्रकार भिन्न है ?
4. स्थानान्तरण क्या है ? स्थानान्तरण के उद्देश्य क्या है ?
5. पदोन्नति से सम्बन्धित प्रमुख लाभों एवं समस्याओं का वर्णन करें।
6. पदावनति की समस्या को आप कैसे निम्नतम कर सकते हैं ?
7. आप बाह्य भर्ती या आन्तरिक पदोन्नति में से किसे तरजीह देंगें।

8.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979

इकाई 9 मजदूरी एवं वेतन प्रशासन (WAGES AND SALARY ADMINISTRATION)

इकाई की रुपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 मजदूरी एवं वेतन का अर्थ
9.3 मजदूरी के लक्षण अथवा विशेषतायें
9.4 न्यूनतम मजदूरी, उचित मजदूरी एवं निर्वाह मजदूरी
9.5 उचित मजदूरी के लाभ
9.6 मजदूरी निर्धारक घटक
9.7 मजदूरी नीति
9.8 मजदूरी भुगतान की पद्धतियॉ
9.9 भारत में मजदूरी नीति का विकास
9.10 न्यूनतम मजदूरी नीति की कठिनाइयॉ
9.11 मजदूरी नीति निर्धारण में कठिनाइयॉ
9.12 सारांश
9.13 शब्दावली
9.14 बोध प्रश्न
9.16 बोध प्रश्नों के उत्तर
9.15 स्वपरख प्रश्ऩ
9.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- मजदूरी व वेतन के अर्थ, प्रकृति और लाभ को समझ सकें।
- मजदूरी निर्धारक घटकों को समझ सकें।
- मजदूरी भुगतान की पद्धतियॉ बता सकें।
- भारत में मजदूरी नीति का विकास का वर्णन कर सकें।
- मजदूरी नीति निर्धारण में आने वाली कठिनाइयों को विस्तार से समझ सकें।

9.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग में मानवीय श्रम राष्ट्रीय उत्पादन का सबसे सक्रिय साधन है। उत्पादन के अन्य साधन निर्जीव होते हैं, इसीलिए श्रम का महत्व बढ़ता जा रहा है तथा उसी के अनुरूप मजदूरी सम्बन्धी समस्या भी जटिल होती जा रही है। देश में प्रारम्भिक समय में मजदूरी भुगतान के सम्बन्ध में कोई अधिनियम नहीं था, जिसके कारण प्रायः मजदूरी को लेकर औद्योगिक श्रमिक एवं नियोक्ता के बीच विवाद होते रहे हैं। अतः प्रबन्धक का यह दायित्व है कि वह अपने व्यवसाय में कार्यरत श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी प्रदान करते हुए उन्हें सन्तुष्ट रखें। उद्योगों में मजदूरी सम्बन्धी नीतियॉ कई बातों से प्रभावित होती हैं जैसे– राजकीय नियम, उद्योगों में प्रचलित दरें आदि।

भारत में सन् 1926 में केन्द्रीय सरकार द्वारा एक जॉच समिति गठित की गई। जिसका उद्देश्य मजदूरी भुगतान में न्याय एवं पारदर्शिता लाने के लिए नियोक्ता द्वारा किये जा रहे भुगतान की अनियमितता की जाँच करना था। सन् 1929 में शाही श्रम आयोग ने मजदूरी के सम्बन्ध में कानून बनाने की सिफारिश की। आयोग की सिफारिशों के आधार पर सन् 1933 में भारत सरकार ने एक बिल प्रस्तुत किया। जो बाद में विधान सभा द्वारा '*मजदूरी भुगतान अधिनियम 1936* ' के रुप में पास कर दिया गया।

डेल योडर ने कहा है कि ''मजदूरी वेतन एवं प्रशासन आधुनिक जन–शक्ति प्रबन्ध का मुख्य उत्तरदायित्व है। निःसन्देह यह रेखीय उत्तरदायित्व है, किन्तु इसकी बढ़ती हुई जटिलताओं ने विशेषज्ञों का ध्यानाकर्षण किया है। कई सम्भावित समस्याएं जैसे वार्षिक मजदूरी, गारण्टी–युक्त मजदूरी, आजीविका लागत से समायोजन तथा सुधार तत्व अनुषांगिक लाभ का निर्धारण और भुगतान के कारण इस क्षेत्र में विशेषज्ञों की सेवाएं आवश्यक हो गई हैं।''

9.2 मजदूरी एवं वेतन का अर्थ

मजदूरी (Wages) : मजदूरी से आशय उस भुगतान से है जो कर्मचारियों को कार्य के पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता है। जो साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक होता है। मजदूरी की राशि में अन्तर कार्य के घण्टों में परिवर्तन के अनुरूप होता है। मजदूरी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों की श्रेणी में सामान्यतः कारखानों में कार्य करने वाले श्रमिक तथा अपर्यवेक्षकीय कर्मचारियों को सम्मिलत किया जाता है।

वेतन (Salary) : वेतन का अर्थ मजदूरी से भिन्न है। वेतन वह भुगतान है जो कार्यानुसार नहीं दिया जाता है। वरन् एक निश्चित समय के लिए निश्चित राशि के रूप में दिया जाता है। वेतनभोगी व्यक्तियों में समस्त कार्यालय के कर्मचारी, शासकीय अधिकारी प्रबन्धक तथा अन्य पेशेवर व्यक्ति सम्मिलत किए जाते हैं। श्रमिक का भुगतान इस श्रेणी में नहीं आता है।

योडर एवं हैनमन के अनुसार, ''मजदूरी उन श्रमिकों तथा कर्मचारियों को दी गई गई क्षतिपूर्ति है, जो अपने नियोक्ता के लिए वस्तुएं एवं सेवाएं उपलब्ध कराते हैं तथा उत्पादन कार्यो के लिए नियोक्ता के उपकरणों का प्रयोग करते हैं।''

बेन्हम के अनुसार, ''मजदूरी एक संविदा के अर्न्तगत दी गई वह राशि है जो नियोक्ता द्वारा श्रमिक को उनकी सेवाओं के बदले में दी जाती है।''

मजदूरी वह आर्थिक क्षतिपूर्ति है जो समय प्रतिदिन, प्रतिघण्टा आदि के आधार पर श्रमिकों को उनके कार्य एवं सेवाओं के प्रतिफल में दी जाती है। जिसके अर्न्तगत परिवार भत्ते, राहत, वेतन, वित्तीय सहायता तथा अन्य सामाजिक लाभ सम्मिलत किए जाते हैं।

मजदूरी शब्द का अर्थ भारत में निम्नलिखित विभिन्न अधिनियमों के अर्न्तगत परिभाषित किया गया हैः

1. मजदूरी भुगतान अधिनियम,1936 (The payment of Wages Act, 1936) धारा 2 (vii)

2. न्यूनतम मजदूरी अधिनियम,1948 (Minimum Wages Act, 1948) धारा 2 (b)
3. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम,1948 (Employees State Insurance Act 1948) धारा 2(23)
4. श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923 (Workmen's Compensation Act,1923) धारा 2(m)

इन सभी अधिनियमों में मजदूरी के दो मुख्य भाग किए गए है *मूल मजदूरी (Basic wages)* तथा *अन्य भुगतान (Other payments)* है। इन परिभाषाओं के प्रथम भाग में सभी प्रकार के पुरूष्कार सम्मिलत किए गए है। चाहे वे किसी भी रूप में दिए जाते हो– मूल मजदूरी अथवा भत्ते या अन्य कोई पुरूस्कार जो श्रमिक तथा नियोक्ता के मध्य हुए संविदा के आधार पर दिए जातें है अथवा देय हैं। द्वितीय भाग में अन्य प्रकार के भुगतान सम्मिलित किए जाते हैं। जैसे विभिन्न प्रकार के वेतन भत्ते व मजदूरी के अतिरिक्त दिए जाते हैं तथा समय विशेष के लिए ही होते हैं। अतः यह एक रूप में मजदूरी के ही अंग हैं । अवकाश मजदूरी, अतिरिक्त समय कार्य भृत्ति, बोनस सामाजिक सुरक्षा लाभ आदि इस श्रेणी में सम्मिलित नही हैं। अतः इन्हें पृथक् रखा गया है।

भारत में परिभाषित मजदूरी में मूल मजदूरी, महंगाई भत्ते, मकान किराया भत्ते नगरीय क्षतिपूर्ति भत्ते आदि सम्मिलित किए जाते हैं।

अवकाश काल की मजदूरी, छुट्टियों का वेतन, अतिरिक्त समय काम करने की मजदूरी बोनस, अच्छे व्यवहार एवं चरित्र का पुरूस्कार कर्मचारी क्षतिपूर्ति क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 के अर्न्तगत मजदूरी के भाग हैं।

किसी निर्णय अथवा कानूनी आज्ञा के अर्न्तगत काम के बदले दी जाने वाली राशि, मजदूरी भुगतान अधिनियम् 1936 तथा कर्मचारी बीमा अधिनियम, 1948, द्वारा मजदूरी की श्रेणी में सम्मिलत की गई हैं। यदि भुगतान के समय में दो माह से अधिक का अन्तर न हो।

सेवा छंटनी क्षतिपूर्ति, नोटिस काल अथवा ग्रेच्युइटी के स्थान पर दिया गया भुगतान, मजदूरी भुगतान अधिनियम के अर्न्तगत मजदूरी की श्रेणी में आता है।

भुगतान जो मजदूरी नहीं है

निम्न भुगतान मजदूरी के अर्न्तगत किसी भी नियम द्वारा सम्मिलत नहीं किए गए हैं। जैसे–

- सरकार द्वारा निर्धारित अन्य विशिष्ट सुविधाएं जो किसी विशेष आदेश द्वारा मजदूरी गणना में पृथक् रखी गयी हों।
- किसी कर्मचारी द्वारा किए गए विशिष्ट व्यय का भुगतान जो कर्मचारी द्वारा उसके पद एवं स्थिति की दृष्टि से उपक्रम में हित किया जाना आवश्यक हो।
- सामाजिक बीमा एवं बीमा लाभ के लिए अथवा सेवा निवृत्ति या भविष्य निधि के निमित्त दिया गया भाग जो नियोक्ता द्वारा दिया जाता है।

- लाभ भागिता योजना के अर्न्तगत दिया गया बोनस अथवा अतिरिक्त भुगतान, जो किसी प्रकार से संविदा का भाग नहीं है।

9.3 मजदूरी के लक्षण अथवा विशेषतायें

- मजदूरी श्रम की सेवाओं का प्रतिफल है।
- मजदूरी प्रति इकाई, प्रति घण्टा, दैनिक साप्ताहिक, पाक्षिक अथवा मासिक हो सकती है।
- मजदूरी समय अथवा कार्यानुसार दोनों प्रकार से निर्धारित की जा सकती है।
- मजदूरी में सामान्य मजदूरी, अधि–समय मजदूरी, बोनस तथा अतिरिक्त मजदूरी भी सम्मिलित होती है।
- प्रमापित मजदूरी के लिए प्रमापित उत्पादन निर्धारित किया जा सकता है।
- मजदूरी नकद अथवा वास्तविक हो सकती है।
- मजदूरी, मजदूरी दर से भिन्न है।
- मजदूरी दर का निर्धारण कार्य मूल्यांकन के आधार पर किया जाता है।
- मजदूरी उपयोगिता सृजन का कार्य करती है।
- मजदूरी का भुगतान श्रमिक एवं नियोक्ता के बीच हुए अनुबन्ध के अधीन होता है।

9.4 न्यूनतम मजदूरी, उचित मजदूरी एवं निर्वाह मजदूरी

1. **न्यूनतम मजदूरी (Minimum Wage)–** *अखिल भारतीय सेवायोजक संगठन के अनुसार* ''न्यूनतम मजदूरी वह मजदूरी हैं जो श्रमिक तथा उसके परिवार की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करे।''

निःसन्देह न्यूनतम मजदूरी मौद्रिक रूप से मिलने वाली वह राशि है जिससे श्रमिक स्वयं का तथा अपने परिवार का पालन पोषण कर सकता है तथा अपनी कार्यकुशलता बनाए रख सकता है।

2. **उचित मजदूरी (Fair Wage)–** सामाजिक ज्ञान शब्दकोष के अनुसार, ''उचित मजदूरी वह मजदूरी है, जो श्रमिकों को समान कुशलता, कठिन व अरूचिकर कार्यो के लिए प्राप्त होती है। यह मजदूरी संस्था द्वारा किसी प्रमाणिक स्तर पर निर्धारित की जाती है।''

पीगू के अनुसार, उचित मजदूरी वह है जो श्रमिकों को कार्यकुशलता के अनुपात में दी जाती है। कार्यकुशलता की माप श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता के आधार पर की जाती है। यदि श्रमिक की मजदूरी वस्तु की सीमान्त उत्पादकता से कम है तो उसे उचित मजदूरी नहीं कहा जा सकता है।

अधिकांश विद्वानों की राय है कि उचित मजदूरी न्यूनतम मजदूरी की उच्चतम सीमा व निर्वाह मजदूरी की निम्नतम सीमा के समकक्ष होती है।

3 **निर्वाह मजदूरी–** भारतीय संविधान के नीति निर्धारक तत्वों (राज्य) की धारा 43 के अनुसार ''राज्य सभी कर्मचारियों को निर्वाह मजदूरी प्रदान करेगा।''

न्यायाधीश हिगिन्स के अनुसार, ''निर्वाह मजदूरी वह मजदूरी है जो श्रमिक को भोजन, आवास, वस्त्र, सामान्य आराम, कठिन समय के लिए बचत सम्बन्धी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती है तथा कलाकार की कला को पर्याप्त सम्मान प्रदान करती है।''

निर्वाह मजदूरी भुगतान का लक्ष्य तीन चरणों से प्राप्त करना निश्चित किया गया था। प्रथम चरण में सभी प्रकार के श्रमिकों को मजदूरी भुगतान में स्थायित्व प्रदान किया जाए तथा उनकी मजदूरी निर्धारित की जाए। द्वितीय चरण में समाज एवं उद्योग की दृष्टि से उचित मजदूरी निर्धारित की जाए। तृतीय चरण में श्रमिकों की निर्वाह मजदूरी का भुगतान किया जाएगा ।

9.5 उचित मजदूरी के लाभ

उचित मजदूरी भुगतान से प्राप्त होने वाले लाभों को दो भागों में बॉटा जा सकता है–

1. कर्मचारी को लाभ (Advantages of Employee)

(i) श्रमिकों को उनकी सहायता के अनुरूप मजदूरी प्रदान करने से अर्थात् कुशल श्रमिक को अधिक मजदूरी, अर्द्धकुशल को उससे कम व अकुशल को न्यूनतम मजदूरी उनके मनोबल में वृद्धि होती है तथा वह एक अच्छा उत्पादक बन सकता है।

(ii) इससे पक्षपात के अवसर न्यूनतम हो जाते हैं अथवा प्रायः समाप्त हो जाते हैं। कार्य अथवा पदोन्नति का क्रम आसानी से निर्धारित किया जा सकता है, जिससे श्रमिक अपनी पदोन्नति के प्रति आश्वस्त रहता है और कार्य में अधिक रूचि प्रदर्शित करता है।

(iii) कर्मचारी के मनोबल में वृद्धि होती है तथा नैतिक स्तर में सुधार होता है क्योंकि भुगतान कार्यक्रम सुव्यवस्थित तथा तर्कसंगत होता है।

2. नियोक्ता को लाभ (Advantages Of Employer)

(i) वह अपनी श्रम शक्ति का भली–भॉति आयोजन कर सकते हैं तथा उत्पादन लागत की दृष्टि से श्रम तत्व की लागत को नियंत्रित कर सकते हैं।

(ii) उचित मजदूरी के निर्धारण के फलस्वरूप, नियोक्ता को श्रम संघो के साथ सामूहिक सौदेबाजी में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता क्योंकि मजदूरी स्तर तर्कसंगत होते हैं।

(iii) मजदूरी की असमानता के फलस्वरूप श्रमिकों में आपसी मनमुटाव, मतभेद अथवा विवाद नहीं उत्पन्न हो पाते हैं।

(iv) इससे कर्मचारी मनोबल तथा अभिप्रेरण में वृद्धि होती है क्योंकि सुनियोजित मजदूरी प्रणाली कर्मचारी की आवश्यकता के आधार पर निश्चित की जाती है।

(iv) वे कुशल तथा दक्ष श्रमिकों को उचित पुरूष्कार द्वारा आकर्षित करने में सफल होते हैं।

9.6 मजदूरी निर्धारक घटक

उचित मजदूरी का निर्धारण करने वाले निम्न तत्व हैं–

1. **प्रचलित मजदूरी–** अनेक नियोक्ता प्रचलित दरों के आधार पर अपनी मजदूरी की दरें निर्धारित करते हैं। मजदूरी की दर के निर्धारण के समय स्थानीय बाजारों की दरें, अपने ही उद्योग की किस्म के अन्य उद्योग तथा समान श्रमिक के लिए समान वेतनमान को भी ध्यान रखते हैं। बाजार में श्रम की मांग तथा पूर्ति का भी ध्यान भी रखा जाता है। यदि किसी विशिष्ट प्रकार के श्रम की पूर्ति कम है तो उसके लिए मजदूरी की ऊॅची दर भी दी जा सकती है। किन्तु श्रमिक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है अथवा श्रम की बहुलता या बेरोजगारी फैली हुई है तो मजदूरी की दर कम होगी।

2. **देय क्षमता–** किसी उद्योग में दी जाने वाली मजदूरी इस पर भी निर्भर करती है कि उद्योग की देय क्षमता क्या है ? वे उद्योग जो अधिक लाभ अर्जित करते हैं, प्रायः अधिक मजदूरी देने में सक्षम होते हैं, किन्तु अधिकांश उद्योग जो सामान्यतः कम लाभ अर्जित करते हैं, अपने कर्मचारियों को कम वेतन देते हैं।

3. **निर्वाह लागत–** मूल्य निर्देशांक में परिवर्तन के साथ मजदूरी की दरों में भी परिवर्तन होता रहता है। जिससे कि श्रमिकों की क्रय क्षमता को यथासम्भव समान स्तर पर रखना आवश्यक है। अतः निर्देशांकों में वृद्धि के साथ मजदूरी की दरों में भी वृद्धि आवश्यक है। जहॉ मजदूरी का निर्देशांक के साथ कोई समन्वय नही है, वहॉ श्रम संघ तथा श्रमिक तथा नियोक्ता के मध्य सौदेबाजी क्षमता के आधार पर मजदूरी का निर्धारण किया जाता है।

4. **उत्पादकता–** मजदूरी का माप उत्पादित वस्तुओ के रूप में भी किया जाता है। अधिक उत्पादन करने वाले श्रमिक अधिक मजदूरी पाने के अधिकारी होते हैं तथा कम उत्पादन करने वाले श्रमिकों को कम मजदूरी दी जाती है। न्याय के आधार पर अधिक उत्पादन का लाभ श्रमिको को उसकी ऊॅची मजदूरी के रूप में अंशधारियों कों अधिक लाभ के रूप में तथा उपभोक्ताओं को कम दर पर अच्छी वस्तुए उपलब्ध होने के रूप में प्राप्त होता है क्योंकि मिले जुले कार्य का प्रतिफल है। सामान्यतः अधिक उत्पादन के फलस्वरूप मजदूरी की दरे ऊंची रहती हैं।

5. **श्रमिकों की सौदेबाजी की क्षमता–** वे उद्योग जहॉ श्रम संघ शक्तिशाली है। वहॉ श्रम संघ सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से अधिक मजदूरी प्राप्त करने में सफल होते हैं।

6. **कार्य की अपेक्षाएं–** ऐसे कार्य जिनमें श्रम कौशल उत्तरदायित्व तथा जोखिम की मात्रा कम होती हैं। उनके लिए कम मजदूरी निर्धारित की जाती है। तथा जिन कार्यो में इन सभी गुणों की अधिक आवश्यकता होती है। उनके लिए मजदूरी की दर भी अधिक उंची होती है।

उपर्युक्त तत्वों से कोई एक तत्व ही नहीं, वरन सभी तत्व सम्मिलत रूप से मजदूरी निर्धारण को प्रभावित करते हैं।

9.7 मजदूरी नीति

औद्योगिक शान्ति के लिए मजदूरी की एक सुनियोजित नीति अपनायी जानी चाहिए। कार्य मूल्यांकन के आधार पर विभिन्न पदों व कार्यो के लिए मजदूरी की दर पृथक–पृथक रखी जा सकती है। कार्य मूल्यांकन द्वारा कार्य प्रणाली, कार्य की

कठिनाई एवं उत्तदायित्व, कार्य के लिए वांछित कुशलता आदि बातों का मूल्यांकन किया जाता है। अच्छी मजदूरी नीति निम्न तत्वों पर आधारित होनी चाहिए–

- मजदूरी निर्धारण एक निश्चित योजना के अनुसार होना चाहिए जिससे कि विभिन्न वेतनमानों से मजदूरी का ढॉचा तैयार किया जा सकें तथा विभिन्नता का औचित्य प्रदर्शित किया जा सके।
- मजदूरी की दरें क्षेत्र में प्रचलित मजदूरी की दरों के अनुरूप होनी चाहिए जिससे की श्रमिक सन्तुष्ट रह सकें और मजदूरी सम्बन्धित औद्योगिक विवाद उत्पन्न न हो।
- यदि कार्य समान स्तर का हो तो सभी श्रमिकों को समान मजदूरी दी जानी चाहिए।
- श्रमिकों की कार्य प्रणाली के अन्तर ज्ञात करने के लिए समान प्रमापों का प्रयोग किया जाना चाहिए।
- मजदूरी सम्बन्धी परिवादों के निवारण हेतु निश्चित प्रणाली का अनुकरण किया जाना चाहिए।
- मजदूरी की दर निर्धारण करने की प्रविधि कर्मचारियों तथा श्रम संघो को ज्ञात होनी चाहिए। प्रत्येक कर्मचारी को अपनी मजदूरी तथा वेतन स्तर का ज्ञान होना चाहिए।
- मजदूरी का नियन्त्रण लागत नियन्त्रण तथा प्रवर्तन श्रम बजट से किया जाना चाहिए।
- मजदूरी व्यवस्था सरल बोधगम्य तथा कम खर्चीली होनी चाहिए।
- मजदूरी भुगतान प्रणाली लोचशील होनी चाहिए।
- मजदूरी पर्याप्त होनी चाहिए जिससे कि श्रमिक अपना व अपना परिवार का आसानी से पालन पोषण कर सके तथा जीवन में आने –जाने वाली असंदिग्धताओ से अपनी रक्षा कर सकें।

9.8 मजदूरी भुगतान की पद्धतियॉ

मजदूरी भुगतान की प्रणाली या तो समयानुसार हो सकती है या कार्यानुसार। समयानुसार मजदूरी भुगतान प्रणाली के अन्तर्गत, श्रमिक की मजदूरी एक निर्धारित समय के लिए निर्धारित की जाती है तथा कार्यानुसार भुगतान के अन्तर्गत एक श्रमिक जितना उत्पादन करता है उसके अनुरूप मजदूरी दी जाती है। ये दोनों सिद्धान्त ही मजदूरी के आधारभूत सिद्धान्त हैं। शेष सभी सिद्धान्त गौण कहे जा सकते हैं। मजदूरी भुगतान की मुख्यतया चार प्रणालियॉ हैं–

1. **समयानुसार मजदूरी**– मजदूरी भुगतान की यह प्रणाली प्राचीनतम है। इस प्रणाली में श्रमिक को कार्य के समय के आधार पर मजदूरी दी जाती है। अर्थात प्रति घण्टा, प्रतिदिन, प्रति सप्ताह, प्रति माह आदि। इस पद्धति की मुख्य बात यह है कि श्रमिक ने कितना कार्य किया है, यह कोई महत्व नहीं रखता। उसे पूर्व निश्चित संविदा के अनुसार कार्य का निर्धारित समय पूर्ण होते ही भुगतान कर दिया जाता है।

गुण –

- गणना सरल होती है।
- कर्मचारी कार्य को समाप्त करने में शीघ्रता नहीं करते। इससे उत्पादन की किस्म अच्छी होती है।
- एक ही प्रकार के कार्य के लिए नियुक्त सभी कर्मचारी समान मजदूरी प्राप्त करते है, इससे उनमें आपसी कलह तथा वैमनस्य नही होता।
- कर्मचारी के मशीन पर सुगमता, सतर्कता, एवं निष्ठा से कार्य करते रहने के कारण सभी मशीन की तोड–फोड तथा ह्रास कम होता है।
- जिन उद्योगों में उत्पादन का माप सम्भव नहीं है वहां पर यह प्रणाली श्रेयस्कर रहती है। श्रमिक को निश्चित राशि प्रदान की जाती है ताकि श्रमिक का बजट सन्तुलित रहे।
- यह प्रणाली श्रम संघों द्वारा भी अधिक पसन्द की जाती है क्योंकि यह श्रमिकों की दृष्टि से समझने योग्य, सरल स्पष्ट, तथा सुनिश्चित है।
- इस प्रणाली में प्रशासकीय व्यय बहुत कम होता है। इसके दो कारण हैं–
    - (i) मजदूरी की दर का निर्धारण पहले से निश्चित रहता है जो आपसी सद्विश्वास का प्रतीक है, तथा
    - (ii) यह आपसी विश्वास पर आधारित है कि कर्मचारी पूर्ण निष्ठा के साथ कार्य करेगा और अपनी–अपनी क्षमतानुसार पूर्ण रुचि लेकर कार्य निष्पादन करेगा।

दोष–

- अधिक कुशलता तथा निष्ठा से कार्य करने वाले श्रमिक का विचार नहीं किया जाता जिससे अधिक उत्पादन किसी प्रकार की मजदूरी निर्धारण का अंग नहीं बनता।
- प्रबन्धक के लिए यह ज्ञात करना कठिन होता है कि वह किस प्रकार के श्रम के लिए कितनी मजदूरी निर्धारित करें।
- जब तक यह निश्चित नहीं होता कि अमुक कार्य कितने समय में पूरा हो सकेगा तथा कितने श्रमिकों की आवश्यकता होगी, तब तक श्रम की मांग का अनुमान नहीं लगाया जा सकता ।
- श्रमिक अपनी कार्य क्षमता से कम कार्य करते हैं।
- कर्मचारी की कार्य में रुचि न होने से श्रम का अपव्यय तथा श्रम लागत में वृद्धि होती है।
- उत्पादन को अनेक व्यावसायिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।
- जब श्रमिक के उत्पादन का कोइ विवरण नहीं रखा जाता तो नियोक्ता के लिए यह कठिन हो जाता है कि वह किस प्रकार अच्छे श्रमिक का चयन कर उन्हें पदोन्नत करें।

2. **कार्यानुसार मजदूरी**– इस प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिक को कार्य के अनुसार मजदूरी का भुगतान किया जाता है। उत्पादन की प्रति इकाई मजदूरी का निर्धारण पहले ही कर लिया जाता है। इस प्रणाली में समय तत्व को मजदूरी निर्धारण में महत्व नहीं दिया जाता, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रमिक किसी उत्पादन में अनिश्चित समय तक कार्य करता रहे। कम से कम समय में कार्य करने वाला श्रमिक अधिक से अधिक मजदूरी प्राप्त करने में सफल होता है। इस प्रणाली के अन्तर्गत दी हुई परिस्थितियों, मशीनों तथा कार्य की दशाओं में कार्य करने पर एक श्रमिक जो उत्पादन कर सकता है उसे वह राशि प्रति इकाई मजदूरी के रूप में दी जाती है।

भुगतान की यह प्रणाली सामान्यतः ऐसे कार्यो के लिए अपनायी जाती है जिनमें एक ही प्रकार के कार्यो की पुनरावृत्ति होती हो। यह प्रणाली प्रमापित उत्पादन हेतु एवं दक्ष तथा कुशल श्रमिक के लिए अधिक लाभदायक है क्योंकि वह अपनी कुशलता का प्रयोग कर उत्पादन को शीघ्र पूरा करने में तथा निर्धारित समय में सफल होता है तथा उत्पादन क्रिया पर नियन्त्रण भी प्रभावी तरीके से किया जा सकता है।

इस प्रणाली को उन दशाओं में लागू करने में कठिनाई होती है जब विभिन्न इकाइयों का माप करना असम्भव हो तथा एक ही कार्य के लिए विभिन्न प्रकार एवं विभिन्न कुशलता वाले श्रमिक कार्यरत हों। इस प्रणाली की मूल विशेषता यह है कि मजदूरी दर तथा उत्पादन में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। श्रमिकों की मजदूरी निम्न सूत्र से मापी जा सकती है –

श्रमिक की आय मजदूरी = उत्पादित इकाइयां × प्रति इकाई दर

गुण–

- यह प्रणाली श्रमिक को उसकी योग्यता के अनुसार पुरस्कृत करती है। यदि श्रमिक अधिक उत्पादन करता है तो वह अधिक मजदूरी प्राप्त करता है।
- पर्यवेक्षकीय व्यय अधिक करने की आवश्यकता नही होती क्योंकि श्रमिक स्वयं अधिक उत्पादन की चेष्टा करते हैं।
- प्रति इकाई श्रम लागत निश्चित रहती है जिससे वस्तुओं का निविदा मूल्य निर्धारित करते समय कठिनाई नहीं होती है।
- इस प्रणाली से न केवल व्यक्ति उत्पादन एवं मजदूरी में वृद्धि होती है, वरन श्रमिक अच्छी मशीनों एवं अच्छी श्रेणी के अच्छे माल की मॉग करते हैं।
- कुल उत्पादन लागत में कमी आती है क्योंकि समय की बचत के साथ–साथ अन्य उत्पादन साधनों में मितव्ययिता हो जाती हैं।

दोष–

- प्रति इकाई उत्पादन के लिए मजदूरी की दर निर्धारण करने के लिए किसी वैज्ञानिक प्रणाली का सहारा नहीं लिया जाता।
- जब श्रमिक अधिकाधिक उत्पादन करना चाहते हैं, तो वह तीव्र गति से कार्य करते हैं। वस्तु की किस्म के बारे में अधिक सर्तक नहीं रहते, ऐसी स्थिति में उत्पादन लागत में वृद्धि होना स्वाभाविक है।

- श्रमिक द्वारा अपनी क्षमता से भी अधिक उत्पादन करने पर अधिक मजदूरी से उत्साह वृद्धि होती है, किन्तु उत्साह की अति हो जाने पर व्यक्ति की कार्यक्षमता का शीघ्र ह्रास हो जाता है।
- कार्य की किस्म में सुधार की दृष्टि से यदि पर्यवेक्षकीय नियन्त्रण बढ़ाया जाय, तो श्रमिक इसका विरोध करते हैं।
- अधिक तीव्र गति से कार्य करने के कारण मशीन का क्षय अधिक होता है तथा मशीनों का प्रतिस्थापन समय से पूर्व करना पड़ता है।
- श्रम संघ प्रायः इस प्रणाली का विरोध करते हैं क्योंकि इससे श्रमिकों में स्पर्द्धा उत्पन्न होती है तथा उनकी एकता को ठेस पहुॅचती है।

3. **शेष या ऋण मजदूरी–** यह प्रणाली समयानुसार तथा कार्यानुसार मजदूरी भुगतान प्रणाली का सामूहिक रूप है। श्रमिक को उत्पादन इकाई मजदूरी के साथ–साथ एक न्यूनतम दौनिक मजदूरी की व्यवस्था भी की जाती है। यदि श्रमिक दैनिक मजदूरी से अधिक मात्रा में इकाई मजदूरी के आधार पर आय अर्जित कर लेता है तो वह अतिरिक्त राशि उसके खाते में जमा हो जाती है और यदि वह कम इकाइयां बना पाता है तो दैनिक गारण्टी दी गयी मजदूरी से जितनी रकम कम पड़ती है, वह उसके खाते में लिख दी जाती है। यदि किसी आधार पर मजदूरी आय एवं दैनिक मजदूरी बराबर है तो किसी प्रकार के खाते की आवश्यकता नहीं होती। यह प्रणाली समय एवं कार्यानुसार मजदूरी का वैज्ञानिक दृष्टि से निर्धारण करती है।

उदाहरण के लिए ,यदि समय भुगतान दर 15 रुपये प्रति सप्ताह है तथा दो व्यक्ति इकाई उत्पादन पर क्रमशः 16 रुपये एवं 14 रुपये की इकाइयां उत्पादित करते है तो उन्हें क्रमशः एक रुपये की जमा और एक रुपये की नापे लिखी जायगी। यह तथ्य निम्न तालिका द्वारा स्पष्ट किया गया है :

श्रमिक	उत्पादित इकाइयां	इकाई मजदूरी के आधार पर कुल मजदूरी	समयानुसार मजदूरी	जमा	नाम	शेष
अ	16	रुपये 16.00	रुपये 15.00	1.00	–	1.00
ब	14	रुपये 14.00	रुपये 15.00	–	1.00	(–)1.00

श्रमिक ब के नाम लिखा गया एक रुपया उस समय बराबर कर दिया जाएगा जब वह अतिरिक्त इकाइयां उत्पादन करेगा।

इस प्रणाली का मुख्य लाभ यह है कि अच्छा श्रमिक अपनी मजदूरी में वृद्धि कर सकता है तथा एक सामान्य कुशल श्रमिक नियमित रूप से एक निश्चित मजदूरी प्राप्त करता है। नियमित मजदूरी प्राप्त होते रहने से श्रमिक अपने रहन–सहन का एक सामान्य स्तर बनाये रख सकता है एवं प्रमाप के अनुसार कार्य करने के लिए स्वयं अभिप्रेरित होता है।

4. **प्रेरणात्मक मजदूरी योजनाएं–** प्रत्येक नियोक्ता यह चाहता है कि श्रमिक अपनी योग्यता के अनुरूप अधिक से अधिक उत्पादन करें। दूसरी ओर श्रमिक की यह धारणा बनी रहती है कि उसे कार्यानुसार मजदूरी दी जाये। इस प्रकार की विरोधी

धारणाओं के कारण श्रमिक अपनी पूर्ण क्षमता का उपयोग कर उत्पादन बढ़ाने का प्रयास नहीं कर पाते हैं। अभिप्रेरण योजनाओं को इसी कारण प्रब्याजि योजनाएं कहा जाता है कि वे अच्छे कार्य निष्पादन के लिए तथा पूॅजी एवं मशीनों का पूर्ण उपयोग करने के लिए प्रब्याजि के रूप में प्रस्तुत होती हैं।

समस्त प्रब्याजि योजनाएं दो तथ्यों से सम्बन्धित होती है–

- प्रत्येक कार्य निष्पादन के लिए कार्य की मात्रा तथा समय प्रमापित रहता है।
- यदि प्रमापित समय में बचत की जाती है अथवा प्रमाणित उत्पादन से अधिक उत्पादन किया जाता है तो श्रमिक को नियमित एवं निर्धारित दर के अतिरिक्त कुछ राशि प्रब्याजि के रूप में प्राप्त होती है।

गुण–

अभिप्रेरण मजदूरी योजनाओं के मुख्य लाभ इस प्रकार हैः

- यदि इन योजनाओं को भली भांति आयोजित किया जाय तो निश्चित रूप से उत्पादन वृद्धि, उत्पादन लागत में कमी तथा श्रमिक की मजदूरी में वृद्धि होती है।
- कार्यानुसार मजदूरी तथा अतिरिक्त अभिप्रेरण दिये जाने से संगठन में स्वतः सुधार होता है।
- श्रम लागत तथा प्रति इकाई कुल लागत में कमी आती है और लागत का अनुमान और सही ढ़ंग से लगाया जा सकता है।
- इससे प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण में कमी की जा सकती है क्योंकि श्रमिक स्वयं अधिक मजदूरी प्राप्ति हेतु न्यूनतम त्रुटियॉ करने का प्रयास करता है।
- श्रमिक तथा नियोक्ता दोनों के हित एक ही रूप लेते है जिससे दोनों पक्ष उत्पादन वृद्धि लागत में कमी तथा समय की बचत करने में जुट जाते हैं।

दोष–

कई बार इस प्रणाली के लागू करने पर निम्नलिखित दोष स्वतः प्रकट हो जाते हैं :

- श्रमिक अधिक लाभ अर्जित करने के प्रलोभन में कार्य निष्पादन शीघ्रता से करते हैं, इससे उत्पादन की किस्म प्रभावित होती है। उत्पादन की किस्म पर नियन्त्रण के लिए पर्यवेक्षण तथा निरीक्षण कार्यों में वृद्धि करनी पड़ती है।
- कार्य के अनुसार भुगतान करने पर श्रमिक नयी मशीनों का विरोध करते हैं क्योंकि उन पर काम सीखते समय उनकी गति कम रहती है तथा मजदूरी को हानि होती है।
- कई बार श्रमिक स्वयं द्वारा निष्पादित अधिकतम कार्य को प्रमाप मानने के लिए बाध्य करते हैं तथा तद्नुसार मजदूरी की दर में वृद्धि करने की चेष्टा करते हैं।
- इस मजदूरी प्रणाली में लेखा व्यय तथा कार्यालय सम्बन्धी कार्य बढ़ जाता है।

- सुरक्षात्मक उपायों का श्रमिक द्वारा ध्यान नहीं रखे जाने के कारण दुर्घटनाओं की संख्या में वृद्धि हो जाती है।
- श्रमिक अधिक मजदूरी के प्रलोभन में अपने स्वाथ्य का ध्यान नहीं रखते तथा लम्बे समय कार्य करते रहते हैं जिससे उनकी क्षमता कम हो जाती है।
- कुछ श्रमिक अपनी क्षमता के कारण अधिक आय अर्जित करने में सफल हो जाते हैं। इससे श्रमिकों में वैमनस्य उत्पन्न हो जाता है।
- प्रब्याजि दर तथा अतिरिक्त उत्पादन इकाई दर का निर्धारण करने के लिए कोई सुनिश्चित विधि नहीं है। अतः इनका निर्धारण भली–भॉति नहीं किया जा सकता।

9.9 भारत में मजदूरी नीति का विकास

स्वतन्त्रता प्राप्ति के उपरान्त न्यूनतम मजदूरी तथा उचित मजदूरी के सिद्धान्तों पर बल दिया गया है। सन् 1948 में न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पारित किया गया। इसके अर्न्तगत केन्द्रीय अथवा राज्य सरकारों द्वारा न्यूनतम मजदूरी दर निर्धारित करने तथा उन्हें लागू करने का प्रावधान रखा गया। जिससे श्रमिकों का शोषण समाप्त हो सके।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम लागू करने का मूल उद्देश्य शोषित श्रमिक को उचित दर से वेतन दिलवाना तथा औद्योगिक शान्ति के लिए वातावरण तैयार करना था। इससे आशा की जाती थी कि उत्पादन वृद्धि को गति प्रदान होगी। अधिनियम के अर्न्तगत न्यूनतम समयानुसार मजदूरी दर व न्यूनतम कार्यानुसार मजदूरी दर व प्रमापित निश्चित मजदूरी दर तथा विभिन्न व्यवसायों के लिए अधिसमय कार्य की मजदूरी दर आदि निश्चित करने की व्यवस्था की गई है। क्षेत्र विशेष में वयस्क तथा वृद्धों बच्चों व नवसिखुओं के लिए कक्षाएं चलाने के लिए अधिक वेतन दिए जाने का प्रावधान किया गया। असंगठित उद्योग जैसे दरी उद्योग एवं गलीचा उद्योग, शॉल उद्योग, चावल दाल, एवं आटा मिलें, तम्बाकू तथा अन्य वस्तुए निर्माण करने वाले उद्योग, स्थानीय संस्थाएं , पत्थर कूटने, लाख एवं चमड़ा उद्योग, अभ्रक उत्पादन एवं अभ्रक उद्योग, मोटर वाहन, कृषि उद्योग आदि में मजदूरी नियमन क्रियान्वित करना है।

9.10 न्यूनतम मजदूरी नीति की कठिनाइयॉ

अधिनियम के अर्न्तगत घोषित न्यूनतम मजदूरी नीति को व्यावहारिक रूप देने में कई कठिनाइयॉ अनुभव की जाने लगी।

- अधिनियम के अर्न्तगत कोई प्रमाप निर्धारित नहीं किए गए थे। इससे प्रमापित प्रणाली लागू नहीं हो सकी तथा मजदूरी दरों में एकरूपता का अभाव हो गया।
- न्यूनतम दर लागू करना तथा उसका समुचित पर्यवेक्षण अधिक प्रभावशाली नहीं रहा। जिसके कारण राज्यों में अधिनियमों के मूल उद्देश्यों की पूर्ति भी नहीं हो पायी।

- न्यूनतम मजदूरी दरों के प्रावधान के अनुसार प्रति पॉच वर्ष उपरान्त संशोधित नहीं की जाती है। वरन् यह अवधि काफी लम्बी होती है।
- प्रयोगात्मक रूप में यह अधिनियम अधिक प्रभावी नहीं रहा क्योंकि भारतीय श्रमिकों की प्रवृति प्रवासी है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के असफल रहने के कारण उचित मजदूरी निर्धारण के लिए सन् 1948 में एक समिति का गठन किया गया। इस समिति ने मजदूरी निर्धारण के तीन स्तर बताये–

1. न्यूनतम मजदूरी
2. आजीविका मजदूरी
3. उचित मजदूरी

राष्ट्रीय श्रम आयोग के अनुसार– मजदूरी नीति का मुख्य उद्देश्य मजदूरी की दर को श्रमिक की अपेक्ष के अनुरूप लाना है तथा इस प्रकिया में रोजगार वृद्धि को प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए आयोग ने अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए हैं–

- मजदूरी नीति सम्बन्धी योजनाएं एक ओर से आर्थिक निर्णयों पर निर्भर करती है तथा दूसरी ओर मजदूरी की दृष्टि से निर्धारित सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति पर आधारित होती हैं।
- आय एवं मजदूरी नीति जो राष्ट्रीय आय तथा आत्म नियोजन की दृष्टि से बनायी जाय, राष्ट्रीय उद्देश्यों, नियोजन नीतियों एवं विकास के प्रयासों तथा औद्योगिक नीतियों के अनुरूप होनी चाहिए।
- मजदूरी नीति के अर्न्तगत तकनीकि विकास के लिए पर्याप्त व्यवस्था होनी चाहिए। जिससे मजदूरी में वृद्धि के साथ–साथ रोजगार में भी वृद्धि होती रहे।
- मजदूरी नीति का उद्देश्य श्रमिकों की बढ़ती हई दर से वास्तविक मजदूरी उपलब्ध कराना है। मानवीय पूॅजी का उपयोग करना भी उद्योग के विकास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।
- मजदूरी स्तर निर्धारित करने के समय यह ध्यान रखना आवश्यक है कि भारत में बड़े स्तर पर अधिक पूंजी विनियोग करने वाले नियोक्ता भी हैं तथा छोटे स्तर पर कम पूॅजी वाले व्यवसायी भी हैं। अतः यह आवश्यक है कि कार्य प्रमापीकरण किया जाए तथा कार्य वर्गीकरण के आधार पर इन भिन्नताओं कम करने का प्रयास किया जाय।
- मजदूरी निर्धारण का आधार ऐसा स्तर निर्धारित करना है जो श्रमिकों को उचित मजदूरी दें जो कर्मचारियों की कार्यकुशलता में वृद्धि कर सकें तथा नियोक्ता को अधिक लाभ कमाने का अवसर दें। अतः ऐसी व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि मजदूरी निर्धारण के साथ परिवर्तनशील परिस्थितियों में मजदूरी ढांचे का पुनरावलोकन किया जा सकें।

- मजदूरी स्तर बदलते हुए मूल्यो के अनुसार विचार एवं उनमें परिवर्तन करना भी आवश्यक हैं। वास्तविक मजदूरी में किसी प्रकार की कटौती नही होने देने के लिए मौद्रिक मजदूरी का स्तर मूल्य सूचकांक के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए। यदि मूल्य वृद्धि के साथ मजदूरी वृद्धि स्वीकृति कर दी जाती है तो इससे मुद्रा प्रसार की स्थिति उत्पन्न होती है। अतः अधिक उचित यही है कि निर्वाह लागत को कम किया जाए तथा मूल्य वृद्धि के विभिन्न प्रयासों द्वारा रोका जाय।
- किसी भी मजदूरी नीति के निर्धारण के लिए आवश्यक है कि प्रचलित मजदूरी प्रणालियों को ध्यान में रखा जाय।
- असंगठित क्षेत्र में भी राजकीय अथवा अर्द्धशासकीय संस्था द्वारा मजदूरी नियमन किया जाना चाहिए जिससे श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी दी जा सके तथा उन्हें न्याय प्राप्त किया जा सके।
- अच्छी मजदूरी नीति का मूल उद्देश्य दलित वर्ग को संरक्षण प्रदान करना है। इस प्रकार मजदूरी कमीशन, मजदूरी बोर्ड आदि श्रमिक व नियोजक सम्बन्ध में सुधार कर आवश्यक व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया जाना चाहिए।

9.11 मजदूरी नीति निर्धारण में कठिनाइयॉ

मजदूरी निर्धारण एक जटिल समस्या है क्योंकि इसमें और सभी श्रम समस्याऍ केन्द्रित हैं। श्रमिक की उत्पादन क्षमता, उसका जीवन स्तर, उत्पादन लागत, मूल्य निर्धारण, आदि का आधार मजदूरी हैं। ह्वेल्डन के अनुसार, ''जहां मजदूरी योजनाऍ जटिल हैं या श्रमिकों की समझ में नही आती हैं वहॉ हडतालें और प्रदर्शन अधिक होते हैं। अतः मजदूरी निर्धारण तथा उसके भुगतान की प्रणाली निर्धारित करते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वह सरल एवं बोधगम्य हो तथा मजदूरी उचित हो जिससे श्रमिक सन्तुष्ट रह सकें। ''

मजदूरी की दर का निर्धारण करते समय सामान्य आजीविका स्तर, सामान्य मूल्य स्तर तथा औद्योगीकरण की सीमा का ध्यान रखा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त श्रमिको की मॉग एवं पूर्ति , उद्योग की भुगतान क्षमता, श्रमिक संगठन की दृढ़ता सौदेबाजी क्षमता, राजकीय हस्तक्षेप कार्य की प्रकृति, आदि कई बातें मजदूरी को प्रभावित करती हैं। एक ही उद्योग में प्रचलित मजदूरी की दरें अथवा एक ही क्षेत्र में प्रचलित मजदूरी की दरें भी तुलनात्मक दृष्टि से प्रभाव डालती हैं।

इससे यह निर्धारण करना कठिन हो जाता है कि मजदूरी निर्धारण का दीर्घकालीन आधार क्या लिया जाये। आज की क्रियान्वित सभी मजदूरी नीतियों की असफलता का यही कारण है कि मजदूरी निर्धारण के लिए अपनाये गये आधार सर्वमान्य नही हो सके हैं। एक समूह द्वारा स्वीकार किये गये अधिकार दूसरे समूहों द्वारा अस्वीकार कर दिये जाते है। उदाहरण के लिए :

- यदि मुद्रा स्फीति को रोकने का आधार लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि मजदूरी से प्राप्त आय उत्पादन के अनुपात में बढ़नी चाहिए। यह उत्पादन

किसी एक उद्योग का नहीं पूरे राष्ट्र का है, अतः इसके लिए आवश्यक है कि राष्ट्रीय आय की गणना सही ढ़ंग से की जाय।

- यदि कार्य मूल्यांकन को मजदूरी का आधार बनाया जाय तो वह कार्य स्वयं में जटिल है। कई सेवाओं का मूल्यांकन करना भी कठिन होता है।
- राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण भी भारत जैसे बड़े देश में सम्भव नहीं है क्योंकि यहा कई प्रकार की प्रादेशिक भिन्नताएॅ पायी जाती हैं।
- श्रमिक को रोजगार में बनाये रखने के लिए अधिक ऊँची दर भी निर्धारित नहीं की जा सकती क्योंकि ऐसा करने पर उत्पादन पूंजी—प्रधान विधियों का अधिक प्रयोग करने लगेंगे और रोजगार के अवसर कम हो जायेंगे।
- इस प्रकार मजदूरी निर्धारण कई जटिलताओं से पूर्ण है। यही कारण है कि कोई ठोस नीति अभी तक निर्धारित नहीं की जा सकी है।

सफल मजदूरी नीति उसे कहा जा सकता है जिसके अपनाये जाने के उपरान्त मजदूरी को लेकर औद्योगिक अशान्ति समाप्त हो जाय अथवा बहुत कम हो। समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य को पूरा करने के लिए उचित मजदूरी नीति वह कही जा सकती है जिसमें पॅूजी के केन्द्रीकरण को प्रोत्साहन नहीं मिले। भारतीय औद्योगिक ढॉचे के विकास में सार्वजनिक क्षेत्र महत्वपूर्ण रहा है साथ ही उसे श्रमिकों की दृष्टि से आदर्श नियोक्ता माना जाता है। उचित मजदूरी समिति के अतिरिक्त समय—समय पर गठित मजदूरी बोर्डो, श्रम न्यायालयों तथा ट्रिब्यूनलों ने मजदूरी निर्धारण के सिद्धान्त बनाये तथा राष्ट्रीय मजदूरी नीति निर्धारण पर बल दिया है।

सन् 1974 में हुई 'मजदूरी नीति सम्बन्धी सेमिनार' में निम्न समस्याओं पर विचार किया गया :

1. उत्पादकता एवं मजदूरी का सम्बन्ध
2. मूल्य एवं मजदूरी का सम्बन्ध
3. मजदूरी एवं रोजगार का सम्बन्ध
4. मजदूरी, मूल्य एवं उपभोक्ता का सम्बन्ध ।

भारत के लिए उपयुक्त मजदूरी नीति का निर्धारण करते समय उपर्युक्त सम्बन्धों को ध्यान में रखा जाना चाहिए । इसके अतिरिक्त प्रभावी मजदूरी नीति ऐसी होनी चाहिए, जो देश के मूल्य स्तर के अनुसार हो, कार्यकारी वर्ग के सदस्यों को रोजगार उपलब्ध करा सकें तथा कर्मचारियों को सामाजिक न्याय उपलब्ध करा सके। इस त्रिदिवसीय सेमिनार के महत्वपूर्ण निर्णय इस प्रकार है :

1. **उत्पादकता एवं मजदूरी का सम्बन्ध–**

- इस तथ्य में कोई दो मत नहीं हो सकते कि भारतीय श्रम मजदूरी की दर बहुत कम है। अतः हमारी मजदूरी नीति की वास्तविक उद्देश्य श्रमिकों के रहन सहन के स्तर में वृद्धि करना होना चाहिए।

- यह सुझाव दिया गया कि उत्पादन में मजदूरी बिल का भार बहुत कम है फिर भी मजदूरी में क्षेत्रीय स्तर पर न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण किया जाना चाहिए।
- श्रमिकों में कार्य के प्रति यह भावना जाग्रत करनी चाहिए कि वे अपने ही लिए उत्पादन कर रहे हैं जिससे उपभोक्ता के हितो की क्षति नहीं हो। श्रमिक सहभागिता को प्रोत्साहित करने से यह समस्या हल हो सकती है।

2. **मजदूरी एवं रोजगार का सम्बन्ध–** इस दृष्टि से निम्न निर्णय लिये गये :

- मजदूरी से कुछ आय का सम्बन्ध इस प्रकार स्थापित किया जाना चाहिए कि अ– बिना परिश्रम किये जाने वालो को अंश कम किया जा सके, तथा ब– आय में सरकार का हिस्सा अधिक हो।
- मूल्य वृद्धि के कारण मजदूरी में वृद्धि की मांग की जाती है न कि मजदूरी बढाने के कारण मूल्य बढते हैं। अतः किसी प्रकार रोक नही लगायी जानी चाहिए।
- मूल्य वृद्धि मजदूरी के कारण नहीं होती बल्कि एकाधिकार, नियन्त्रित उत्पादन, घाटे का बजट, अनुत्पादन व्यय, आदि कारणों से होती है। अतः इन तत्वों को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

3. **मजदूरी एवं रोजगार का सम्बन्ध–** मजदूरी बोर्ड, श्रम–संघ तथा सामूहिक सौदेबाजी से प्रोत्साहन के फलस्वरूप वेतन, मजदूरी व भत्तो में तीव्र गति से संशोधन होने लगा है। मजदूरी नीति में इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि अधिक ऊँची मजदूरी निर्धारित किये जाने पर श्रम बचाने वाले उपकरणों का प्रयोग प्रारम्भ किया जा सकता है।

- मजदूरी उस सीमा तक ही बढ़ाना सम्भव है जहॉ तक देशवासियों को रोजगार उपलब्ध होता रहे।
- श्रम के स्थान पर स्वचलित मशीनों का प्रयोग साधारण बात नहीं बन जाये।

4. **मजदूरी मूल्य एवं उपभोक्ता का सम्बन्ध–** श्रमिक उत्पादन का साधन भी है और उत्पादित वस्तुओं का उपभोक्ता भी है। मजदूरी के रूप में श्रमिक को प्राप्त राशि प्रभावी मांग का सृजन करती है। प्रभावी मांग अधिक होने पर उत्पादन की क्रिया में वृद्धि होती है। अधिक उत्पादन से श्रमिका की कुशलता में वृद्धि होती है तथा कई लाभ होते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि मजदूरी मूल्य का उपभोक्ता में गहरा सम्बन्ध है। अतः मजदूरी नीति इस प्रकार निर्धारित की जानी चाहिए कि इन तीनों कारणों में सन्तुलन बना रहे।

सुझाव –

मजदूरी का स्तर निर्धारण करने के लिए सुझाव दिया गया है कि :

- न्यूनतम राष्ट्रीय मजदूरी दर निर्धारित की जानी चाहिए। यदि क्षेत्रीय विषमताओं के कारण राष्ट्रीय स्तर पर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के अधिक लाभ नहीं हो तो क्षेत्रीय आधार पर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जानी चाहिए।

- वैधानिक रूप से लिंग भेद के आधार पर मजदूरी की दरों मे अन्तर रखना अनुचित है, अतः सभी श्रमिकों को बिना लिंग भेद के समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जाना चाहिए।
- इसी प्रकार श्रमिक के स्थायी व अस्थायी होने पर भी समान रूप से मजदूरी दी जानी चाहिए।
- श्रमिक वर्ग तथा कार्यालयी कर्मचारी वर्ग के बीच वेतन एवं मजदूरी का अन्तर कम किया जाना चाहिए। यथासम्भव शारीरिक एवं यात्रिक कार्य करने वाले श्रमिक को भी समान वेतन दिया जाना चाहिए ।
- अस्थिर मूल्य अथवा मूल्य वृद्धि की दशा में श्रमिक की वास्तविक मजदूरी में किसी प्रकार की कमी नहीं आनी चाहिए।

9.12 सारांश

मजदूरी से तात्पर्य उस भुगतान से है जो कर्मचारी को उसके कार्य के पारिश्रमिक के रुप में दिया जाता है जो दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक व मासिक हो सकती है। मजदूरी में मूल मजदूरी, महंगाई भत्ते, मकान किराया भत्ते, नगरीय क्षतिपूर्ति भत्ते आदि सम्मिलत किए गए है। अच्छी मजदूरी नीति में एक निश्चित योजना, प्रचलित मजदूरी की दरें, समान प्रमापों का प्रयोग, परिवादों के निवारण हेतु निश्चित प्रणाली, सरल बोधगम्य, लोचशील तथा कम खर्चीली आदि का समावेश होना चाहिए।

उचित मजदूरी भुगतान से प्राप्त होने वाले लाभों को दो भागों में बॉटा जा सकता है । श्रमिकों को उनकी कुशलता के अनुरूप मजदूरी प्रदान करने से मनोबल में वृद्धि, पक्षपात के न्यूनतम अवसर, कार्य में रूचि,पदोन्नति, नैतिक स्तर में सुधार आदि लाभ होते हैं। नियोक्ता को श्रम शक्ति का आयोजन, श्रम तत्व की लागत को नियंत्रित करने, सामूहिक सौदेबाजी में आसानी तथा औद्योगिक शान्ति के विकास में सहायता मिलती है। मजदूरी को निर्धारित करने वाले प्रमुख घटक प्रचलित मजदूरी की दरें, देय क्षमता, निर्वाह–लागत, उत्पादकता, श्रमिकों की सौदेबाजी की क्षमता, कार्य की अपेक्षाएं आदि हैं।

मजदूरी का स्तर निर्धारित करने के लिए राष्ट्रीय मजदूरी दर निर्धारित की जानी चाहिए, बिना लिंग भेद के समान कार्य के लिए समान वेतन दिया जाना चाहिए तथा श्रमिक वर्ग एवं कार्यालय कर्मचारी वर्ग के बीच वेतन एवं मजदूरी का अन्तर कम किया जाना चाहिए।

9.13 शब्दावली

मजदूरी– वह भुगतान जो कर्मचारियों को कार्य के पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता है।

वेतन– वह राशि जो एक निश्चित समय के लिए निश्चित राशि के रूप में दी जाती है।

न्यूनतम मजदूरी –वह मजदूरी जो श्रमिक तथा उसके परिवार की भौतिक आवश्यकताओं को पूरा करे।

उचित मजदूरी– वह मजदूरी है जो श्रमिकों को समान कुशलता, कठिन व अरूचिकर कार्यो के लिए प्राप्त होती है।

निर्वाह मजदूरी– वह मजदूरी है जो श्रमिक को भोजन, आवास, वस्त्र, सामान्य आराम, कठिन समय के लिए बचत सम्बन्धी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करती है।

वास्तविक मजदूरी– वह मजदूरी है जिसमें नकद मजदूरी के अतिरिक्त मिलने वाली सुविधाओं के मौद्रिक मूल्य को भी सम्मिलत किया जाता है।

मजदूरी दर– समय या कार्यानुसार दी जाने वाली वह मजदूरी है जिसमें अधिक समय मजदूरी तथा बोनस आदि को नही जोड़ा जाता है।

9.14 बोध प्रश्न

(अ) बहुविकल्पीय प्रश्न

1. मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 का प्रभावी क्षेत्र है।

   (i) सम्पूर्ण भारत (ii) जम्मू एवं कश्मीर को छोड़कर शेष भारत

   (iii) केन्द्रशासित प्रदेश (iv) केन्द्रशासित प्रदेश को छोड़कर शेष भारत

2. मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 के लिए उपयुक्त सरकार से आशय केन्द्रीय सरकार है।

   (i) रेलवे के लिए (ii) हवाई परिवहन सेवा के लिए

   (iii) खान या खदान के लिए (iv) उपर्युक्त सभी के लिए

3. रेलवे की दशा में जिसमें 1000 से कम व्यक्ति नियुक्त है, मजदूरी भुगतान का समय मजदूरी भुगतान की अवधि के अन्तिम दिन से कितने दिन की समाप्ति से पहले करनी होगी?

   (i) 5 वे दिन (ii) 7 वे दिन

   (iii) 10 वे दिन (iv) 11 वे दिन

4. मजदूरी का भुगतान सामान्यतः किया जा सकता है।

   (i) करेंसी नोटो में (ii) सिक्कों में

   (iii) उपयुक्त दोनों (iv) कोई नहीं

(ब) बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य है या असत्य

(1) मजदूरी भुगतान अधिनियम, 28 मार्च, 1937 से प्रभावी हो।

(2) मजदूरी भुगतान अधिनियम, 1936 अब जम्मू एवं कश्मीर में प्रभावी नहीं है।

(3) लिखित सहमति होने पर मजदूरी चेक से भुगतान हो सकता है।

(4) नियोक्ता में मृतक नियोक्ता के वैधानिक प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं।

9.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ) (i), 2 (iv), 3 (ii), 4 (iii)

(ब) 1–सत्य 2. असत्य 3.सत्य 4. सत्य

9.16 स्वपरख प्रश्न्

1. मजदूरी से क्या तात्पर्य है ? एक आदर्श मजदूरी पद्धति की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए?
2. मजदूरी भुगतान अधिनियम में दी गई मजदूरी शब्द की परिभाषा दीजिए। इसमें क्या सम्मिलत है। तथा क्या सम्मिलत नहीं है। मजदूरी भुगतान के समय सम्बन्धी प्रावधानों का वर्णन कीजिए।
3. एक आदर्श मजदूरी पद्धति का निर्माण कुछ आधारभूत सिद्धान्तों पर निर्भर होता है। इस कथन की विवेचना कीजिए।
4. मजदूरी प्रशासन की आधारभूत समस्या एक सन्तोषजनक मजदूरी प्रणाली के निर्माण की है। यह समस्या कैसे हल हो सकती है?
5. समयानुसार मजदूरी पद्धति से आप क्या समझते हैं ? इसके लक्षण बताइये तथा गुण दोषों की विवेचना कीजिए।
6. कार्यानुसार मजदूरी पद्धति के लक्षण बताइए एवं लाभ दोषों की विवेचना कीजिए। इस प्रणाली को सफल बनाने के लिए अपने सुझाव भी दीजिए।
7. प्रेरणात्मक मजदूरी पद्धति से आप क्या समझते हैं ? इसके प्रमुख लक्षण बताइए तथा विभिन्न रूपों के नाम बताइये।
8. मजदूरी भुगतान अधिनियम के अर्न्तगत श्रमिकों के मजदूरी भुगतान के लिए कौन उत्तरदायी है? मजदूरी की समयावधि तथा मजदूरी भुगतान के सम्बन्ध में वैधानिक प्रावधानों का उल्लेख करें।
9. मजदूरी में कटौतियों से आप क्या समझते हैं ? एक नियोक्ता नियुक्त व्यक्ति की मजदूरी में से कौन–कौन सी कटौतियॉ कर सकता है?

9.17 सन्दर्भ पुस्तकें

5. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
6. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
7. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
8. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979

इकाई 10 कर्मचारी की क्षतिपूर्ति और लाभ (EMPLOYEE'S COMPENSATION AND BENEFITS)

इकाई की रुपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 क्षतिपूर्ति के लिये नियोक्ता का दायित्व
10.3 क्षतिपूर्ति के लिए नियोक्ता का उत्तरदायी न होना
10.4 क्षतिपूर्ति की राशि
10.5 देय होने पर क्षतिपूर्ति का भुगतान तथा त्रुटि के लिए दण्ड की व्यवस्था
10.6 मजदूरी गणना की विधि
10.7 क्षतिपूर्ति का वितरण
10.8 लाभ तथा अन्य लाभकों के लिए योजना
10.9 दुर्घटना लाभ सम्बन्धी प्रावधान
10.10 आश्रित लाभ सम्बन्धी प्रावधान
10.11 डॉक्टरी लाभ सम्बन्धी प्रावधान
10.12 सारांश
10.13 शब्दावली
10.14 बोध प्रश्न
10.15 बोध प्रश्नो के उत्तर
10.16 स्वपरख प्रश्न्
10.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- क्षतिपूर्ति के अर्थ और प्रकृति को समझ सकें।
- क्षतिपूर्ति के लिये नियोक्ता के दायित्व को समझ सकें।
- क्षतिपूर्ति की राशि की गणना विधि का वर्णन कर सकें।
- देय होने पर क्षतिपूर्ति का भुगतान तथा त्रुटि के लिए दण्ड की व्यवस्था का वर्णन कर सकें।
- लाभ तथा अन्य लाभकों के लिए योजना को विस्तार से समझ सकें।

10.1 प्रस्तावना

आज प्रत्येक राष्ट्र में मशीनों से काम करने की होड़ लग गयी है। मशीनों के प्रयोग से उत्पादन में मितव्ययता आती है, किन्तु मशीनों के कारण औद्योगिक दुर्घटनाओं की संख्या भी बढ़ी है। इन छोटी व बड़ी दुर्घटनाओं से कर्मचारी के रोजगार पर भी प्रभाव पड़ता है, जिसके कारण कर्मचारी का शेष जीवन व उसके आश्रितों का जीवन कष्टप्रद हो जाता है। ऐसी दशा में मानवता यही है कि नियोक्ता की ओर से प्रभावित कर्मचारी को क्षतिपूर्ति के रुप में एक सम्मानजनक राशि का भुगतान किया जाये। इस राशि के निर्धारण के लिए ही कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम

की आवश्यकता पड़ी। प्रारम्भ में कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923, श्रमजीवी क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923 के नाम से जाना जाता था। वर्ष 2009 के एक्ट 45 के द्वारा श्रमजीवी शब्द के स्थान पर कर्मचारी शब्द को लाया गया, जो 18 जनवरी 2010 से प्रभावी है।

10.2 क्षतिपूर्ति के लिये नियोक्ता का दायित्व

कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 की धारा 3 में क्षतिपूर्ति के लिये नियोक्ता के दायित्व का वर्णन किया गया है, जो नियोक्ता का दायित्व निर्धारित करती है। इस धारा में पॉच उपधारायें हैं, जिनका विवेचन निम्नलिखित है–

1. **व्यक्तिगत चोट की दशा में–** इस अधिनियम के अनुसार नियोक्ता कर्मचारी की चोट की क्षतिपूर्ति के लिये तभी उत्तरदायी होता है जबकि कर्मचारी को व्यक्तिगत चोट या क्षति 'रोजगार एवं नियोजन से तथा रोजगार या नियोजन के दौरान' पहुँची हो । धारा 3 (1)

2. **व्यावसायिक या पेशेवर कार्य के रोजगार की दशा में**– यदि कोई कर्मचारी इस अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुसार व्यावसायिक या पेशेवर कार्य से सम्बन्धित उत्पन्न रोग का शिकार हो जाता है तो इस अधिनियम के आशय के लिए दुर्घटना द्वारा चोट मानी जायेगी और ऐसी क्षतिपूर्ति के लिये निम्नलिखित दशाएँ हैं–

- यदि कोई कर्मचारी इस अधिनियम की तृतीय अनुसूची के भाग–ए में निर्दिष्ट किसी रोजगार के कार्य से सम्बन्धित रोग से ग्रस्त हो जाता है अथवा
- यदि कोई कर्मचारी तृतीय अनुसूची के भाग–बी निर्दिष्ट किसी रोजगार में किसी नियोक्ता की निरन्तर सेवा में कम से कम 6 माह की अवधि तक रहा हो।
- यदि कोई कर्मचारी इस अधिनियम की तृतीय अनुसूची के भाग–स में निर्दिष्ट किसी रोजगार में एक या अधिक नियोक्ताओं की सेवा में केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित अवधि तक निर्धारित सेवा में रहते हुए उस व्यवसाय से सम्बन्धित किसी व्यावसायिक रोग से ग्रसित हो जाता है, तो नियोक्ता को दुर्घटना से उत्पन्न क्षति के रूप में उत्तरदायी ठहराया जा सकता है।

3. **एक से अधिक नियोक्ता की दशा में**– यदि एक कर्मचारी अनुसूची के भाग में निर्दिष्ट किसी रोजगार से संलग्न है। यदि वह इस अवधि में एक से अधिक नियोक्ता के अधीन सेवारत रहा है, वह उस रोग से प्रभावित हो जाता है, जो उक्त रोजगार से सम्बन्धित है तो धारा के आशय के लिए यह माना जाएगा कि वह रोजगार से सम्बन्धित रोग से चोटग्रस्त या क्षतिग्रस्त हुआ है। ऐसी क्षति के लिए नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी होंगे। ऐसी परिस्थिति में विभिन्न नियोक्ताओं के बीच क्षतिपूर्ति के दायित्व का अनुपात वही होगा जो परिस्थिति के अनुसार कमिश्नर उचित समझे। धारा 3 (2–A)

4. **केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार को अनुसूची 3 के विवरण में रोगों को जोड़ने का अधिकार**– अनुसूची 3 में किसी भी रोजगार से सम्बन्धित नये रोगों को जोड़ने का अधिकार केन्द्रीय या राज्य सरकार को है। ऐसा करने के लिए सरकार को राजकीय राज–पत्र में अधिसूचना जारी कर तीन माह की सूचना देनी पड़ती है। इस

प्रकार जोड़े गए रोगों से प्रभावित होने पर रोजगार से उत्पन्न चोट या क्षति मानी जाएगी और नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकेगा। अधिसूचना केन्द्रीय सरकार द्वारा जारी करने पर उन सभी क्षेत्रों में लागू होगी, जिन पर यह अधिनियम लागू होता है।

5. **अन्य दशाओं में क्षतिपूर्ति–** उपर्युक्त उपधारा (2–A) तथा 3 के अर्न्तगत वर्णित रोगों के अतिरिक्त किसी भी रोग से उत्पन्न क्षति की पूर्ति तब तक नहीं की जाएगी जब तक कि वह रोग उसके रोजगार से तथा रोजगार के दौरान हुई दुर्घटना से उत्पन्न विशिष्ट चोट से प्रत्यक्ष रूप से उत्पन्न न हुआ हो। धारा 3 (4)

10.3 क्षतिपूर्ति के लिए नियोक्ता का उत्तरदायी न होना

अधिनियम की धारा 3 से स्पष्ट होता है कि कुछ ऐसी परिस्थितियॉ हैं, जब नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होता है। इन परिस्थितियों को अग्र प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **तीन दिन से कम अवधि की अयोग्यता होने की दशा में–** किसी भी ऐसी चोट के लिए जिनके परिणामस्वरूप कर्मचारी तीन दिन से कम अवधि के लिए पूर्ण अथवा आंशिक रूप से कार्य करने के लिए अयोग्य हुआ हो तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा।
2. **कर्मचारी द्वारा शराब अथवा औषधि के प्रभाव में होने की दशा में–** यदि दुर्घटना के समय कर्मचारी शराब अथवा औषधियों के प्रभाव में रहा हो और उसी के परिणामस्वरूप वह चोटग्रस्त हो जाता है, तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा, किन्तु इस परिस्थिति में कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है तो नियोक्ता को क्षतिपूर्ति का दायी माना जाएगा।
3. **सुरक्षा नियमों की अवहेलना की दशा में–** यदि कोई कर्मचारी नियोक्ता द्वारा दिए गए सुरक्षा के स्पष्ट आदेश अथवा इस हेतु बनाए गए नियम का उल्लंघन करने से चोटग्रस्त हो जाता है तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए दायी नहीं होगा। किन्तु इस क्रम में कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है तो नियोक्ता अपने दायित्व से छुटकारा नहीं पा सकता है।
4. **सुरक्षा साधन को जानबूझ कर हटाने की दशा में–** यदि कोई कर्मचारी जानबूझकर किसी ऐसे सुरक्षा के उपाय या साधन को हटाता है, जिसके सम्बन्ध में उसे ज्ञात है कि ऐसे साधन की व्यवस्था कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए है और उसके परिणामस्वरूप वह चोटग्रस्त हो जाता है तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के दायित्व से मुक्त होगा किन्तु इन साधनों के हटाने से कर्मचारियों की मृत्यु हो जाती है तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के दायित्व से मुक्त नहीं होगा।
5. **दुर्घटना रोजगार के दौरान उत्पन्न बीमारी से नहीं होने की दशा में–** जिस दुर्घटना से कर्मचारी क्षतिग्रस्त हुआ है, वह दुर्घटना रोजगार के दौरान उत्पन्न बीमारी से नहीं हो तो नियोक्ता की क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।
6. **एक ही नियोक्ता के अधीन छः महीने तक कार्यरत न रहने पर रोग होने पर–** यदि कोई कर्मचारी किसी एक ही नियोक्ता के अधीन निरन्तर छः महीने तक

कार्य नहीं करता है तो उसे उसी अनुसूची 3 के भाग बी में निर्दिष्ट कोई रोग हो जाता है तो नियोक्ता उस रोग से उत्पन्न क्षति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

8. **दीवानी न्यायालय में वाद प्रस्तुत करने पर–** यदि किसी कर्मचारी ने अपनी चोट की क्षतिपूर्ति के लिए नियोक्ता के विरूद्ध दीवानी न्यायालय में वाद प्रस्तुत करता है तो वह कर्मचारी क्षतिपूर्ति के लिए नियोक्ता को उत्तरदायी नहीं ठहरा सकता है।
9. **कर्मचारी न होने पर–** यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के अनुसार कर्मचारी नहीं है और वह चोटग्रस्त हो जाता है तो उसका नियोक्ता उसकी क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।
10. **अन्य रोग की दशा में–** यदि कर्मचारी अपने रोजगार से उत्पन्न होने वाले निर्दिष्ट रोग के अतिरिक्त अन्य रोग से ग्रसित होता है तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के लिए उत्तरदायी नहीं होगा।

10.4 क्षतिपूर्ति की राशि

कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम का मुख्य उद्देश्य कर्मचारियों को दुर्घटना से उत्पन्न चोट या क्षति के लिये क्षतिपूर्ति का भुगतान करना है किन्तु दुर्घटना के कारण चोटों की प्रकृति में भिन्नता होती है। इस अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार अलग–अलग परिस्थितियों में क्षतिपूर्ति की राशि अग्रलिखित होगी –

1. **मृत्यु की दशा में क्षतिपूर्ति की गणना–** यदि चोट के कारण कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है तो मृतक कर्मचारी की मासिक मजदूरी के 50 प्रतिशत के बराबर राशि को सम्बन्धित घटक से गुणा करके क्षतिपूर्ति की राशि ज्ञात की जायेगी अथवा 1 लाख 20 हजार रुपये की राशि में से जो भी अधिक होगी।

सूत्र के रूप में,

क्षतिपूर्ति की राशि = (मृतक की मासिक मजदूरी × 50 / 100) × सम्बन्धित घटक

अथवा

रु0 1,20,000 की राशि, दोनों में से जो भी अधिक हो, मृतक के आश्रितों को क्षतिपूर्ति के रूप में प्राप्त होगी। धारा 4 (1) (a)

2. **स्थायी पूर्ण अयोग्यता की दशा में क्षतिपूर्ति की गणना–** यदि चोट के कारण कर्मचारी स्थायी रूप से पूर्ण अयोग्य हो जाता है तो उसे अपनी मासिक मजदूरी के 60 प्रतिशत के बराबर की राशि को सम्बन्धित घटक से गुणा करने से प्राप्त राशि अथवा रु0 1,40,000 की राशि दोनों में जो अधिक हो, का भुगतान किया जाता है।

सूत्र के रूप में

क्षतिपूर्ति की राशि = (कर्मचारी की मासिक मजदूरी × 60 / 100) × सम्बन्धित घटक

अथवा

रु0 1,40,000 की राशि, दोनों में से जो अधिक हो। धारा 4 (1) (b)

यहॉ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त उपधाराओं में निर्धारित राशि को केन्द्रीय सरकार राजपत्र में अधिसूचना जारी करके समय–समय पर बढ़ा सकता है।

3. **स्थायी आंशिक अयोग्यता की दशा में क्षतिपूर्ति की गणना–** यदि चोट के फलस्वरूप कर्मचारी को स्थायी आंशिक अयोग्यता हो जाती है तो उसकी क्षतिपूर्ति की गणना निम्न प्रकार से होगी –

प्रथम अनुसूची के दूसरे भाग में निर्दिष्ट चोट की क्षतिपूर्ति की राशि स्थायी पूर्ण अयोग्यता की स्थित में दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि का वही प्रतिशत अनुपात होगा जितनी की उस चोट से अनुसूची के अनुसार कर्मचारी की आय कमाने की क्षमता में प्रतिशत या आनुपातिक कमी आई है।

सूत्र के रूप में,

क्षतिपूर्ति की राशि = (स्थायी पूर्ण अयोग्यता की दशा में क्षतिपूर्ति की राशि × चोट के कारण अनुसूची के अनुसार आय कमाने की क्षमता में आयी कमी का प्रतिशत)

धारा 4 (1) (c)

- प्रथम अनुसूची में वर्णित चोटों के अतिरिक्त कोई चोट आई है तो उसकी क्षतिपूर्ति की राशि स्थायी पूर्ण अयोग्यता की दशा में दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि का वही प्रतिशत होगा, जितनी की उस चोट से कर्मचारी की आय कमाने की क्षमता में आनुपातिक कमी आने का योग्यता प्राप्त चिकित्सक ने अनुमान लगाया है।

  सूत्र के रूप में,

क्षतिपूर्ति की राशि = (स्थायी पूर्ण अयोग्यता की दशा में क्षतिपूर्ति की राशि × चोट के कारण चिकित्सक द्वारा अनुमानित आय कमाने की क्षमता में आयी आनुपातिक कमी का) धारा 4 (1) (d)

4. **पूर्ण आंशिक अस्थायी अयोग्यता की दशा में क्षतिपूर्ति की गणना–** यदि किसी कर्मचारी को किसी चोट के कारण अस्थायी रूप से पूर्ण या आंशिक अयोग्यता हो जाती है तो उसे अर्द्धमासिक आधार पर क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान किया जायेगा। यह क्षतिपूर्ति की राशि कर्मचारी के मासिक वेतन के 25 प्रतिशत के बराबर होगी ।

सूत्र रूप में,

क्षतिपूर्ति की राशि = मासिक मजदूरी × 25 / 100

धारा 4 (1) (d)

भारत के बाहर घटित दुर्घटना के सम्बन्ध में क्षतिपूर्ति

यह दुर्घटना भारत के बाहर होती है तो कर्मचारी की क्षतिपूर्ति की राशि की गणना करते समय कमिश्नर दुर्घटना वाले देश के कानून के अनुसार निर्धारित की गई राशि को ध्यान में रखेगा तथा इस देश के कानून के अनुसार निर्धारित क्षतिपूर्ति की राशि को उस देश के कानून के अनुसार निर्धारित क्षतिपूर्ति की राशि से हटा देगा।

धारा 4 (1–A)

केन्द्रीय सरकार का अधिकार

केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार है कि वह राजकीय राज–पत्र में अधिसूचना जारी करके उपर्युक्त उपधारा 1 के मासिक मजदूरी के सम्बन्ध में आवश्यक परिर्वतन कर सकती है। धारा 4 (1–B)

वास्तविक चिकित्सा व्यय का भुगतान– रोजगार के दौरान चोट या क्षति की चिकित्सा के व्यय का भुगतान कर्मचारी को उसके द्वारा किये गये वास्तविक व्यय के बराबर होगी। धारा 4 (1–A)

आनुपातिक भुगतान– यदि किसी कर्मचारी की अयोग्यता किसी अर्द्ध मासिक भुगतान को देय तिथि से पूर्व ही समाप्त हो जाती है तो ऐसी दशा में उस अर्द्धमास में अयोग्यता अवधि के अनुपात में देय राशि का भुगतान किया जायेगा।

धारा 4 (3)

दाह संस्कार के व्यय का भुगतान– यदि किसी चोट के कारण कर्मचारी की मृत्यु हो जाती है तो नियोक्ता क्षतिपूर्ति के अतिरिक्त कम से कम 5,000 की राशि आयुक्त के पास और जमा करवायेगा। आयुक्त इस राशि को मृतक कर्मचारी के सबसे बड़े आश्रित को दाह संस्कार के खर्च के लिए दे देगा। यदि मृतक का कोई आश्रित न हो तो जिसने दाह संस्कार के लिये खर्च किया हो उसी को वह राशि दे दी जायेगी ।

धारा 4 (4)

केन्द्रीय सरकार चाहे तो राजकीय राजपत्र में अधिसूचना जारी करके उक्त राशि में समय–समय पर वृद्धि कर सकती है।

10.5 देय होने पर क्षतिपूर्ति का भुगतान तथा त्रुटि के लिए दण्ड की व्यवस्था

1. **देय होने पर भुगतान–** अधिनियम की धारा 4 के अर्न्तगत क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान देय होते ही तुरन्त किया जायेगा।

2. **स्वीकृत अस्थायी भुगतान–** यदि कोई नियोक्ता कर्मचारी द्वारा दावा की गई राशि की सीमा तक दायित्व स्वीकार नहीं करता है तो उस स्थिति में जिस सीमा तक वह दायित्व स्वीकार करता है, उस सीमा तक वह अस्थायी भुगतान करने के लिए बाध्य होगा। अस्थायी भुगतान की इस राशि को आयुक्त के पास जमा करवानी होगी अथवा कर्मचारी को देनी होगी, ऐसा करने से कर्मचारी को आगे क्षतिपूर्ति की मॉग करने का अधिकार समाप्त नहीं होगा ।

3. **भुगतान करने की त्रुटि की दशा में दण्ड–** यदि कोई नियोक्ता क्षतिपूर्ति की राशि के देय होने के एक महीने में भुगतान नहीं करता तो आयुक्त निम्नलिखित निर्देश दे सकता है–

(a). आयुक्त नियोक्ता को निर्देश देगा कि बकाये रकम के अतिरिक्त 12 प्रतिशत की साधारण ब्याज दर के साथ भुगतान करे, अथवा केन्द्रीय सरकार के द्वारा घोषित किसी अनुसूचित बैंक की ब्याज दर की अधिकतम सीमा तक भुगतान करे। इसके लिए केन्द्रीय सरकार राजकीय राज–पत्र में अधिसूचना जारी करेगी तथा

(b). यदि आयुक्त की राय में भुगतान में विलम्ब का कोई न्यायोचित कारण नहीं है तो वह उस राशि के साथ दण्ड वसूल करने का निर्देश भी दे सकता है। दण्ड की राशि उस राशि के 50 प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है।

किन्तु दण्ड की राशि का आदेश देने से पहले नियोक्ता को विलम्ब के कारण को स्पष्ट करने का अवसर दिया जायेगा।

स्पष्टीकरण— उपर्युक्त के लिए अनुसूचित बैंक से आशय उस बैंक से है जिसे रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया एक्ट, 1934 की द्वितीय अनुसूची में शामिल किया गया हो

4. **कर्मचारी या आश्रित को भुगतान**— उपर्युक्त उपधारा 3 के अन्तर्गत ब्याज और दण्ड का भुगतान कर्मचारी या आश्रित जैसी भी परिस्थित हो को किया जायेगा।

10.6 मजदूरी गणना की विधि

इस अधिनियम में तथा इसके उद्देश्य के लिए मासिक मजदूरी से आशय एक महीने की सेवा के लिए चुकायी जाने वाली मजदूरी से है चाहे वह मजदूरी महीने के हिसाब से अथवा किसी अन्य समयावधि के हिसाब से या कार्यानुसार चुकायी जाती हो इसकी गणना धारा 5 के अनुसार निम्न प्रकार की जायेगी—

(a). **कम से कम बारह महीनों की निरन्तर सेवा की दशा में मासिक मजदूरी**— जब कोई कर्मचारी दुर्घटना के तुरन्त पूर्व के कम से कम बारह महीनों तक उस नियोक्ता की सेवा में रहा हो, जो क्षतिपूर्ति करने का उत्तरदायी है तो उस श्रमिक की मासिक मजदूरी उस सकल मजदूरी का बारहवॉ भाग होगी, जो पिछले बारह महीनों में उस नियोक्ता द्वारा देय हुई हो ।

सूत्र के रूप में,

मासिक मजदूरी = पिछले बारह महीने में देय हुई सकल मजदूरी / 12

(b). **एक महीने से कम की सेवा की दशा में**— यदि दुर्घना से पूर्व कर्मचारी की निरन्तर सेवा एक महीने से कम की हो तो ऐसी दशा में कर्मचारी की मासिक मजदूरी उस राशि के बराबर होगी जो दुर्घटना के पूर्व उसी नियोक्ता द्वारा समान कार्य पर लगाये गये अन्य कर्मचारी द्वारा औसत रूप से प्रतिमाह उपार्जित की जा रही हो, यदि नियोक्ता के यहॉ कोई कर्मचारी नियुक्त न हो तो उसी क्षेत्र में समान कार्य पर नियुक्त कर्मचारी द्वारा औसत रूप से प्रतिमाह उपार्जित की जाने वाली औसत राशि ही औसत मजदूरी मानी जायेगी।

(c). **अन्य दशाओं में मासिक मजदूरी**— अन्य किसी भी दशा में जिसमें वे दशायें भी सम्मिलत हैं जब आवश्यक सूचना के अभाव में इस धारा के वाक्य बी के अन्तर्गत मासिक मजदूरी की गणना सम्भव न हो, कर्मचारी की मासिक मजदूरी, दुर्घटना के तुरन्त पूर्व की निरन्तर सेवा में उपार्जित सकल आय को तीन गुणा करने के बाद उसमें कुल कार्य के दिनों का भाग देने पर प्राप्त राशि ही मासिक मजदूरी होगी।

सूत्र के रूप में —

मासिक मजदूरी = कुल कार्य के दिन में प्राप्त सकल आय / कुल कार्य के दिन × 30 धारा 5(c)

स्पष्टीकरण– इस धारा के उद्देश्यों के लिए निरन्तर सेवा से आशय सेवा के उस निरन्तर काल से है, जिसमें श्रमिक 14 दिन से अधिक समय के लिए कार्य से अनुपस्थित न रहा हो।

10.7 क्षतिपूर्ति का वितरण

क्षतिपूर्ति के वितरण के लिए अधिनियम की धारा 8 में निम्नलिखित प्रावधान हैं–

1. **क्षतिपूर्ति की राशि आयुक्त के पास जमा करवाना**– चोट के फलस्वरूप किसी कर्मचारी को, जो किसी वैधानिक अयोग्यता के अन्तर्गत आता है, एक मुश्त दी जाने वाली क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान आयुक्त के पास उस राशि को जमा करके ही किया जा सकता है। यदि किसी नियोक्ता द्वारा प्रत्यक्ष रूप से भुगतान कर दिया जाता है तो यह क्षतिपूर्ति का भुगतान नहीं माना जायेगा। परन्तु यदि किसी कर्मचारी की मृत्यु हो गई हो तो नियोक्ता उसके किसी आश्रित को क्षतिपूर्ति के रूप में कुल तीन महीने की मजदूरी के बराबर राशि अग्रिम दे सकता है। किन्तु यह राशि कुल देय क्षतिपूर्ति की राशि से अधिक नही हो सकती है।
2. **अन्य राशि आयुक्त के पास जमा करवाना**– नियोक्ता को अन्य कोई भी राशि आयुक्त के पास ही जमा करवानी होगी, जो कर्मचारी को क्षतिपूर्ति के रूप में चुकायी जानी है। किन्तु यह राशि दस रुपये से कम नहीं होनी चाहिए।
3. **आयुक्त की रसीद**– आयुक्त द्वारा दी गई जमा रसीद क्षतिपूर्ति के भुगतान के दायित्व से मुक्त होने का पर्याप्त प्रमाण मानी जायेगी।
4. **आश्रितों की सूचना**– क्षतिपूर्ति की राशि के वितरण के लिए यदि आयुक्त उपयुक्त समझता है तो मृतक के आश्रितों के लिए एक सूचना प्रकाशित करेगा अथवा प्रत्येक आश्रित को उचित विधि से सूचित करेगा, जिसके द्वारा निर्धारित तिथि पर उन्हें क्षतिपूर्ति की राशि के बॅटवारे का निर्धारण करने हेतु बुलवाया जायेगा। यदि आयुक्त आवश्यक जॉच पड़ताल के बाद इस बात से सन्तुष्ट हो जाय कि मृतक कर्मचारी का कोई आश्रित नहीं है तो वह शेष राशि को नियोक्ता को वापस कर देगा।
5. **क्षतिपूर्ति की राशि का आश्रितों में वितरण**– किसी मृतक कर्मचारी की की दशा में जमा की गई क्षतिपूर्ति की राशि में से उपधारा 4 के अन्तर्गत कटौती के बार शेष राशि को उसके आश्रितों अथवा किसी भी आश्रितों को उस अनुपात में, जिसे आयुक्त उचित समझे, बॉट दिया जायेगा अथवा यदि आयुक्त उचित समझे तो वह उक्त राशि को किसी भी एक आश्रित को दे सकता है।
6. **अन्य व्यक्ति को देय होने पर**– यदि आयुक्त के पास जमा क्षतिपूर्ति कि राशि किसी अन्य ऐसे व्यक्ति को देय है जो न तो स्त्री है और न वैधानिक अयोग्ता

के अन्तरर्गत आने वाला व्यक्ति हो तो आयुक्त उस राशि का भुगतान ऐसे अन्य व्यक्ति को कर देगा।

7. **स्त्री या वैधानिक अयोग्ता व्यक्ति की दशा में–** यदि आयुक्त के पास एक मुश्त जमा राशि किसी स्त्री या वैधानिक अयोग्यता के अन्तर्गत आने वाले व्यक्ति को देय हो तो वह उस राशि को उनके लाभ के लिए विनियोग कर सकता है या अन्य किसी स्थान पर लगा सकता है। यदि वैधानिक अयोग्यता की अवधि में अर्द्धमासिक भुगतान किया जाता है, तो आयुक्त स्वयं अपनी ओर से अथवा उसके ओर से किसी व्यक्ति द्वारा आवेदन करने पर कर्मचारी के किसी भी आश्रित को या अन्य व्यक्ति को जिसे वह कर्मचारी के कल्याण की दृष्टि से सर्वोतम समझता है, वैधानिक अयोग्यता के दौरान भुगतान करने का निर्देश दे सकता है।

8. **पूर्व आदेश में बदलाव–** यदि आयुक्त को ऐसा कोई आवेदन किया जाता है अथवा अन्य किसी प्रकार से आयुक्त इस बात से संतुष्ट हो जाय कि माता–पिता द्वारा बच्चों की उपेक्षा के कारण अथवा किसी आश्रित की परिस्थितियों में परिर्वतन के कारण अथवा अन्य पर्याप्त कारण के आधार पर, पहले जारी किये गये क्षतिपूर्ति वितरण एवं भुगतान के आदेश में, अथवा ऐसे किसी आश्रित को देय किसी राशि के विनियोग से इत्यादि से सम्बन्धित आदेश में परिर्वतन करना आवश्यक है तो वह मामले की परिस्थितियों के अनुसार पहले वाले आदेश में बदलाव, जैसा वह उचित समझे, किये जाने का आदेश दे सकता है। किन्तु व्यक्ति के विरुद्व ऐसा को भी आदेश तब तक जारी नहीं किया जा सकता है जब तक की ऐसे व्यक्ति को यह कारण बताने को अवसर न दे दिया जाय ।

9. **कपट आदि की दशा में भुगतान करने की दशा में–** यदि आयुक्त उपधारा 8 के अन्तर्गत किसी आदेश में इस कारण से परिर्वतन करता है कि किसी व्यक्ति ने क्षतिपूर्ति की राशि का भुगतान किसी कपट, झूठे नाम अथवा अनुचित साधनों द्वारा प्राप्त किया है तो इस प्रकार की दी गई राशि की वसूली धारा 33 में दी गई रीति के अनुसार की जायेगी।

क्षतिपूर्ति की राशि का हस्तांकन, कुर्की अथवा प्रभार से मुक्त होना

इस अधिनियम के प्रावधानों के अतिरिक्त, इस अधिनियम के अर्न्तगत देय क्षतिपूर्ति की एक मुश्त राशि किसी प्रकार से अभिहस्तांकित, कुर्क अथवा प्रभारित नहीं की जा सकती है। इसके अतिरिक्त उस राशि को अधिनियम के प्रभाव के अतिरिक्त किसी भी व्यक्ति को हस्तान्तरित नहीं किया जा सकता है। न उस राशि को किसी भी दावे के विरूद्ध समायोजित नहीं किया जा सकता है। धारा 9

10.8 लाभ तथा अन्य लाभकों के लिए योजना

कर्मचारी राज्य बीमा योजना कर्मचारियों की लाभ की योजना है। इस योजना से बीमित तथा उनके आश्रितों को लाभ प्राप्त करने का अधिकार होता है। इस अधिनियम के अनुसार बीमित तथा उनके आश्रितों को निम्नलिखित लाभ प्राप्त करने का अधिकार होगा –

1. **बीमारी लाभ**– प्रत्येक बीमित व्यक्ति को बीमारी की दशा में सामयिक भुगतान प्राप्त करने का अधिकार होता है किन्तु यह अधिकार तभी प्राप्त हो सकता है जबकि बीमारी उचित रूप से नियुक्त चिकित्सक या निगम द्वारा मुख्य रूप से इसके लिए नियमन के अनुसार समान योग्यता एवं अनुभव प्राप्त अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित हो।

2. **प्रसूति लाभ**– किसी बीमित महिला को प्रसूति लाभ उन दशाओं में मिल सकता है जब वह महिला प्रसूति अवस्था में हो, अथवा उस महिला का अकाल प्रसव हो गया हो, अथवा उस महिला के गर्भधारण करने या प्रसूति अवस्था में या समय से पूर्व बच्चे के जन्म या गर्भपात हो जाने के कारण बीमार पड़ गई हो। ऐसी दशाओं में मिलने वाले सामयिक भुगतान को प्रसूति लाभ कहा जायेगा। ऐसी बीमित महिला प्रसूति लाभ तभी प्राप्त कर सकेगी जब नियमन के अनुसार निर्दिष्ट अधिकारी प्रमाणित कर दिया हो।

3. **अयोग्यता लाभ**– किसी बीमित व्यक्ति को, जो इस अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारी के रूप में कार्य करते हुए चोटग्रस्त होकर अयोग्य हो गया हो तो उसे सामयिक भुगतान प्राप्त करने का अधिकार होगा, जिसे अयोग्यता लाभ कहा जायेगा। किन्तु वह ऐसे लाभ को तभी प्राप्त कर सकेगा जब निर्दिष्ट अधिकारी द्वारा उसे भुगतान प्राप्त करने के योग्य प्रमाणित कर दिया हो।

4. **आश्रित लाभ**– यदि किसी बीमित व्यक्ति की इस अधिनियम के अधीन रोजगार से उत्पन्न होने वाली चोट लग जाने के कारण मृत्यु हो जाती है तो उसके मिश्रित को क्षतिपूर्ति के लिए सामयिक भुगतान प्राप्त करने का अधिकार होगा, जिसे आश्रित लाभ कहा जायेगा।

5. **डॉक्टरी लाभ**– बीमित व्यक्तियों को डॉक्टरी एवं परिचर्या सुविधा प्राप्त होगा, जिसे डॉक्टरी लाभ कहा जायेगा।

6. **अन्त्येष्ठि किया खर्च लाभ**– मृतक बीमित व्यक्ति के परिवार के सबसे बड़े व्यक्ति को मृतक के अन्त्येष्ठी किया के व्यय के लिए धनराशि प्राप्त करने का अधिकार होगा। यदि मृतक बीमित व्यक्ति के परिवार के साथ नहीं रह रहा था तो उसकी अन्त्येष्ठी किया या खर्च करने वाले व्यक्ति को यह धनराशि पाने का अधिकार होगा।

किन्तु भुगतान की राशि केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित राशि से अधिक नहीं हो सकती है। इस राशि की मॉग बीमित मृत्यु के बाद तीन महीने अन्दर अथवा निगम या किसी अधिकृत अधिकारी द्वारा बढ़ाई गई अवधि के अन्दर कर लेनी चाहिए ।

नोट – धारा 47 को वर्ष 1989 के संशोधन के बाद तथा धारा 48 को वर्ष 1966 के संशोधन से हटा दिया गया है।

अयोग्यता लाभ की शर्तें

इस अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित व्यक्ति अयोग्यता लाभ प्राप्त करने के अधिकारी होंगे–

- जो व्यक्ति कम से कम तीन दिनों के लिए अस्थायी रूप से अयोग्य दुर्घटना के दिन छोड. कर हुआ हो, अथवा

- जो व्यक्ति स्थायी रूप से आंशिक या पूर्ण रूप से अयोग्य हो गया हो।

10.9 दुर्घटना लाभ सम्बन्धी प्रावधान

1. **रोजगार के दौरान होने वाली दुर्घटना का अनुमान–** इस अधिनियम के अन्तर्गत जब तक कोई विपरीत बात सिद्ध नहीं हो जाती है, तब तक बीमित व्यक्ति को होने वाली दुर्घटना, रोजगार के दौरान तथा रोजगार से उत्पन्न हुई समझी जायेगी।
2. **विनियमों आदि का उल्लंघन करके कार्य करते समय होने वाली दुर्घटनाएँ–** निम्न दशाओं में होने वाली दुर्घटना रोजगार के दौरान तथा रोजगार से उत्पन्न दुर्घटना ही समझी जायेगी, चाहे दुर्घटना के समय बीमित कर्मचारी उस पर लागू होने वाला विनियमों का उल्लघंन करके कार्य कर रहा हो या नियोक्ता के निर्देशों के अभाव में कार्य कर रहा हो –

- यदि वह उल्लंघन या अवहेलना नहीं करता तो भी दुर्घटना हो जाती है, तथा
- यदि उसने वह कार्य नियोक्ता के व्यापार या व्यवसाय के उद्देश्य तथा सम्बन्ध में ही किया हो।

3. **नियोक्ता के वाहन में यात्रा करते समय दुर्घटनाओं का होना–** यदि बीमित कर्मचारी अपनी नियोक्ता की स्पष्ट या गर्भित अनुमति से किसी भी वाहन से जो नियोक्ता के हैं, अपने कार्यस्थल पर आने जाने के दौरान दुर्घटनाग्रस्त हो जाये तो ऐसी स्थित में उक्त दुर्घटना रोजगार के दौरान तथा तथा रोजगार से उत्पन्न हुई समझी जायेगी, चाहे वह नियोक्ता द्वारा उसी वाहन में यात्रा करने के लिए बाध्य नहीं किया गया था, यदि–

(1). दुर्घटना उस समय भी हो जाने का अनुमान था जब उसे इस प्रकार बाध्य नहीं किया जाता, तथा

(2). दुर्घटना के समय वह वाहन–नियोक्ता द्वारा अथवा उसकी ओर से किसी अन्य व्यक्ति द्वारा परिचालित हो रहा हो।

4. **आकस्मिक संकट का सामना करते समय दुर्घटनाएँ–** यदि कोई बीमित कर्मचारी नियोक्ता के व्यापार या व्यवसाय के लिए किसी स्थान पर कार्य करते समय दुर्घटनाग्रस्त हो जाये और यदि वह दुर्घटना किसी आकस्मिक संकट से बचाने के लिए कार्य करते हुए हो जाये तो इसे रोजगार के दौरान तथा रोजगार से उत्पन्न दुर्घटना ही मानी जायेगी।
5. **निवास स्थान से कार्यस्थल जाने और वापस आने के दौरान दुर्घटनाएँ–** यदि दुर्घटना कर्मचारी के निवास स्थान से कार्यस्थल तक जाने के दौरान और कार्यस्थल से निवास स्थान तक आने के दौरान हो जाती है तो उसे भी रोजगार के दौरान दुर्घटना ही मानी जायेगी, यदि परिस्थितियों, समय एवं स्थान के आधार पर ऐसा निष्कर्ष निकलता है।

10.10 आश्रित लाभ सम्बन्धी प्रावधान

1. यदि कोई बीमित व्यक्ति इस अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारी होने के नाते किसी रोजगार सम्बन्धी चोट लग जाने के कारण मर जाता है चाहे दुर्घटना

के दौरान सामयिक भुगतान प्राप्त हो गया हो या नहीं तो उसके आश्रित धारा 2 में वर्णित को आश्रित लाभ उन दरों, उस अवधि तथा उन शर्तों के अनुसार दिया जायेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित की जायेगी।

2. यदि उक्ति बीमारी कर्मचारी का इस अधिनियम के अनुसार कोई आश्रित नहीं है तो आश्रित लाभ उस कर्मचारी के अन्य आश्रितों को उन दरों, उस अवधि तथा उन शर्तों के अनुसार दे दिया जायेगा, जो केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित कर की जायेगी

व्यावसायिक रोग

1. यदि कोई कर्मचारी इस अधिनियम के तृतीय अनुसूची के भाग ए में निर्दिष्ट किसी व्यवसायिक रोग से ग्रसित हो अथवा उसी अनुसूची के भाग सी के रोग से लगातार उतनी अवधि तक ग्रसित हो जो निगम द्वारा उस रोजगार के लिए तय किया गया हो तो उसे रोजगार के दौरान उत्पन्न व्यावसायिक रोग माना जायेगा।
2. केन्द्रीय सरकार या राज्य सरकार चाहे तो अनुसूची 3 में कुछ और रोगों को जोड़ सकती है।
3. उपर्युक्त उप–धारा 1 और 2 के अतिरिक्त कर्मचारी को कोई अन्य लाभ तब तक देय नही होगा जब तक की प्रत्यक्ष रूप से रोजगार के दौरान दुर्घटना से चोटग्रस्त न हुआ हो ।
4. इस धारा के लागू होने पर धारा 51 ए के प्रावधान लागू नही होंगे।

अन्य किसी अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति या हर्जाना प्राप्त अथवा वसूल करने का प्रतिबन्ध– कोई भी बीमित व्यक्ति अथवा उसके आश्रित प्रस्तुत अधिनियम के अन्तर्गत किसी व्यावसायिक चोट के लिए कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 अथवा किसी अन्य कानून के अन्तर्गत नियोक्ता अथवा अन्य किसी व्यक्ति से क्षतिपूर्ति अथवा हर्जाना पाने का अधिकारी नहीं होगा।

आश्रित लाभ पर पुनर्विचार

इस अधिनियम के अन्तर्गत निगम आश्रित लाभ के मामले पर कभी भी पुनर्विचार कर सकता है। यदि वह इस बात से सन्तुष्ट हो जाये कि पहले दिया गया निर्णय किसी महत्वपूर्ण तथ्य के छुपाव या मिथ्यावर्णन द्वारा प्रभावित है, या दावेदार का जन्म, मृत्यु, या विवाह, या पुनर्विवाह होने अथवा अयोग्यता की समाप्ति या उसकी 18 वर्ष की आयु हो जाने से उसका निर्णय अधिनियम की व्यवस्थाओं के अनुकूल नहीं रह गया है।

10.11 डॉक्टरी लाभ सम्बन्धी प्रावधान

1. **डॉक्टरी लाभ की पात्रता**– प्रत्येक बीमित व्यक्ति को तथा उसके परिवार को यदि डॉक्टरी लाभ उसके परिवार के सदस्यों तक विस्तृत हो जिसे डॉक्टरी देख रेख आवश्यकता हो, डॉक्टरी लाभ प्राप्त करने का अधिकार हो ।
2. **डॉक्टरी लाभ का स्थान**– ऐसा डॉक्टरी लाभ उसे किसी चिकित्सालय या औषधालय ,क्लिीनिक या अन्य किसी संस्था में बीमित रोगी के घर पर या किसी अस्पताल में भर्ती रोगी के रूप में दी जा सकती है ।

3. **डॉक्टरी लाभ प्राप्ति की अवधि**– कोई व्यक्ति चिकित्सा लाभ के उस अवधि में अधिकारी होगा, जिस अवधि में उसका अंशदान देय होगा अथवा जिस अवधि में नियमों के अन्तर्गत बीमारी लाभ, प्रसूति लाभ प्राप्त करने का अधिकारी है। किन्तु यदि कोई व्यक्ति अंशदान नही दिया है, तब भी उसे इस अधिनियम के अन्तर्गत दिये गये नियमों के अधीन निर्धारित अवधि तक डॉक्टरी लाभ दिया जा सकता है।

यदि कोई व्यक्ति स्थायी अयोग्यता के कारण अब बीमित व्यक्ति नहीं रहा है तो वह भी अंशदान देकर केन्द्रीय सरकार के नियमों के अधीन चिकित्सा लाभ तक प्राप्त कर सकता है जब तक उसकी सेवानिवृत्ति की आयु पूरी नहीं हो जाती है।
यदि कोई व्यक्ति सेवानिवृत्ति आयु पूरी कर लेता है तो उसकी पति या पत्नी को अंशदान का भुगतान करने पर केन्द्रीय सरकार नियमों के अधीन चिकित्सा लाभ मिलता रहेगा।

चिकित्सा लाभ की दरें –

1. प्रत्येक बीमित व्यक्ति तथा उसका परिवार यदि चिकित्सा लाभ उसके परिवार तक विस्तृत हो केवल उसी प्रकार तथा उसी स्तर का चिकित्सा लाभ प्राप्त करने का अधिकारी होगा, जैसा कि राज्य सरकार या निगम द्वारा उपलब्ध किया जायेगा । बीमित या उसके परिवार को नियमनों के अन्तर्गत उपलब्ध की गई अस्पताल औषधालय , क्लीनिक या अन्य संस्था द्वारा उपलब्ध किये गये चिकित्सा उपचार के अतिरिक्त किसी भी प्रकार की चिकित्सा उपचार की मॉग करने का अधिकार नही होगा।
2. इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी बीमित व्यक्ति या उसके परिवार को चिकित्सा उपचार के लिए किये गयें खर्चों के पुनर्भरण की मांग को कोई अधिकार नही होगा, जब तक कि नियमनों के प्रावधान न हो।

राज्य सरकार द्वारा डॉक्टरी चिकित्सा की व्यवस्था

1. **राज्य सरकार द्वारा डॉक्टरी चिकित्सा की व्यवस्था करना**– राज्य सरकार बीमित व्यक्यिों तथा उनके परिवार के सदस्यों के लिए यदि ऐसा डॉक्टरी लाभ उनके परिवार के सदस्यों तक विस्तृत हो उचित डॉक्टरी चिकित्सा शल्य चिकित्सा तथा प्रसूति चिकित्सा की व्यवस्था करेगी। किन्तु राज्य सरकार निगम की अनुशंसा से चिकित्सा पेशे वालों के क्लिनिकों पर उस स्तर पर तथा उन शर्तों के अनुसार व्यवस्था कर सकती है जो तय किया जाये।
2. **आधिक्य भार का निगम एवं राज्य सरकार में आनुपातिक बॅटवारा**– यदि किसी राज्य में बीमित व्यक्तियों को प्रदान की जाने वाली चिकित्सा लाभ का भार अखिल भारतीय औसत लाभ से अधिक है तो ऐसी दशा में इस आधिक्य भार को निगम तथा राज्य सरकार दोनों आपस में आपसी समझौते के अनुसार बॉटकर वहन करेगा। किन्तु यदि निगम चाहे तो राज्य सरकार से उपर्युक्त समस्त अथवा आशिक भाग की वसूली रद्द कर सकता है।
3. **निगम राज्य सरकार से ठहराव किया जाना**– बीमित व्यक्यिों तथा उनके परिवार के सदस्यों यदि डॉक्टरी लाभ उनके परिवार के सदस्यों तक हों को

प्रदान की जाने वाली डॉक्टरी लाभ की प्रकृति, मात्रा जिसमें भवन, उपकरण, दवाएँ तथा कर्मचारी भी सम्मिलत होंगे लागत में हिस्सा बॉटने तथा बीमारी लाभ भार के आधिक्य के बॅटवारे के लिए राज्य सरकार से ठहराव कर सकता है।

4. **ठहराव भंग की दशा में–** यदि राज्य सरकार तथा निगम के बीच किसी बात पर मतभेद होने पर ठहराव भंग हो जाता है तो ऐसी दशा में उसका निर्णय एक मध्यस्थ द्वारा किया जायेगा। यह मध्यस्थ ऐसा होना चाहिए जो कि किसी राज्य में या तो उच्च न्याधीश के पद पर हो अथवा रह चुका हो। इसकी नियुक्ति भारत के मुख्य न्याधीश द्वारा होगी तथा इसके निर्णय दोनों पक्षकारों को मानना होगा।
5. **राज्य सरकार द्वारा अतिरिक्त चिकित्सा लाभ–** यदि राज्य सरकार चाहे तो इस अधिनियम के अन्तर्गत निगम के अतिरिक्त केन्द्रीय सरकार से पूर्वानुमति लेकर अतिरिक्त संगठन, जो चाहे किसी भी नाम से पुकारा जाता हो की स्थापना कर सकती है, जो कर्मचारियों की बीमारी, प्रसूति और रोजगार के कारण चोट की कुछ दशाओं में लाभ दे सकें।
6. **अतिरिक्त संगठन के कार्य एवं शक्तियॉ–** उपर्युक्त उपधारा 5 के अन्तर्गत स्थापित अतिरिक्त संगठन के ढॉचा एवं कार्य तथा शक्तियॉ वही होंगी जो निर्धारित कर दिये जायें।

10.12 सारांश

मशीनों के प्रयोग से औद्योगिक दुर्घटनाओं की संख्या भी बढ़ी है। इन दुर्घटनाओं से कर्मचारी का शेष जीवन व उसके आश्रितों का जीवन कष्टप्रद हो जाता है। अतः नियोक्ता की ओर से प्रभावित कर्मचारी को क्षतिपूर्ति के रुप में एक सम्मानजनक राशि का भुगतान किया जाता है। इस राशि के निर्धारण के लिए ही कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम की आवश्यकता पड़ी। नियोक्ता को चोट ग्रस्त श्रमिक का नाम व पता, दुर्घटना का कारण तथा दुर्घटना होने की तिथि की उपयुक्त सूचना देनी होती है।

प्रत्येक बीमित व्यक्ति को बीमारी की दशा में सामयिक भुगतान प्राप्त करने का अधिकार होता है किन्तु यह अधिकार तभी प्राप्त हो सकता है जबकि बीमारी उचित रूप से नियुक्त चिकित्सक या निगम द्वारा मुख्य रूप से इसके लिए नियमन के अनुसार समान योग्यता एवं अनुभव प्राप्त अन्य व्यक्ति द्वारा प्रमाणित हो।

किसी बीमित महिला को प्रसूति लाभ उन दशाओं में मिल सकता है जब वह महिला प्रसूति अवस्था में हो अथवा उस महिला का अकाल प्रसव हो गया हो अथवा उस महिला के गर्भधारण करने या प्रसूति अवस्था में या समय से पूर्व बच्चे के जन्म या गर्भपात हो जाने के कारण बीमार पड़ गई हो। ऐसी दशाओं में मिलने वाले सामयिक भुगतान को प्रसूति लाभ कहा जायेगा। ऐसी बीमित महिला प्रसूति लाभ तभी प्राप्त कर सकेगी जब नियमन के अनुसार निर्दिष्ट अधिकारी प्रमाणित कर दिया हो। किसी बीमित व्यक्ति को, जो इस अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारी के रूप में कार्य करते हुए

चोटग्रस्त होकर अयोग्य हो गया हो तो उसे सामयिक भुगतान प्राप्त करने का अधिकार होगा, जिसे अयोग्यता लाभ कहा जायेगा।

बीमित व्यक्ति की इस अधिनियम के अधीन रोजगार से उत्पन्न होने वाली चोट लग जाने के कारण मृत्यु हो जाती है तो उसके आश्रित को क्षतिपूर्ति के लिए सामयिक भुगतान प्राप्त करने का अधिकार होगा, जिसे आश्रित लाभ कहा जायेगा।

मृतक बीमित व्यक्ति के परिवार के सबसे बड़े व्यक्ति को मृतक के अन्त्येष्ठि क्रिया के व्यय के लिए धनराशि प्राप्त करने का अधिकार होगा। यदि मृतक बीमित व्यक्ति के परिवार के साथ नहीं रह रहा था तो उसकी अन्त्येष्ठी क्रिया या खर्च करने वाले व्यक्ति को यह धनराशि पाने का अधिकार होगा।

सरकार को प्रार्थना पत्र देकर तथा नियमन में निहित शर्तों के अनुसार, निगम बीमित व्यक्ति के परिवार के सदस्यों को भी डॉक्टरी लाभ प्रदान कर सकता है। बीमारी की अवधि में बीमारी लाभ केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित दर से दिया जायेगा। दुर्घटना रोजगार के दौरान तथा रोजगार से उत्पन्न दुर्घटना ही समझी जायेगी, चाहे दुर्घटना के समय बीमित कर्मचारी उस पर लागू होने वाला विनियमों का उल्लंघन करके कार्य कर रहा हो या नियोक्ता के निर्देशों के अभाव में कार्य कर रहा हो।

बीमित कर्मचारी अपनी नियोक्ता की स्पष्ट या गर्भित अनुमति से किसी भी वाहन से जो नियोक्ता के हैं, अपने कार्यस्थल पर आने जाने के दौरान दुर्घटनाग्रस्त हो जाये तो ऐसी स्थित में उक्त दुर्घटना रोजगार के दौरान तथा तथा रोजगार से उत्पन्न हुई समझी जायेगी, चाहे वह नियोक्ता द्वारा उसी वाहन में यात्रा करने के लिए बाध्य नहीं किया गया था।

10.13 शब्दावली

क्षतिपूर्ति–	कर्मचारी को दुर्घटना होने पर सम्मानजनक राशि का भुगतान।
नियोक्ता–	कर्मचारी को रोजगार प्रदान करने वाला।
पेशेवर कार्य–	वे सभी कार्य जिन्हें करने के लिए विशिष्ट ज्ञान की आवश्यकता होती है।
राजकीय राजपत्र–	सरकार के द्वारा जारी किए गए आदेश।
आश्रित–	किसी व्यक्ति पर पूर्ण रूप से निर्भर ।

10.14 बोध प्रश्न

(A) बताइए कि निम्नलिखित कथन सत्य है या असत्य–

1. क्षतिपूर्ति चुकाने के लिए नियोक्ता तभी बाध्य होता है। जब कि कर्मचारी की अयोग्यता 3 दिन से अधिक अवधि की हों।
2. यदि दुर्घटना के समय कर्मचारी शराब या किसी औषधि के प्रभाव में रहा हो तो क्षतिपूर्ति के लिए नियोक्ता उत्तरदायी नहीं होगा।
3. नियोक्ता के दिवालिया होने पर क्षतिपूर्ति की राशि कर्मचारियों को किसी भी हालत में नहीं दी जाती है।

4. कर्मचारी राज्य बीमा योजना में बीमित कर्मचारी के आश्रितों को भी लाभ पाने का अधिकार होता है।
5. प्रसूति लाभ प्राप्त करने की शर्ते तथा लाभ की दरें केन्द्रीय सरकार निर्धारित करती है।
6. किसी भी बीमित व्यक्ति को एक ही अवधि के लिए बीमारी लाभ तथा प्रसूति लाभ एक साथ प्राप्त नहीं होंगे।

(B) सही उत्तर चुनिए

1. किसी बीमित महिला को समय से पूर्व बच्चे का जन्म या गर्भपात हो जाने पर बीमार हो जाने से प्राप्त होने वाले सामयिक भुगतान को कहते हैं।
   (i) बीमारी लाभ (ii) प्रसूति लाभ
   (iii) डाक्टरी लाभ (iv) उपर्युक्त में कोई नहीं
2. यदि राज्य सरकार तथा निगम के बीच किसी बात पर मतभेद हो जाने पर ठहराव भंग हो जाता है। तो उसका निर्णय होगा–
   (i) केन्द्रीय सरकार द्वारा (ii) मध्यस्थ द्वारा
   (iii) उच्च न्यायालय द्वारा (iv) किसी प्राधिकरण द्वारा
3. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अनुसूची–III में कुछ रोगों को जोड़ने का अधिकार है।
   (i) केन्द्रीय सरकार को (ii) राज्य सरकार को
   (iii) उपर्युक्त दोनों को (iv) निगम को
4. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत अन्य लाभुक से आशय है–
   (i) बीमित व्यक्ति (ii) बीमित के सहकर्मी
   (iii) बीमित के परिवार के कुछ लोग (iv) बीमित के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति
5. किसी बीमित को प्राप्त होने वाले लाभ हो सकते हैं–
   (i) आश्रित लाभ (ii) राज्य सरकार को अयोग्यता लाभ
   (iii) अन्त्येष्ठि क्रिया खर्च लाभ (iv) उपर्युक्त सभी

10.15 बोध प्रश्नो के उत्तर

(A)

1. सत्य, 2. सत्य, 3. असत्य, 4. सत्य, 5.सत्य, 6. सत्य

(B)

1 **(ii),** 2 **(ii),** **3 (iii),** 4 **(iv),** 5 **(iv)**

10.16 स्वपरख प्रश्न्

1. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम के अर्न्तगत एक नियोक्ता कब उत्तरदायी ठहराया जा सकता है ?
2. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम के अर्न्तगत विभिन्न प्रकार की अयोग्यताओं के लिए क्षतिपूर्ति की राशि की गणना किस प्रकार की जाती है ?

3. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम के अर्न्तगत क्षतिपूर्ति के विवरण सम्बन्धी प्रावधानों को बताइए ?
4. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम के अर्न्तगत कब–कब नियोक्ता का कर्मचारी को क्षतिपूर्ति चुकाने का दायित्व होता है? ऐसी परिस्थितिया बताइए जब कि नियोक्ता का ऐसा दायित्व नहीं होता ?
5. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम के अर्न्तगत कब–कब नियोक्ता का कर्मचारी की क्षतिपूर्ति चुकाने का दायित्व होता है।
6. कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम के अर्न्तगत नियोक्ताओं सें प्राणघातक दुर्घटनाओं के सम्बन्ध में विवरण मॉगने के अधिकारों के प्रावधानों को बताइए। प्राणघातक दुर्घटनाओं तथा गम्भीर शारीरिक चोटों के रिपोर्ट के क्या प्रावधान हैं।
7. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अर्न्तगत एक बीमित कर्मचारी या उसके आश्रित कौन–कौन से लाभ प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं ?
8. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के बीमित के लाभों के सम्बन्ध में सामान्य प्रावधानों को बताइए ?
9. कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अर्न्तगत वे कौन–कौन सी सुविधाएं हैं जो कि एक बीमा लेने वाले व्यक्ति अथवा उसके आश्रितों को प्राप्त होती हैं ? किसी सुविधा में त्रृटि करने वाले नियोक्ता का क्या दायित्व है ?

10.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981

2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958

3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्ेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977

4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979

इकाई 11 पदोन्नति तथा स्थानान्तरण (Promotion and Transfer)

इकाई की रुपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 अर्थ एवं परिभाषा
11.3 पदोन्नति के तत्व एवं लक्षण
11.4 पदोन्नति के कारण
11.5 पदोन्नति के उद्देश्य
11.6 पदोन्नति के प्रकार
11.7 पदोन्नति नीति अथवा स्वस्थ पदोन्नति नीति की आवश्यकताएँ
11.8 पदोन्नति की समस्याएँ
11.9 पदोन्नति योजना एवं नीति
11.10 पदोन्नति के सूचक आधार
11.11 पद–अवनति सम्बन्धी नीति
11.12 स्थानान्तरण
11.13 स्थानान्तरण के कारण
11.14 सारांश
11.15 शब्दावली
11.16 बोध प्रश्न
11.17 बोध प्रश्नों के उत्तर
11.18 स्वपरख प्रश्न
11.19 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- पदोन्नति का अर्थ, एवं परिभाषा समझ सकें।
- पदोन्नति के तत्व, लक्षण, कारण व उद्देश्यों को समझ सकें।
- पदोन्नति के प्रकार व पदोन्नति नीति की आवश्यकताओं को समझ सकें।
- पदोन्नति नीति व पद–अवनति निर्धारण में आने वाली कठिनाइयों को विस्तार से समझ सकें।
- स्थानान्तरण का अर्थ एवं कारणों को समझ सकें।

11.1 प्रस्तावना

पदोन्नति से आशय किसी कर्मचारी को एक श्रेष्ठतर कार्य अपेक्षाकृत अधिक जिम्मेदारियों, अधिक आदर या हैसियत, अधिक कौशल और विशेष रूप से बढ़ी हुई वेतन दर से कार्य प्रदान करना है। दूसरे शब्दों में उत्तरदायित्व की वृद्धि को सही अर्थो में पदोन्नति कहा जा सकता है। साधारणतः लोग पदोन्नति से आशय ऐसे परिवर्तन से लगाते हैं, जिसके परिणामस्वरूप आय में वृद्धि हो जायें क्योंकि आय बढ़ना पदोन्नति के लिए अनिवार्य नहीं है। बिना आय में वृद्धि हुए भी पदोन्नति सम्भव

है। इस इकाई में आप पदोन्नति के तत्व, लक्षण, कारण, उद्देश्यों व स्थानान्तरण का अर्थ एवं कारणों का अध्ययन करेंगे ।

11.2 अर्थ एवं परिभाषा

'पदोन्नति' शब्द पद+उन्नति अर्थात् दो शब्दों के योग से बना है, जिसका शाब्दिक अर्थ किसी कर्मचारी के पद में उन्नति से है। यदि एक ही कार्य पर रहते हुए यदि कर्मचारी को अधिक वेतन दिया जाये तो इसे पदोन्नति नही कहेंगे। यह तो केवल वेतन वृद्धि होगी, पद में नहीं, पदोन्नति का सम्बन्ध अनिवार्य रूप से वेतन वृद्धि से नहीं है, इसका सम्बन्ध पद की प्रतिष्ठा एवं उत्तरदायित्व से तथा अधिक कुशलता से है। कई स्थितियों में पदोन्नति होते हुए भी आय में वृद्धि नहीं होती, ऐसी पदोन्नतियों को शुष्क पदोन्नतियॉ कहते हैं। सही अर्थो में पदोन्नति का आशय कर्मचारी के पद एवं उत्तरदायित्व में वृद्धि से है। पदोन्नति के पश्चात् कर्मचारी की आय, प्रतिष्ठा, पद तथा उत्तरदायित्व में वृद्धि से है।

1. **स्कॉट एवं स्प्रीगल के अनुसार**–''पदोन्नति किसी कर्मचारी का ऐसे कार्य पर स्थानान्तरण है जो उसे पहले से अधिक धन अथवा अधिक ऊँचा स्तर प्रदान करता है।''
2. **पीगर्स एवं मायर्स के अनुसार**– ''पदोन्नति से आशय किसी कर्मचारी को एक श्रेष्ठतर कार्य अपेक्षाकृत अधिक जिम्मेदारियों, अधिक आदर या हैसियत, अधिक कौशल और विशेष रूप से बढ़ी हुई वेतन दर से कार्य प्रदान करना है। उपयुक्त कार्य के घण्टे या श्रेष्ठतर कार्य स्थिति या कार्य दशाऍ भी श्रेष्ठतर कार्य का चिन्ह है, किन्तु यदि नये कार्य में अधिक उत्तरदायित्व एवं कौशल की आवश्यकता नहीं है और अधिक वेतन भी नहीं मिलता हो तो इसे पदोन्नति नहीं कहा जाना चाहिए।''

इस प्रकार पदोन्नति कर्मचारी के विकास की वह प्रक्रिया हैं जिससे उसके कार्य में परिवर्तन होता है। वह अच्छा वेतन, अच्छा स्तर, अधिक प्रतिष्ठा, अच्छा कार्य वातावरण, अधिक उत्तरदायित्व एवं अच्छी सुविधाऍ प्राप्त करता है। स्तर एवं उत्तरदायित्व की दृष्टि से पदोन्नति एक लम्बवत् परिर्वतन है, जिससे कर्मचारी उच्च पद प्राप्त करता है।

11.3 पदोन्नति के तत्व एवं लक्षण

पदोन्नति के निम्न प्रमुख तत्व अथवा लक्षण हैं–

- पदोन्नति के परिणामस्वरूप किसी कर्मचारी के पद में वृद्धि होती है अर्थात् वह निम्नस्तर पद से उच्चतर पद पर पहुॅच जाता है।
- जब किसी कर्मचारी की पदोन्नति होती है तो उसके साथ–साथ उसके उत्तरदायित्वों में भी वृद्धि होती है। उदाहरण के लिए एक सहायक फोरमैन की तुलना में फोरमैन के उत्तरदायित्व अधिक होते हैं।
- पदोन्नति के परिणामस्वरूप कर्मचारी को मिलने वाले पारिश्रमिक एवं सुविधाओं में वृद्धि होती है।
- पदोन्नति के कारण कर्मचारी की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है।
- किसी कर्मचारी की पदोन्नति उसके विकास की घोतक होती है।

11.4 पदोन्नति के कारण

किसी कर्मचारी की पदोन्नति के कई कारण हो सकते हैं। पदोन्नति के सामान्य कारण निम्नलिखित हैं–

1. **कर्मचारियों में स्वामीभक्ति की भावना जाग्रत करने हेतु पदोन्नति की व्यवस्था करना–** इससे कर्मचारियों में अनुशासन बना रहता है क्योंकि वे जानते हैं कि यदि मालिक उनसे नाराज हो गया तो उनकी आगे प्रगति रूक जाएगी।
2. **कर्मचारियों में स्थायित्व की भावना को बनाए रखना–** योग्य कर्मचारी को उसी संस्था में बनाए रखने के लिए भी उनकी निरन्तर पदोन्नति करते रहना आवश्यक है। तभी वे अन्यत्र ना जा कर उसी संस्था में बने रहेंगे।
3. **नियोक्ता एवं कर्मचारी के बीच निरन्तर मधुर सम्बन्ध बनाने के लिए–** नियोक्ता को अपने यहॉ के कर्मचारियों की पदोन्नति करते रहना चाहिए ताकि दोनों के बीच मधुर सम्बन्ध बने रहें।
4. **पुरस्कार स्वरूप भी पदोन्नति–** कर्मचारियों की पुरस्कारस्वरूप भी पदोन्नति करनी चाहिए, जैसे अधिक कुशलता दिखाने वाले के प्रतिफल में, अधिकतम उपस्थिति के प्रतिफल में, अनुसन्धान कार्य के प्रतिफल में, दुर्घटना से बचाने के प्रतिफल में की जानी वाली पदोन्नतियॉ। इस प्रकार से की गयी पदोन्नतियॉ का दूसरे कर्मचारियों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता है।
5. **प्रशिक्षण की ओर आकर्षित करने के लिए–** पदोन्नति के मोह में कर्मचारी प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए स्वतः अभिरुचि रखने लगते हैं। इससे उद्योग एवं कर्मचारी दोनों का ही भविष्य उज्जवल होता है।
6. **श्रम समस्याओं के समाधान के लिए–** पदोन्नति श्रम समंस्याओं के समाधान के लिए आवश्यक है पदोन्नति से ही कर्मचारियों के श्रम का उचित विभाजन व निर्धारण किया जाता है पदोन्नति होने से कर्मचारियों के श्रम क्षमता का विशिष्टीकरण किया जा सकता है।
7. **रिक्त स्थान की पूर्ति–** समय–समय पर एक उपक्रम में स्थान रिक्त होते हैं पदोन्नति इन रिक्त स्थानों की पूर्ति के लिए भी की जाती है।
8. **योग्यता वृद्धि–** कभी–कभी कर्मचारियों की पदोन्नति का उद्देश्य उनकी योग्यता वृद्धि करना भी होता है उन्हे ऐसे पदों पर पदोन्नत किया जा सकता है, जहॉ संस्था के लिए उनकी सेवाऍ अधिक मूल्यवानस सिद्ध हो सकेंगी।
9. **दीर्घकालीन सेवा–** कभी–कभी एक कर्मचारी की फर्म में दीर्घकालीन सेवाओं के बदले में भी पदोन्नति की जाती है।
10. **औद्योगिक शान्ति–** कभी–कभी यह देखा गया है कि फर्म में कार्यरत असन्तुष्ट कर्मचारीगण श्रम–नेता बनकर प्रबन्ध के सम्मुख तरह तरह की कठिनाइयॉ पैदा करते रहते हैं। ऐसी स्थिति में उनका मुख बन्द रखने एवं सन्तुष्टि प्रदान करने के लिए पदोन्नति करनी पड़ती है।
11. **मनोबल में वृद्धि–** पदोन्नति कर्मचारियों के मनोबल में वृद्धि करने के उद्देश्य से भी की जाती है। पदोन्नति के कारण कर्मचारी अधिक चुनौतीपूर्ण कार्य करने के लिए प्रेरित होते हैं।

पदोन्नति के सिद्धान्त– संस्था के कर्मचारियों की पदोन्नति करते समय पदोन्नति के निम्नलिखित सिद्धान्तों को विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए–

- कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए वरिष्ठता तथा योग्यता दोनों की ही ओर ध्यान दिया जाना चाहिए। किन्तु यदि ऐसे दो कर्मचारी है जो योग्यता की दृष्टि से समान स्तर पर आते हैं तो वरिष्ठता की दृष्टि से पदोन्नति होनी चाहिए, अर्थात् इन दोनों में से जो वरिष्ठ हो उसे ही पदोन्नति का अवसर मिलना चाहिए।
- प्रबन्धकों द्वारा पहले से ही इस बात की घोषणा कर दी जानी चाहिए कि समस्त पदोन्नतियॉ, जहॉ तक सम्भव होगी, संस्था के वर्तमान कर्मचारियों में से ही जायेगी। इस घोषणा का ईमानदारी से पालन होना चाहिए।
- प्रबन्धकों एवं कर्मचारियों के बीच पहले से ही इस सम्बन्ध में समझौता हो जाना चाहिए कि पदोन्नति के लिए वरिष्ठता एवं योग्यता दोनों को ही ध्यान में रखा जायेगा। दो समान योग्यताएँ रखने वाले व्यक्तयों के बीच वरिष्ठता के आधार पर निर्णय होगा।
- पदोन्नति करते समय पक्षपातपूर्ण रवैये को त्याग देना चाहिये।
- पदोन्नति की रूपरेखा पहले से ही स्थापित हो जानी चाहिये। इसके लिए कर्मचारियों के बीच पहले से ही ऐसे चार्टो का पर्याप्त प्रचार हो जाना चाहिए कि प्रमुख उच्च पद की प्राप्ति के लिए उनमें कितनी क्षमता, अनुभव, शिक्षा आदि का होना आवश्यक है।
- पदोन्नति के लिए सबसे पहले सिफारिश निकटवर्ती सुपरवाइजर द्वारा की जानी चाहिए तथा अन्तिम निर्णय उच्चवर्गीय प्रबन्ध द्वारा लिया जाना चाहिए।
- किसी विशिष्ट पदोन्नति के विरूद्ध पदोन्नति नीति की सीमाओं के अन्दर किसी अन्य कर्मचारी अथवा श्रम–संघ को अपना दावा प्रस्तुत करने का अधिकार होना चाहिए।
- पदोन्नति की सुविधा के लिए पदो को क्रमबद्ध कर लेना चाहिए। इस सम्बन्ध में फ्रेंक गिलबर्थ ने त्रिपदीय योजना का निर्माण किया है ये पद निम्नलिखित है–
  - अ. सबसे निकटतम पद, कर्मचारी को संस्था में पहले प्राप्त था।
  - ब. वह पद कर्मचारी संस्था में अब ग्रहण किये हुए है।
  - स. सर्वोच्च पद जो कर्मचारी भविष्य में प्राप्त कर सकेगा। इसका प्रदर्शन चार्ट द्वारा होना चाहिए।
- शुरू में पदोन्नति अस्थायी काल के लिए ही होनी चाहिए। यदि उस अवधि में कर्मचारी का कार्य सन्तोषजनक रहता है तो उक्त पद पर स्थायी कर देना चाहिए, अन्यथा उसे अपने पूर्व पद पर पुनः भेज देना चाहिए।

- पदोन्नति योजनाओं और प्रशिक्षण योजनाओं दोनों में समन्वय का होना परम आवश्यक है अर्थात् पदोन्नति के लिए कुछ न कुछ प्रशिक्षण प्राप्त करना अनिवार्य कर देना चाहिए।
- रिक्त स्थान की सूचना पहले से ही दे देनी चाहिए, ताकि हित रखने वाले कर्मचारी निर्धारित अवधि के अन्दर अपना प्रार्थना पत्र दे सकें।
- पदोन्नति करते समय कर्मचारियों का पूर्ण विवरण सामने होना चाहिए क्योंकि इससे तथ्यों की पूर्ण जानकारी होती है तथा निर्णय भी अधिक ठोस होता है।

पदोन्नति क्यों ?

कर्मचारी अपने जीवन में बहुत कुछ बनना चाहता है। वह अनुभवहीनता से पूर्ण अनुभवी बनता है तथा चाहता है कि निरन्तर प्रगति करता रहे। संगठन में पदोन्नति के अवसर अभिप्रेरण का काम करते हं एवं कर्मचारी को संगठन सक जुड़े रहने के लिए प्रोत्साहित करते हैं।

11.5 पदोन्नति के उद्देश्य

पदोन्नति के उद्देश्य निम्नलिखित है;

1. कर्मचारी को अपनी योग्यता एवं कार्यकुशलता के अनुकूल कार्य सौपकर जन शक्ति का अधिकाधिक उपयोग करना।
2. कर्मचारी को पदोन्नत करके उसकी सेवाओं के लिए उन्हें पुरस्कृत करना जिससे संगठन में अच्छे मानवीय सम्बन्धों का निर्माण हो सके।
3. पदोन्नति से कार्य परिर्वतन होता है जिससे कार्य पर कर्मचारी की रुचि बनी रहती है।
4. कर्मचारी को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने अथवा योग्यता बढ़ाने का पूर्ण अवसर प्रदान करना।
5. कर्मचारी को अधिक कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए अभिप्रेरण प्रदान करना।
6. कर्मचारी के मनोबल में वृद्धि करना ।
7. योग्य व्यक्तियों को अपने प्रभाव का अच्छी तरह से उपयोग करने का अवसर प्रदान करना।
8. योग्तानुसार पदोन्नति से श्रम बदली दर, अनुपस्थिति दर, आदि में कमी होती है, जिससे उत्पादन कार्य सुचारू रूप से चलता रहता है।
9. कर्मचारियों में कार्य के प्रति प्रतिस्पर्द्धा का संचार करना जिससे उपक्रम के साधनों का अधिकतम प्रयोग किया जा सके।
10. पदोन्नति की उचित व्यवस्था होने पर उपक्रम बाहर से अच्छे कार्यकर्ता आकृष्ट करने में सफल होता है।
11. अयोग्य व अक्षम व्यक्तियों को पदोन्नति नहीं मिलने के कारण वे स्वयं संस्था को छोड़कर चले जाते हैं जो व्यवसाय के हित में होता है तथा छँटनी की आवश्यकता नहीं पड़ती ।

12. एक कर्मचारी को उस जगह नियुक्त करना जहॉ उसकी सेवाओं का अधिक अच्छा उपयोग किया जा सके।
13. एक कर्मचारी को अपनी दीर्घकालीन सेवाओं के प्रतिफल में पुरस्कार प्रदान करना जिससे अन्य कर्मचारी भी अधिक कुशलता एवं स्थिरता के साथ कार्य कर सकें।
14. एक विशिष्ट प्रशिक्षण एवं अनुभव की मॉग करने वाले कार्य में दिलचस्पी उत्पन्न करने हेतु।
15. कर्मचारियों को अपनी योग्यता प्रदर्शित करने के लिए प्रोत्साहित करने हेतु।
16. संगठन अर्थात् संस्था की उत्पादकता एवं प्रभावशीलता में बढ़ोत्तरी करने हेतु, जिससे संस्था के लाभों का परिणाम बढ़ सके और वह सेवाएँ प्रदान कर सकें।
17. कर्मचारियों का नैतिक स्तर, कार्य निष्ठा, सद्विश्वास तथा पारस्परिक सहयोग में वृद्धि करने के उद्देश्य से भी पदोन्नति की जाती है।
18. संगठन पदोन्नति श्रृंखला के आधार पर अच्छे कार्यकर्त्ताओं को आकृष्ट करने में सफल हो जाता है।
19. कर्मचारी को उसकी सुरक्षा के अनुकूल कार्य सौंपकर जन–शक्ति का कुशलतम उपयोग करना।
20. कर्मचारी के मनोबल में वृद्धि करना ।
21. पदोन्नति से कार्य परिर्वतन होता है जिससे कर्मचारी के कार्य में रुचि बनी रहती है क्योंकि एक ही प्रकार का कार्य करते–करते वह कार्य अरुचिपूर्ण होने लगता है।
22. पदोन्नति कर्मचारियों में कार्य के प्रति प्रतिस्पर्द्धा जाग्रत करती है।
23. अयोग्य एवं सक्षम व्यक्ति पदोन्नति न मिलने से स्वयं संस्था को छोड़कर चले जाते हैं, जो संस्था के हित में होता है।

11.6 पदोन्नति के प्रकार

पदोन्नतियों के निम्न प्रकार होते हैं –

1. **अन्तर्विभागीय**– इसे लम्बवत पदोन्नति की श्रेणी में रखा जाता है।
2. **विभागीय**– इसे समतल पदोन्नति की श्रेणी में रखा जाता है।
3. **अन्तर्सयंत्रीय**– इस वर्ग में दोनों प्रकार की पदोन्नतियॉ सम्भव हैं – लम्बवत और समतल। स्प्रीगल द्वारा प्रस्तुत यह वर्गीकरण कार्य के आधार पर नहीं होकर विभाग अथवा संयन्त्र के आधार पर किया गया है। लम्बवत कार्य के आधार पर नहीं होकर विभाग अथवा संयत्र के आधार पर किया गया है लम्बवत पदोन्नति द्वारा कर्मचारी नीचे पद से ऊपर पद पर आसीन होता है, किन्तु समतल पदोन्नति में कर्मचारी पर अधिक उत्तरदायित्व अधिक वेतन होते हुए भी कार्य की प्रकृति वही रहती है।
4. **विभागीय पदोन्नति**– इसके अन्तर्गत जब कभी किसी विभाग में किसी कारण से जैसे– मृत्यु त्याग पत्र या अवकाशग्रहण काई स्थान रिक्त हो जाता है और उसकी

पूर्ति उसी विभाग के निचले कर्मचारी की पदोन्नति करके की जती है, तो वह विभागीय पदोन्नति कहलाती है।

5. **अन्तर–विभागीय पदोन्नति–** इसके अन्तर्गत जब किसी एक विभाग के कर्मचारी को उसकी पदोन्नति करके किसी दूसरे विभाग में हस्तान्तरित कर दिया जाता है, तो वह अन्तर–विभागीय पदोन्नति कहलाती है।

6. **अन्तर–संयन्त्र पदोन्नति–** जब किसी कर्मचारी को पदोन्नत करके एक संयन्त्र से दूसरे संयन्त्र में हस्तान्तरित कर दिया जाता है, तो वह अन्तर संयन्त्र पदोन्नती कहलाति कहलाती है ऐसा तभी सम्भव हो पाता है जबकि या तो दोनों संयन्त्र एक ही समूह के नियन्त्रण में हों अथवा उसमें परस्पर कोई समझौता हो।

11.7 पदोन्नति नीति अथवा स्वस्थ पदोन्नति नीति की आवश्यकताएॅ

पदोन्नति के कारण जहॉ एक ओर किसी कर्मचारी को व्यक्तिगत लाभ होता है वही दूसरी ओर कभी–कभी इससे अन्य कोई कर्मचारियों में असन्तोष भी उत्पन्न हो जाता है। अतः इसके लिए परमआवश्क है कि शुरू में ही एक स्वस्थ पदोन्नति नीति तैयार कर ली जाय जो सुदृण, सुविचार, वरिष्ठता एवं योग्यता पर आधारित हो। इस दृष्टि से एक स्वस्थ एवं सुदृढ पदोन्नति नीति में निम्नलिखित विशेषताएॅ होनी चाहिएः–

1. **घोषणा एवं अनुसरण–** पदोन्नति नीति के अन्तर्गत इस बात की स्पष्ट घोषणा होनी चाहिए कि कितने प्रतिशत रिक्त स्थान पदोन्नतियों के द्वारा भरे जायेंगे और शेष कितने प्रतिशत रिक्त स्थान सीधी भर्ती अथवा चयन द्वारा भरे जायेंगे। 60:40 का एक अच्छा अनुपात कहा जा सकता है जिसमें 60 प्रतिशत तो रिक्त पद तो पदोन्नतियों द्वारा तथा शेष 40 प्रतिशत रिक्त पद सीधी भर्ती द्वारा भरे जाते है। इस स्पष्ट घोषित नीति का सख्ती से पालन करना चाहिए।

2. **स्पष्ट आधार–** पदोन्नति का आधार स्पष्ट होना चाहिए और इसमें यह योग्यता तथा वरिष्ठता का समन्वय होना चाहिए।

3. **सेवा में कार्यरत समस्त योग्य कर्मचारियों पर विचार–** पदोन्नति करते समय सेवा में कार्यरत समस्त योग्य कर्मचारियों पर विचार किया जाना चाहिए, न कि कुछ विशिष्ट कर्मचारियों पद दूसरे शब्दों में, पदोन्नति व्यवस्था पूर्णतः खुली होनी चाहिए न कि बन्द।

4. **चयन का निश्चित मापदण्ड–** प्रत्येक पद पर की जाने वाली पदोन्नति के लिए क्या–क्या योग्यताएॅ, कम से कम कितना अनुभव, दक्षता, शिक्षण, प्रशिक्षण आदि आवश्यक होंगे, इस बात का स्पष्ट रूप में उल्लेख किया जाना चाहिए ताकि कर्मचारी उसी के अनुरूप अपने आप को पदोन्नति के लिए तैयार कर सके।

5. **पदोन्नति के लिए सन्तुष्टि–** पदोन्नति देना वास्तव में एक विभागीय उत्तरदायित्व है। अतः पदोन्नति की संस्तुति कर्मचारी के निकटतम अधिकारी द्वारा की जानी चाहिए।

6. **पदोन्नति का अन्तिम अनुमोदन–** चूकि पदोन्नति एक विभागीय उत्तरदायित्व है अतः इस पर अन्तिम अनुमोदन सम्बन्धित विभागीय अध्यक्ष की ही होनी चाहिए।

सेविवर्गीय विभाग संस्तुति किये गये नामों की सूची सम्पूर्ण विवरण तथा अपनी सिफारिशों सहित विभागीय अध्यक्ष के पास भेज सकता है, किन्तु अन्तिम निर्णय लेने एवं अनुमोदन करने का अधिकार तो विभागीय अध्यक्ष का होना चाहिए।

7. **पदोन्नति के अवसरों की सूचना**— किसी उपक्रम में जब भी कोई स्थान रिक्त हो उसकी सूचना तथा उसकी सूचना तथा उस सम्बन्ध में की जाने वाली पदोन्नति आदि के बारे में पूर्ण विवरण यथासमय कर्मचारियों को दे देनी चाहिए।

8. **पदोन्नति प्रशिक्षण**— पदोन्नति के साथ साथ नये दायित्वों तथा कर्तव्यों आदि से परिचित कराने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण की भी व्यवस्था की जानी चाहिए।

9. **अन्य बातें**— उपरोक्त के अतिरिक्त पदोन्नति नीति कि अन्तर्गत निम्न बातों का भी समावेश होना चाहिए—

- पदोन्नति सीढ़ियॉ बनायी जानी चाहिए तथा उनका प्रदर्शन पदोन्नति तालिकाओं आदि के द्वारा किया जाना चाहिए।
- पदोन्नति की चुनौती देने के लिए निश्चित अवधि निर्धारित होनी चाहिए जैसे— पदोन्नति होने के 30 दिन के अन्दर चुनौती दी जा सकेगी, तत्पश्चात् नहीं।
- ऐसे कनिष्ठ व्यक्ति जो योग्य एवं परिश्रमी तो हैं किन्तु अपने विभाग में उन्हें विकास अवसर नहीं मिल सकते, यदि अन्य विभागों में जाना चाहे तो उन्हे ऐसा करने की सहर्ष अनुमति प्रदान की जानी चाहिए।

11.8 पदोन्नति की समस्याऍ

पदोन्नति जहॉ कर्मचारी के लिए वरदान है, वहा प्रबन्ध के लिए समस्या है। पदोन्नति के लिए उपयुक्त व्यक्ति का चयन करने के लिए इन्हे प्रर्याप्त दूरदर्शिता का प्रयोग करना पड़ता है। इसके बाद भी इस बात का निरन्तर ध्यान रखना पडता है कि कर्तव्यनिष्ठ, योग्य एवं कुशल व्यक्ति को उचित समय पर पदोन्नति दी जाय। यदि प्रबन्ध द्वारा एक भी पदोन्नति न्यासंगत नहीं हो अथवा त्रुटिपूर्ण हो जाय तो वह निष्ठावान कर्मचारियों के लिए उदासीनता वैमनस्य तथा आक्रोश का कारण बन जाती है। पदोन्नति का क्रम सभी स्तरों पर चलता है। पदोन्नति के सिद्धान्तों अथवा पदोन्नति की उचित नीति का विवेचन करने से पूर्व दो महत्वपूर्ण विकल्पों का विस्तृत विवेचन आवश्यक है—

1. सीधी भर्ती अथवा पदोन्नति 2. योग्यता अथवा वरिष्ठता

1. **सीधी भर्ती अथवा पदोन्नति**— पदोन्नति की अवस्था को ठीक तरह लागू करने के लिए यह आवश्यक है कि कम्पनी अपनी नीति को स्पष्ट कर दे। यह अधिक लाभदायक कहा जा सकता है कि कम्पनी यथासम्भव करने कर्मचारी को पदोन्नति देकर उचे पदो को भरे । यदि विद्यमान कर्मचारियों में कोई योग्य व्यक्ति उपलब्ध नही हो तो बाहरी व्यक्तियों की नियुक्ति की जा सकती है। यदि कोई संस्था उच्च पद साधारणतः सीधी भर्ती द्वारा ही भर लेती है तो इससे कर्मचारियों की कर्तव्यनिष्ठा तथा स्वामिभक्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है।

2. **योग्यता अथवा वरिष्ठता**– पदोन्नति द्वारा रिक्त पद भरते समय यह बहुत बडी समस्या सामने आती है कि पदोन्नति का आधार क्या हो – योग्यता अथवा वरिष्ठता। प्रायः देखा गया है कि प्रबन्ध की दृष्टि से वही व्यक्ति पदोन्नति के योग्य कहा जा सकता है जिसमें नेतृत्व शक्ति, सहयोग, कर्तव्यनिष्ठा तत्परता पहल करने की क्षमता योग्यता साहस उत्पादकता एवं निर्णायकता के गुण हों। प्रबन्धक योग्यता के आधार पर पदोन्नति के समर्थक होते है। दूसरी और श्रम संघो की दृष्टि से वरिष्ठता तथा अनुभवी व्यक्तियों को रिक्त पदों पर पदोन्नति दी जानी चाहिए। जहॉ श्रम संघ शक्तिशाली है वहॉ वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति देने की प्रवृत्ति पायी जाती है।

वस्तुतः इस सम्बन्ध में श्रम–सघ तथा प्रबन्धक दोनों के दृष्टिकोण पृथक है। इन दोनों मे उचित समन्वय के हेतु वरिष्ठता और योग्यता का सम्मिलित प्रयोग करना चाहिए। इसमें योग्यता को अधिक महत्व दिया जा सकता है। यदि पदोन्नति के समय दो व्यक्ति समान योग्यता वाले उपलब्ध हों तो ऐसी स्थिति में वरिष्ठता के आधार पर पदोन्नति की जनी चाहिए।

पदोन्नति का औचित्य सिद्ध करने की दृष्टि से ली जाने वाली सावधानियॉ– पदोन्नति सम्बन्धी निर्णय लेने से पहले उसका औचित्य निर्धारण कर लिया जाना चाहिए। पदोन्नति का औचित्य तभी स्पष्ट हो सकता है जब पदोन्नति की नीति स्पष्ट हो । पदोन्नति सम्बन्धी नीतियॉ प्रबन्धकों तथा श्रम संघ प्रतिनिधियों द्वारा मिलकर बनायी जानी चाहिए। पदोन्नति के समय

1. कर्मचारियों के कार्य निष्पादन सम्बन्धी आलेख व्यवहार सम्बन्धी प्रतिवेदन, सुरक्षा एवं नियम पालन सम्बन्धी आलेख आदि पर विचार किया जाना चाहिए,
2. इसके साथ ही योग्यता का मूल्याकन शैक्षिक योग्यता कार्य सम्बन्धी योग्यता अनुभव प्रशिक्षण आदि का ध्यान रखा जाना चाहिए,
3. सेवाकाल या वरिष्ठता की दृष्टि से विचार किया जाना चाहिए, तथा
4. पदोन्नति के लिए साक्षात्कार का आयोजन भी किया जाना चाहिए।

विवादग्रस्त मामलों में

1. नीतियॉ स्पष्ट होनी चाहिए,
2. पिछली परम्परा के आधार पर निर्णय लिये जाने चाहिए,
3. मध्यस्थ की नियुक्ति द्वारा मामला तय किया जाना चाहिए। वे उद्योग जहॉ पर शक्तिशाली श्रम संघ पाये जाते है, वहा पदोन्नति के समय कई कठिनाइयों का सामना करना पडता है श्रम संघ प्रायः वरिष्ठता को पदोन्नति का आधार मानते है इसका कारण यह भी है कि कुछ कम्पनियॉ पदोन्नति के समय पक्षपात भी करती है योग्यता के नाम पर नये, कम अनुभवी तथा चाटुकार लोगों को पदोन्नतियॉ दे दी जाती है पदोन्नति के समय जाति धर्म राष्ट्र आदि के आधार पर कोई भेदभाव नही करना चाहिए।

पदोन्नति नीति निर्धारित करने के लिए ठोस आधार की आवश्यकता होती है। अतः जो भी नीति निर्धारित की जाये, वह प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों दोनों को स्पष्ट होनी चाहिए जिससे संगठन में कार्यरत व्यक्तियों में 1– आपसी मनमुटाव नही हो ,तथा 2– कर्मचारियों और प्रबन्धकों में मनमुटाव नही हो। प्रबन्धक को अपनी नीति

स्पष्ट एवं दृढ रखनी चाहिए जिससे प्रत्येक कर्मचारी उच्च स्तर तक जाने के लिए क्रियाशील रहे।

11.9 पदोन्नति योजना एवं नीति

1. पदोन्नति वरिष्ठता एवं योग्यता दोनों ही आधारों पर की जानी चाहिए। जहॉ दो व्यक्तियों की योग्यता समान हो, वहा वरिष्ठ व्यक्ति को पदोन्नत किया जाना चाहिए ।
2. यह स्पष्ट होना चाहिए कि क्या यथासम्भव सभी उच्च स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जायगें और उपयुक्त कर्मचारी के अभाव में बाहर से व्यक्ति की नियुक्ति की जायेगी।
3. पदोन्नतियॉ पक्षपातपूर्ण ढंग से नही की जानी चाहिए।
4. योग्य कर्मचारी कभी भी कहीं भी अधिक अच्छे अवसर प्राप्त करने पर संस्था के कार्य से मुक्त कर दिये जाने चाहिए।
5. पदोन्नति के लिए स्तरों का निर्माण कर लेना चाहिए अर्थात श्रृंखलाबद्ध विधि से प्रत्येक पद का अंकन हो जाना चाहिए जैसे श्रमिक गेंगमैन फोरमैन सुपरवाइजर। इससे कर्मचारी को अपने लक्ष्य का पता रहता है। फ्रेक गिलब्रेथ ने एक त्रिपदीय योजना बतायी है 1– सबसे नीचे का पद – जिस पर कर्मचारी पहले कार्य कर रहा था, 2– वर्तमान पद – जिस पर कर्मचारी कार्य कर रहा है, तथा 3– सर्वोच्च पद – जो कर्मचारी भविष्य में प्राप्त करेगा।
6. पदोन्नतियॉ रेखीय अधिकारियों द्वारा दी जानी चाहिए।
7. श्रम–संघों को यह स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वे नियम विरूद्व पदोन्नति की चुनौती दे सकें।
8. प्रारम्भ में पदोन्नति अस्थायी होनी चाहिए जिससे पदोन्नति के पश्चात् व्यक्ति अपने आपको कार्य के लिए योग्य सिद्व करने का प्रयत्न करे।
9. पदोन्नति नीति में यह स्पष्ट होना चाहिए कि जो व्यक्ति अपने वर्तमान पद से अधिक उत्तरदायित्व नहीं सम्हालना चाहते हैं, तो वे अपने पद पर ही कार्य करते रह सकते है तथा उनके लिए संगठन में अच्छा वातावरण तैयार करने का प्रयत्न किया जायेगा।
10. पदोन्नति के अवसरों की जानकारी पर्याप्त समय से पहले उपलब्ध कर दी जानी चाहिए जिससे प्रत्येक योग्य व्यक्ति अपना प्रार्थना पत्र प्रस्तुत कर सकें।
11. पदोन्नति सम्बन्धी निर्णय लेते समय कर्मचारी के कार्य सम्बन्धी सारी सूचनाएॅ प्राप्त होनी चाहिए।

पदोन्नति की एक स्पष्ट नीति यह होनी चाहिए कि कर्मठ कर्मचारी को उचित पुरस्कार मिले। संगठन जो अच्छे कार्यकर्ता को पुरस्कृति करने में असफल रहते है या जो व्यक्तिगत सम्बन्धों सेवा अवधि या वरिष्ठता में अधिक विश्वास रखतें है, वे उत्पादन क्षमता, कुशलता एवं नैतिक दृष्टि से हानि उठाते हैं।

11.10 पदोन्नति के सूचक आधार

अ. **कार्य प्रणाली**– वर्तमान पद पद उसके कार्य करने का ढंग कैसा है अर्थात क्या वह सुगमतापूर्वक कार्य कर लेता है तथा कुछ अतिरिक्त समय बचा लेता है या केवल इतना ही कर पाता है कि कार्य पूरा किया जा सके।

ब. **लोच या बहु कार्य प्रणाली**– क्या वह विभिन्न प्रकार के कार्य सुगतापूर्वक कर सकता है जिसमें सामान्य सूझ बूझ एवं योग्यता की आवश्यकता हो अथवा वह एक एक सुनिशित कार्य तक ही अपने आपको सीमित रखना पसन्द करता है।

स. **चातुर्य**– वह क्या सोचता है ? और किस प्रकार कार्य करता है ? या कितना चतुर है?

द. **दक्षता**– अर्थात उसमें कितना शैक्षणिक और व्यवसायिक वाक चातुर्य है? तथा कार्य में आई कठिनाइयों को वह किस प्रकार हल करता है।

य. **पहल**– उससे पहल की क्षमता कितनी है कि ? क्या व्यक्ति इसके योग्य है?

पदोन्नति एक ओर आवश्यक है तो दूसरी ओर हानिप्रद भी है। अयोग्य व्यक्ति की पदोन्नति कर दिये जाने पर अथवा मूल्यांकन में त्रुटि रह जाने पर टकराव की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। प्रत्येक कर्मचारी पदोन्नति के लिए प्रयत्न करता है तथा उसे अपना अधिकार मानता है। पदोन्नति सही नही होने पर भूल सुधार बहुत कठिन है क्योंकि उस दशा में पदोन्नत व्यक्ति की पद– अवनति तथा निष्कासन दो ही उपाय रह जाते है।

पद–अवनति किसी प्रकार सराहनीय कार्य नही कहा जा सकता। प्रबन्धक द्वारा इसका अनुसरण इन परिस्थितियों में किया जाता है;

1. जब कर्मचारी वर्तमान पद पर ठीक तरह कार्य नहीं कर रहा हो ।
2. उसने नियम भंग किया हो तथा उसे दण्ड स्वरूप पद अवनति दी गयी हो।
3. उच्च पद किसी कारणवश समाप्त होने पर भी कर्मचारी को रोजकार से निष्कासन से बचाने के लिए निम्न उत्तरदायित्व वाला पद सौपा जाता है। सरकारी प्रतिष्ठानों में अथवा सरकारी विभागों में किसी कारखाने या विभाग के बन्द हो जाने पर उसे कर्मचारियों को अनयत्र कम उत्तरदायित्व, कम वेतन एवं कम प्रतिष्ठा वाले पदो पर रखा जाता है।
4. अनेक बार पदोन्नति दोषपूर्ण होती है। उसे ठीक करने के लिए भी पद अवनति कर दी जाती है।
5. पदोन्नति के पश्चात् यदि प्रशिक्षण काल में कर्मचारी का कार्य सन्तोषप्रद नहीं रहता तो भी उसे पुनः निम्न पद पर भेज दिया जाता है।

किसी कर्मचारी के लिए पद अवनति एक गंम्भीर दण्ड ही नहीं है वरन् सामाजिक एवं नैतिक जीवन पर गहरा लॉछन भी है। ऐसे कर्मचारी को सह कर्मचारी, पर्यवेक्षक तथा समाज भी हीन भावना से देखते हैं जिससे वह कुण्ठाग्रस्त हो जाता है।

11.11 पद अवनति सम्बन्धी नीति

किसी भी संगठन में कर्मचारी को पदोन्नत करना सरल है किन्तु पद–अवनत करना उतना सरल नहीं है। पद–अवनत का विरोध श्रमिकों तथा श्रम संघो द्वारा किया जाता है। इसके अतिरिक्त मानवीय दृष्टिकोण के समर्थक भी संकट–ग्रस्त श्रमिक के प्रति सहानुभूति रखते हैं। अतः पद–अवनति का निर्णय लेने से पहले प्रबन्धकों को

सभी पहलुओं पर ठीक प्रकार विचार कर लेना चाहिए। पद अवनति सम्बन्धी नीति सभी कर्मचारियों को भली भॉति ज्ञात होनी चाहिए। जिसमें पद–अवनति का कारण स्पष्ट कर देना चाहिए। अतः अवनति का निर्णय जल्दबाजी में नहीं लेकर पर्याप्त जॉच पड़ताल के बाद ही लिया जाना चाहिए।

पदावनति के पॉच सूत्र

1. पद अवनति के कारणों के लिए स्पष्ट एवं व्यावहारिक नियम सूची बनायी जानी चाहिए जिसका किसी भी तरह उल्लंघन करने पर पद अवनति की जा सकती है।
2. इस बात की जानकारी सभी कर्मचारियों को सेवा नियुक्ति के साथ ही दे देनी चाहिए।
3. नियम उल्लंघन सम्बन्धी मामलों की गहन छानबीन की जानी चाहिए।
4. यदि नियमों का उल्लंघन सिद्ध होता है तो सभी कर्मचारियों के साथ एक सा व्यवहार किया जाना चाहिए तथा चाहे वे किसी भी स्तर पर क्यों न हो।
5. यह प्रावधान होना चाहिए कि पद–अवनति के निर्णय का पुनरावलोकन किया जा सके और उस मामले पर न्यायिक दृष्टि से पुर्नविचार किया जा सके।

पद–अवनति की नीति को व्यावहारिक रूप देते समय कई बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। जैसे नैतिक नियमों के उल्लंघन, निम्न उपस्थिति, विलम्ब उपस्थिति, अनुशासन हीनता, आदि दशाओं में दण्ड स्वरूप पद–अवनति से कोई लाभ नहीं होगा। ऐसी परिस्थितियों में प्रशिक्षण की व्यवस्था की जानी चाहिए। इसी प्रकार यदि किसी कर्मचारी ने लम्बे समय तक कुशलतापूर्वक कार्य किया है और वह वर्तमान में उसी प्रकार कार्य नहीं कर सकता है तो उसकी पद–अवनति करना उचित नहीं है। उसका कार्य–भार या तो अन्य कुछ व्यक्तियों में बॉट दिया जाना चाहिए या उस व्यक्ति को समान स्तर पर पद दे देना चाहिए। इसी प्रकार नये पदोन्नत व्यक्ति को भी अपना कार्य–भार संभालने में असमर्थ होने पर तत्काल पदावनत नहीं कर दिया जाना चाहिए बल्कि उसके लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए।

11.12 स्थानान्तरण

स्थानान्तरण से आशय, कर्मचारी को समान स्तर, समान उत्तरदायित्व, समान वेतन, समान कार्यकारी दशा और समान प्रतिष्ठा के पदो पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना है। कर्मचारियों की इस क्षैतिजीय गति को ही स्थानान्तरण कहते हैं। दूसरे शब्दों में किसी कर्मचारी को एक कार्य से हटा कर दूसरे कार्य में लगा दिया जाता है किन्तु इससे कर्मचारी के पद, वेतन, प्रतिष्ठा व उत्तरदायित्व में कोई अन्तर नहीं आता है अर्थात् ज्यों का त्यों रहता है।

डेल योडर के अनुसार, स्थानान्तरण में किसी कर्मचारी का एक स्थानान्तरण किया जाता है, ऐसे कार्य परिवर्तन से कर्मचारियो के उत्तरदायित्व अथवा क्षतिपूर्ति में कोई अन्तर नहीं पड़ता है। डेल योडर ने स्थानान्तरण की विस्तृत परिभाषा देते हुए कहा है कि इसमें पदोन्नति एवं पद–अवनति के परिणामस्वरूप होने वाले कार्य परिवर्तन भी सम्मिलित हैं।

11.13 स्थानान्तरण के कारण

स्थानान्तरण के लिए 1. प्रशासकीय, 2. तकनीकी, 3. कर्मचारी सुविधा तथा 4. औद्योगिक सम्बन्ध आदि कारण उत्तरदायी हैं।

प्रशासकीय कारण

1. जब एक विभाग में कर्मचारी आवश्यकता से अधिक हों और दूसरे विभाग में आवश्यकता से कम हों तो उन्हें हस्तान्तरित करके सभी विभागों में प्रति व्यक्ति कार्यभार को समान रखा जा सकता है।
2. जब बदलती हुई परिस्थितियों में एक विभाग प्रगति कर रहा हो दूसरे विभाग का संकुचन हो तो स्थानान्तरण आवश्यक है।
3. प्रशासकीय नियन्त्रण की दृष्टि से प्रायः कर्मचारी को एक विभाग में निर्धारित समय से अधिक नही रखा जाता। विशेषतः ऐसे स्थान जहॉ समाज से सीधा सम्पर्क होता है, कर्मचारियों को अधिक समय तक कार्य नही करने दिया जाता क्यों कि ऐसा करने पर कर्मचारियों और समाज के सदस्यों में व्यक्तिगत सम्पर्क हो जाते है जो संगठन के लिए हानिकारक सिद्ध होते है।

तकनीकी कारण

1. विशिष्ट तकनीकी योग्यता वाले कर्मचारियों को एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरित किया जाता है। जिससे विभागीय कार्य ठीक प्रकार चलता रहें।
2. कई बार कर्मचारियों को कार्य आरम्भ के समय अनुपयुक्त स्थान पर नियुक्त किया जाता है, परन्तु बाद में कार्य विश्लेषण एवं कार्य मूल्यांकन के आधार पर उसे स्थानान्तरित करना पड़ता है।
3. कर्मचारियों को प्रशिक्षण के लिए भी स्थानान्तरित किया जाता है।

कर्मचारी सुविधा

1. कर्मचारी के कार्य पर सन्तुष्ट नहीं होने पर उसे स्थानान्तरित करना आवश्यक हो जाता है।
2. कर्मचारी का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहने पर भी स्थानान्तरण करना पड़ता है।
3. कर्मचारियों की मॉग पर एक विभाग से दूसरे विभाग में तथा एक स्थान से दूसरे स्थान पर स्थानान्तरण किया जाता है।
4. कर्मचारियों की रूचि में परिवर्तन हो जाने पर उसे उपयुक्त कार्य पर लगाने के लिए स्थानान्तरण किया जाता है।

औद्योगिक सम्बन्ध

1. संगठन में अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाये रखने के लिए स्थानान्तरण किया जाता है।
2. कर्मचारी समूहों में पारस्परिक विवाद हो जाने पर कर्मचारी का स्थानान्तरण करना आवश्यकत हो जाता है।
3. कर्मचारी स्वयं सामाजिक प्राणी होने के कारण सदैव मैत्रीपूर्ण वातावरण में रहना चाहता है। अतः उसकी मॉग के अनुसार यथासम्भव समायोजन का प्रयास किया जाता है।

स्थानान्तरण नीति

स्थानान्तरण के फलस्वरूप कर्मचारी को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उसे नये, वातावरण, नए समूह, नये यन्त्रों व उपकरणों तथा नये प्रबन्धकों के साथ कार्य करना पड़ता है। अनावश्यक एवं अवांछनीय स्थानान्तरण से कर्मचारी चिड़चिड़ा होता है। अतः प्रत्येक संगठन में स्थानान्तरण की नीति स्पष्ट होनी चाहिए।

स्थानान्तरण में निम्न बातों को समावेश होना चाहिए–

1. नीति पक्षपातहीन होनी चाहिए तथा इसकी जानकारी सभी कर्मचारियों को होनी चाहिए।
2. स्थानान्तरण नीति सभी विभागों में समान रूप से लागू होनी चाहिए।
3. स्थानान्तरण सम्बन्धी नीति के अन्तर्गत स्थानान्तरण सम्बन्धी कारणों का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।
4. स्थानान्तरण से सम्बन्धित सभी स्थान स्पष्ट होने चाहिए ।
5. स्थानान्तरण के परिणाम स्वरूप किसी कर्मचारी के वेतन, प्रतिष्ठा एवं उत्तरदायित्व की कमी नहीं होनी चाहिए।

एक अच्छी स्थानान्तरण नीति में निम्न समस्याओं पर बल दिया जाना चाहिए–

1. किस समय किस प्रकार के स्थानान्तरण करने हैं ?
2. वह क्षेत्र जिसमें स्थानान्तरण प्रभावकारी करने है ?
3. स्थानान्तरण प्रभावित करने के आधार क्या है ?
4. स्थानान्तरण के लिए पहल कौन करेगा और कौन उनका अनुमोदन करेगा?
5. क्या स्थानान्तरण स्थायी होंगे अथवा केवल समायोजन मात्र है?
6. नये पद पर कर्मचारी का वेतन क्या होगा ?
7. क्या स्थानान्तरण प्रभावकारी करने के लिए प्रशिक्षण आवश्यक होंगे ?

यह एक सर्वमान्य नीति है कि स्थानान्तरण के फलस्वरूप यदि किसी कर्मचारी को अपना परिवार स्थानान्तरित करना पड़े, तो उसे आवश्यक व्यय भी दिया जाना चाहिए।

स्थानान्तरण करते समय भी पदोन्नतियों की भाति कर्मचारी आलेख तथा मूल्यॉकन की सहायता लेनी चाहिए। स्थानान्तरण के समय अनुभवी कर्मचारी के अधिकारों को सुरक्षित रखने का ध्यान रखना चाहिए। यह नीति स्पष्ट होनी चाहिए कि स्थानान्तरण के कारण कर्मचारियों के वेतन भत्ते आदि में प्रतिकूल प्रभाव नहीं होगा।

स्थानान्तरण के प्रकार – स्थानान्तरण मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं–

1. उद्‌देश्य के आधार पर तथा 2. इकाई के आधार पर ।

1. **उद्‌देश्य के आधार पर–**

(i) उत्पादन स्थानान्तरण– इसके अन्तर्गत एक ही प्रकार के कार्य में संलग्न कर्मचारियों को आवश्यकता के अनुसार विभिन्न विभागो में कार्य सौपा जाता है यदि किसी विभाग में कार्य बढ़ जाता है तो दूसरे विभागों के कर्मचारियों का स्थानान्तरण कर दिया जाता है। किसी विभाग में कमी हो जाने पर कर्मचारियों को जबरी छुट्‌टी से बचाने के लिए भी इस प्रकार का स्थानान्तरण किया जाता है।

(ii) प्रतिस्थापन स्थानान्तरण– प्रतिस्थापन स्थानान्तरण का मुख्य उद्‌देश्य वरिष्ठ कर्मचारियों को कार्यरत रखना है। प्रतिस्थापन स्थानान्तरण भी उत्पादन स्थानान्तरण

की भॉति ही है। इसमें कर्मचारी को एक कार्य से हटाकर दूसरे स्थान पर लगाया जाता है, जहॉ पहले से या तो कोई नया व्यक्ति कार्य कर रहा था या निम्न पद का व्यक्ति कार्य कर रहा था। प्रतिस्थापन स्थानान्तरण कई बार अस्थायी व्यवस्था के लिए भी किया जाता है।

(iii) कार्य परिर्वतन हेतु स्थानान्तरण– समस्तरीय कर्मचारियों कों समय–समय पर विभिन्न विभागों में रखकर सभी कार्यो के लिए उन्हें उपयुक्त बनाया जाता है। ऐसे कार्य जिनकी प्रकृति एक सी होती है, किन्तु जिसमें भिन्न–भिन्न कियाएॅ की जाती है, इस प्रकार के स्थानान्तरण का कारण बनते हैं।

(iv) पारी स्थानान्तरण– वे प्रतिष्ठान जहॉ दो अथवा तीन पारियों में कार्य होता है, वहॉ समानता के आधार पर कर्मचारियों को बारी–बारी से दिन अथवा रात्रि पारी में स्थानान्तरित किया जाता है। कुछ कारखानों में यह व्यवस्था नियमित रूप से लागू होती है। जहॉ ऐसे नियम नहीं होते, वहॉ स्थानान्तरण द्वारा पारी परिर्वतन किया जाता है।

(v) निदानात्मक स्थानान्तरण– कर्मचारी समूह के आपसी मनमुटाव को कम करने के लिए अथवा कर्मचारी की पर्यवेक्षक से झड़प हो जाने से अथवा कर्मचारी का स्वास्थ्य किसी स्थान विशेष पर ठीक नहीं रहने से अथवा किसी कर्मचारी को अनुशासन की दृष्टि से स्थानान्तरण करना ही निदानात्मक स्थानान्तरण है।

(vi) उपचारात्मक स्थानान्तरण– उपचारात्मक स्थानान्तरण कर्मचारी को सीख देने की दृष्टि से किये जाते है। निदान और उपचार दोनों एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। निदान के लिए की गयी कार्यवाही का उद्देश्य अव्यवस्था को समाप्त करना है तथा उपचार का उद्देश्य भी अव्यवस्था को समाप्त करना है। उपचार हेतु किये गये स्थानान्तरण में कर्मचारी को कुछ कष्टप्रद स्थिति का सामना करना पड़ता है। उसे प्रतिकूल स्थान पर कार्य करने को कहा जाता है या उसकी सुविधा का ध्यान नहीं रखा जाता या उसे अधिक कठिन कार्य सौंपा जाता है।

2. **इकाई के आधार पर–**

(i) विभागीय स्थानान्तरण– एक इकाई में कई विभाग होते हैं। उनमें प्रायः कर्मचारियों का एक विभाग से दूसरे विभाग में स्थानान्तरण किया जा सकता है। जैसे उत्पादन विभाग से विक्रय विभाग में या क्रय विभाग में या परिवहन विभाग में स्थानान्तरण।

(ii) अन्तःसंयन्त्र स्थानान्तरण– यह स्थानान्तरण एक ही संगठन एवं प्रबन्ध के अधीन कई संयन्त्र, कई इकाइयॉ अथवा कई कार्यालय हो सकते हैं। उनमें भिन्न–भिन्न इकाइयों में स्थानान्तरण ही अन्तःसंयन्त्र स्थानान्तरण कहा जाता है।

इकाई के आधार पर स्थानान्तरण में विशेषतः अन्तर्सयन्त्र स्थानान्तरण में कर्मचारी को प्रशिक्षित करने की आवश्यकता हो सकती है। अतः स्थानान्तरण करते समय इन बातों का ध्यान रखा जाना चाहिए।

11.14 सारांश

'पदोन्नति' शब्द का अर्थ किसी कर्मचारी के पद में उन्नति से है। दूसरे शब्दों में उत्तरदायित्व की वृद्धि को सही अर्थो में पदोन्नति कहा जाता है। पदोन्नति में कर्मचारी निम्नस्तर पद से उच्चतर पद पर पहुँच जाता है तथा उसके उत्तरदायित्वों में भी वृद्धि होती है। पदोन्नति के परिणामस्वरूप कर्मचारी को मिलने वाले पारिश्रमिक एवं सुविधाओं में वृद्धि होती है। पदोन्नति के कारण कर्मचारी की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है जो उसके विकास की घोतक होती है।

कर्मचारियों में स्वामीभक्ति की भावना जाग्रत करने, कर्मचारियों में स्थायित्व की भावना को बनाए रखने, नियोक्ता एवं कर्मचारी के बीच निरन्तर मधुर सम्बन्ध बनाने, पुरस्कार स्वरूप, प्रशिक्षण की ओर आकर्षित करने, श्रम समस्याओं के समाधान के लिए, रिक्त स्थान की पूर्ति करने, औद्योगिक शान्ति बनाये रखने आदि पदोन्नति के सामान्य कारण हैं। पदोन्नति करते समय वरिष्ठता तथा योग्यता, संस्था के वर्तमान कर्मचारियों में से, पक्षपातपूर्ण रवैये को त्याग, पदोन्नति की रूपरेखा पहले से ही स्थापित, पदों को क्रमबद्धता, पदोन्नति योजनाओं और प्रशिक्षण योजनाओं दोनों में समन्वय, कर्मचारियों का पूर्ण विवरण आदि सिद्धान्तों को विशेष रूप से ध्यान रखा जाना चाहिए।

पदोन्नति के मुख्य उद्देश्य जनशक्ति का अधिकाधिक उपयोग करना, कर्मचारी को उसकी सेवाओं के लिए पुरस्कृत करना, कर्मचारी की रुचि बनाये रखना, योग्यता बढाने का पूर्ण अवसर प्रदान करने, अभिप्रेरण प्रदान करने, मनोबल में वृद्धि करना, प्रतिस्पर्द्धा का संचार करना तथा अच्छे कार्यकर्ता आकृष्ट करना है।

पदोन्नति पॉच प्रकार की होती हैं –1. अर्न्तविभागीय, 2. विभागीय, 3. अर्न्तसंयत्रीय, 4. अर्न्त–विभागीय पदोन्नति, 5. अन्तर–संयन्त्र पदोन्नति ।

एक स्वस्थ एवं सुदृढ पदोन्नति नीति में स्पष्ट आधार, सेवा में कार्यरत समस्त योग्य कर्मचारियों पर विचार, चयन का निश्चत मापदण्ड, पदोन्नति के लिए सन्तुष्टि, पदोन्नति का अन्तिम अनुमोदन, पदोन्नति के अवसरों की सूचना, पदोन्नति प्रशिक्षण आदि विशेषताएँ होनी चाहिए।

स्थानान्तरण का अर्थ कर्मचारी को समान स्तर, समान उत्तरदायित्व, समान वेतन, समान कार्यकारी दशा और समान प्रतिष्ठा के पदो पर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजना है अर्थात् में किसी कर्मचारी का एक कार्य से हटा कर दूसरे कार्य में लगा दिया जाता है किन्तु इससे कर्मचारी के पद, वेतन, प्रतिष्ठा व उत्तरदायित्व में कोई अन्तर नहीं आता है। स्थानान्तरण नीति में पक्षपातहीन, सभी विभागों में समान रूप से लागू, स्थानान्तरण सम्बन्धी कारणों का स्पष्ट उल्लेख, तथा स्थानान्तरण से सम्बन्धित सभी स्थान स्पष्ट होने चाहिए। स्थानान्तरण के परिणाम स्वरूप किसी कर्मचारी के वेतन, प्रतिष्ठा एवं उत्तरदायित्व की कमी नही होनी चाहिए।

11.15 शब्दावली

पदोन्नति : किसी कर्मचारी के पद में उन्नति से ।

स्थानान्तरण : कर्मचारी का एक कार्य से हटा कर दूसरे कार्य में लगा।

पद–अवनयनः किसी कर्मचारी को उसके पद से नीचे वाले पद पर स्थानान्तरित करना।

प्रतिस्थापन स्थानान्तरणः कनिष्ठ कर्मचारी के रिक्त स्थान की पूर्ति वरिष्ठ कर्मचारी द्वारा करना।

निदानात्मक स्थानान्तरणः समस्या को दूर करने के लिए किया गया स्थानान्तरण।

अनुमोदनः स्वीकृति प्रदान करना।

11.16 बोध प्रश्न

अ. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए।

1. पदोन्नति का अर्थ है– पद+............।
2. .... का उद्देश्य कर्मचारियों को उस जगह नियुक्त करना जहां उसकी सेवाओं का अधिक अच्छा उपयोग किया जा सकें।
3. पदोन्नति दो आधार पर होती है– योग्यता...............।
4. .... के आधार से पदोन्नति होने पर श्रमिकों में कार्य करने की प्रतिस्पर्धा बनी रहती है और कार्य भी अधिक होता है।

ब. सत्य एवं असत्य कथन बताइए।

1. पदोन्नति से आशय कर्मचारी की प्रगति से है।
2. पदोन्नति से उँचे पद के साथ–साथ सामान्यतः आय में वृद्धि होती है।
3. यह आवश्यक नही है कि योग्य व अनुभवी कर्मचारी को बराबर पदोन्नत किया जाए।
4. प्रशिक्षण कार्यक्रमों एवं पदोन्नति योजना में समन्वय जरूरी नही।
5. श्रमिक वर्ग वरिष्ठता के आधार पर और प्रबन्ध वर्ग योग्यता के आधार पर पदोन्नति के पक्ष में है।

11.17 बोध प्रश्नो के उत्तर

अ.

उत्तर– **1.उन्नति 2. पदोन्नति 3. वरिष्ठता 4. योग्यता**

ब.

उत्तर– **1.सत्य, 2.सत्य, 3. असत्य, 4.असत्य, 5.सत्य**

11.18 स्वपरख प्रश्न

1. पदोन्नति से आप क्या समझते है ? पदोन्नति के कारण, उद्देश्य और प्रकार स्पष्ट कीजिए। पदोन्नति के सिद्धान्त बताइए।
2. पदोन्नति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. स्थानान्तरण किसे कहते हैं ? यह कितने प्रकार का होता है ? एक श्रेष्ठ स्थानान्तरण नीति की मुख्य विशेषतायें स्पष्ट कीजिए।
4. स्थानान्तरण से क्या आशय है ? इसके कारणों की विवेचना कीजिए। स्थानान्तरण के सम्बन्ध में क्या नीति होनी चाहिए ?
5. स्वस्थ पदोन्नति नीति की प्रमुख आवश्कताएँ बताइए।
6. पदोन्नति की समस्याएँ बताइए तथा उन्हें दूर करने की सुझाव भी दीजिए।

11.19 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981

2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979

इकाई 12 कर्मचारी अभिप्रेरण (EMPLOYEE MOTIVATION)

इकाई की रुपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 अभिप्रेरण का आशय एवं परिभाषाऍ
12.3 अभिप्रेरण की विशेषताएं
12.4 अभिप्रेरण के उद्देश्य
12.5 अभिप्रेरण के प्रकार
12.6 अभिप्रेरण की तकनीकें अथवा विधियॉ
12.7 अभिप्रेरण के सिद्धान्त अथवा विचारधाराऍ
12.8 अभिप्रेरण प्रक्रिया
12.9 अच्छी अभिप्रेरण प्रणाली की आवश्यक बातें
12.10 अभिप्रेरण को प्रभावित करने वाले घटक
12.11 अभिप्रेरण का महत्व अथवा लाभ
12.12 अभिप्रेरण की समस्यायें
12.13 सारांश
12.14 शब्दावली
12.15 बोध प्रश्न
12.16 बोध प्रश्नो के उत्तर
12.17 स्वपरख प्रश्न
12.18 सन्दर्भ पुस्तकें

12.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- अभिप्रेरण के अर्थ, प्रकृति और महत्व को समझ सकें।
- अभिप्रेरण की तकनीकें अथवा विधियॉ को समझ सकें।
- अभिप्रेरण के सिद्धान्तों का वर्णन कर सकें।
- अच्छी अभिप्रेरण प्रणाली की आवश्यक बातों का वर्णन कर सकें।
- अभिप्रेरण की समस्याओं को विस्तार से समझ सकें।

12.1 प्रस्तावना

किसी व्यवसाय को सुचारू रूप से चलाने के लिए 'मानव तत्व' की आवश्यकता होती है जिससे भौतिक साधनों का प्रयोग संभव होता है। प्रबन्ध में प्रारम्भ से अन्त तक मानव तत्व से व्यवहार करना पड़ता है इसीलिए अभिप्रेरण को प्रबन्ध के एक महत्वपूर्ण कार्य के रूप में स्वीकार किया गया है। कर्मचारी से मशीन की भॉति कार्य नहीं लिया जा सकता क्योंकि कर्मचारी के अपने विचार, इच्छाएं एवं आकांक्षाएं होती हैं। अतः एक कर्मचारी में कार्य के प्रति रूचि उत्पन्न करना , उस रूचि में वृद्धि करना तथा विकास के लिए हार्दिक इच्छा उत्पन्न करना आवश्यक है। यह कार्य अभिप्रेरण द्वारा ही किया जा सकता है।

12.2 अभिप्रेरण का आशय एवं परिभाषाऍ

अभिप्रेरण का आशय– अभिप्रेरण से तात्पर्य व्यक्ति की इच्छा और तत्परता को जाग्रत करने से है, जिसके अन्तर्गत भावुक होकर मनुष्य अधिक कार्य करने का प्रयत्न करता है। है। प्रायः व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरणा उसकी आर्थिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं से प्राप्त होती है। कर्मचारी को अभिप्रेरित करने का अर्थ है उसमें अपनी वर्तमान निष्पत्ति को सुधारने की आवश्यकता और इच्छा उत्पन्न करना।

दूसरे शब्दों में, सहयोग प्राप्त करने की कला को ही अभिप्रेरण कहते हैं। वास्तव में देखा जाय तो कर्मचारियों को अधिकाधिक कार्य करने की प्रेरणा देना तथा कार्य सन्तुष्टि की उपलब्धि कराना ही अभिप्रेरण है।

अभिप्रेरण की कुछ परिभाषाऍ इस प्रकार हैं–

1– **जूसियस के अनुसार**– अभिप्रेरण एक व्यक्ति को अथवा स्वयं को वांछित प्रक्रिया करने के प्रति प्रेरित करना है अर्थात् वांछित कार्य करने के लिए सही बटन को दबाना है।

2– **बीच के अनुसार**– अभिप्रेरण को एक लक्ष्य या पुरस्कार प्राप्त करने की दृष्टि से शक्ति का विस्तार करने की इच्छा के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

3– **केरोल शार्टल के अनुसार**– किसी निश्चित दिशा में गतिमान होने अथवा निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए निश्चित प्रेरणा या तनाव ही अभिप्रेरण है।

4– **स्टेनले वेन्स के अनुसार**– ''ऐसा कोई विचार अथवा इच्छा जिससे किसी भी व्यक्ति की भावना इस प्रकार परिवर्तित होती है कि वह कार्य करने के लिए कृत संकल्प हो जाता है'' ही अभिप्रेरण है।

12.3 अभिप्रेरण की विशेषताएं

अभिप्रेरण में कई प्रकार की विशेषताऍ पायी जाती हैं, जो इस प्रकार हैं–

1. **एक अनन्त प्रक्रिया**– अभिप्रेरण से आशय ऐसी प्रक्रिया से है जिससे प्रेरित व्यक्ति निष्क्रियता एवं कार्य के प्रति उदासीनता को छोड़कर अधिक कार्य करने के लिए सोचता है। अभिप्रेरण प्रक्रिया के समय स्थान परिस्थितियॉ तथा व्यवहार आदि सम्मिलत रूप से कार्य हेतु अनुकूल अथवा प्रतिकूल वातावरण तैयार करते हैं। अभिप्रेरण की किया का प्रत्यक्ष सम्बन्ध समय से है जो स्वयं गतिमान है।

2. **कर्मचारी प्रेरक प्रक्रिया**– प्रबन्धक कई माध्यमों द्वारा लक्ष्य प्राप्ति का प्रयास करते हैं। अपने उद्देश्यों की पूर्ति करना प्रबन्धक के लिए तभी संभव है जब वह कर्मचारियों को कार्य के लिए प्रेरित कर सकें। अभिप्रेरण द्वारा कर्मचारियों से अधिक कार्य लेना संभव हो पाता है ।

3. **एक मनोवैज्ञानिक धारणा**– अभिप्रेरण की अवधारणा का मूलाधार मनोवैज्ञानिक है क्योंकि इसके अन्तर्गत मानवीय व्यवहार को समझने का अवसर मिलता है जो कि अभिप्रेरण के अध्ययन हेतु अत्यावश्यक है ।

4. **कार्य सहयोग का आधार**– पर्याप्त अभिप्रेरण के द्वारा ही प्रबन्धक अपने अधीनस्थों से उचित सहयोग प्राप्त कर उपक्रम के उद्देश्यों की प्राप्ति कर सकते हैं। मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं शारीरिक सुरक्षात्मक, सामाजिक स्वाभिमान तथा आत्म विकास सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति के साधन ही अभिप्रेरक होते हैं।

5. **कार्य करने की शक्ति**– कार्य की वह शक्ति जिससे अधीनस्थ कर्मचारी किसी निर्देशित दिशा में कार्य करना चाहता है अथवा नहीं करना चाहता है, अभिप्रेरण है। अभिप्रेरण धनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों हो सकता है। ऋणात्मक अभिप्रेरण के लिए भय व दबाव तथा धनात्मक अभिप्रेरण में प्रशंसा व सराहना का सहारा लिया जाता है। अभिप्रेरण द्वारा कार्य को गति मिलती है।

6. **सन्तुष्टि का कारण नहीं परिणाम**– अभिप्रेरण एक मानसिक विचार है। वर्तमान अथवा सम्भावी प्रलोभनों के आधार पर व्यक्ति को कार्य के लिए प्रेरणा मिलती है। चाहे वह वित्तीय हो या अवित्तीय।

7. **कार्यो की कार्यक्षमता वृद्धि में सहायक**– अभिप्रेरण से व्यक्तियों को कार्य करने हेतु वांछित प्रेरणा प्राप्त होती हैं, जिससे वह अधिक उत्पादन कर सकता है। इसके परिणामस्वरूप कम लागत पर अधिक उत्पादन सम्भव हो पाता है।

8. **मनोबल से भिन्न**– अभिप्रेरण एवं मनोबल दोनों में अन्तर है। अभिप्रेरण एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारी कार्य के लिए प्रेरित होता है, जबकि मनोबल स्वयं कार्य करने की इच्छा है। अभिप्रेरण से कर्मचारी का मनोबल बढ़ता है और वह अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित होता है।

12.4 अभिप्रेरण के उद्देश्य

अभिप्रेरण के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं –

- कर्मचारियों को स्वेच्छा से अधिक से अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करना।
- कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा उठाना।
- कर्मचारियों की आर्थिक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को पूरा करना।
- स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों का विकास करना।
- श्रम पूॅजी के सम्बन्धों का सुधार करना।
- कर्मचारियों की कार्य कुशलता में वृद्धि करना ।
- मानवीय साधनों का सदुपयोग करना ।
- कर्मचारियों की कार्य सन्तुष्टि करना।
- कर्मचारियों से सहयोग प्राप्त करना ।
- संस्था के लक्ष्यों को प्राप्त करना।

12.5 अभिप्रेरण के प्रकार

प्रबन्धकों द्वारा सामान्यतः जो अभिप्रेरण कर्मचारियों को प्रेरित करने के लिए प्रयोग किये जाते हैं, उन्हें अग्र प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. **धनात्मक एवं ऋणात्मक अभिप्रेरण**–

धनात्मक अभिप्रेरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा कर्मचारियों को किसी पुरस्कार, लाभ अथवा प्रलोभन के माध्यम से कार्य करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। धनात्मक अभिप्रेरण की कुछ प्रमुख विधियों में निम्न को सम्मिलित किया जा सकता है–

1– प्रशंसा व सम्मान प्रदान करना, 2– अधिक मजदूरी प्रदान करना, 3– प्रतियोगिताएँ आयोजित करना, 4– पदोन्नति के अवसर प्रदान करना, 5– अच्छी कार्य की दशाएँ प्रदान करना आदि।

ऋणात्मक अभिप्रेरण के अन्तर्गत भय, ताड़ना, दण्ड, आदि के माध्यम से कर्मचारियों को कार्य के लिए प्रेरित किया जाता है। परम्परागत प्रबन्धकीय विचारधारा का अनुसरण करने वाले प्रबन्धक इस अभिप्रेरण का प्रयोग करते हैं क्योंकि इससे कर्मचारी के आत्म सम्मान को ठेस पहुॅचती है और मौद्रिक हानि होने के भय से वह उच्च अधिकारियों के आदेशानुसार कार्य करने लगता है।

2. वित्तीय एवं अवित्तीय अभिप्रेरण–

वित्तीय अभिप्रेरण के अन्तर्गत कर्मचारियों को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष मौद्रिक लाभ द्वारा उन्हें कार्य के लिए प्रेरित किया जाता है। निश्चय ही व्यक्ति अपनी निम्नस्तरीय आवश्यकताएँ ही नहीं, वरन उच्चस्तरीय आवश्यकताएँ भी वित्तीय साधनों से पूरी कर सकता है। इस प्रकार के अभिप्रेरण के सर्वप्रचलित माध्यम 1– वेतन/मजदूरी व बोनस है। इसके अतिरिक्त 2– लाभभागिता 3– सवेतन अवकाश, 4– सेवानिवृत योजनाएँ, 5– इनाम, 6– विनियोग पर ब्याज आदि वित्तीय प्रेरणा के उदाहरण हैं।

अवित्तीय अभिप्रेरक का वित्तीय लाभों में तो कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, परन्तु वे कर्मचारी को कार्य के लिए वित्तीय प्रेरणाओं की अपेक्षा अधिक प्रेरित करती हैं। सामान्यतः ये अभिप्रेरणाएँ कर्मचारी को मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं। कुछ प्रमुख अवित्तीय अभिप्रेरणाएँ इस प्रकार हैं– 1– कार्य की प्रशंसा 2– सहभागिता 3– अधिकार प्रत्यायोजन, 4– आत्म विकास के अवसर आदि।

3. वाह्य एवं आन्तरिक अभिप्रेरण–

वाह्य अभिप्रेरण वह है जो कार्य के अतिरिक्त स्रोतों से प्राप्त होता है । यह अभिप्रेरण कार्य के समय उत्पन्न नही होते, वरन् कार्योपरान्त प्राप्त होते हैं तथा ये कार्य के समय कर्मचारी को कोई सन्तुष्टि प्रदान नही करते हैं। वाह्य अभिप्रेरण के उदाहरण इस प्रकार हैं–

1– सेवा निवृत्त योजनाएँ 2– स्वास्थ्य बीमा 3– सवेतन अवकाश 4– अनुषांगिक लाभ आदि।

आन्तरिक अभिप्रेरणाएँ वे हैं जो कार्य निष्पादन के समय उत्पन्न होती हैं। इसका कार्य के अभिप्रेरण में प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। सामान्यतः ये प्रेरणाएँ कर्मचारी की उच्चस्तरीय आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। इन अभिप्रेरणाओं के प्रमुख उदाहरण इस प्रकार हैं–

1– उपलब्धि, 2– कार्य मान्यता 3– उत्तरदायित्व व 4– सहभागिता ।

4. **व्यक्तिगत एवं सामूहिक अभिप्रेरण– व्यक्तिगत अभिप्रेरण** से आशय व्यक्ति विशेष की आवश्यकतों की पूर्ति करने के लिए किए गये व्यक्तिगत अभिप्रेरण से है।

इन अभिप्रेरणाओं में प्रशंसा पत्र, प्रमाण पत्र, नौकरी की सुरक्षा, सम्मान, विकास एवं पदोन्नति आदि अवसर मुख्य हैं।

सामूहिक अभिप्रेरण से आशय उस अभिप्रेरण से है जिसमें व्यक्तियों के किसी समूह को समूह लक्ष्यों के लिए अभिप्रेरित किया जाता है। इसमें किसी कर्मचारी विशेष को अभिप्रेरणा न दे कर कर्मचारियों के समूह को अभिप्रेरणाएं दी जाती हैं। सामूहिक अभिप्रेरणाओं में सहभागिता, समूह को मान्यता प्रदान करना, अधिलाभांस देना, सुझाव व्यवस्था लागू करना आदि को सम्मिलित करते हैं।

12.6 अभिप्रेरण की तकनीकें अथवा विधियॉ

कर्मचारी को अभिप्रेरण प्रदान करने की प्रमुख विधियॉ निम्नलिखित विधियॉ हैं–

1. **कुशल नेतृत्व द्वारा अभिप्रेरण–** कर्मचारियों को कार्य करने के लिए प्रेरित करने की शक्ति को ही नेतृत्व कहते हैं। कुशल नेतृत्व ही कर्मचारियों का विश्वास एवं प्रेम जीतता है। प्रबन्धक अपने अधीनस्थों की कठिनाइयों को सुनते हैं तथा उन्हें दूर करने का प्रयत्न करते हैं। इससे अधीनस्थ अभिप्रेरित होते हैं तथा पूर्ण लगन एवं निष्ठा से कार्य करने के लिए उत्तेजित हो उठते हैं।
2. **लक्ष्यों द्वारा अभिप्रेरण–** प्रबन्धक की सफलता उपक्रम द्वारा निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति पर निर्भर करती है। अतः प्रबन्धकों को चाहिए कि वे अधीनस्थों को उपक्रम द्वारा निर्धारित लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के बारे में पूर्ण जानकारी प्रदान करें। ऐसा होने पर ही कर्मचारीगण लक्ष्यों की प्राप्ति करने के लिए प्रेरित हो उठेंगे।
3. **सहभागिता द्वारा अभिप्रेरण–** किसी उपक्रम में कार्य करने वाले कर्मचारियों से संयुक्त परामर्श करके, उनके साथ बैठकर विचार–विनिमय करके, उन्हें निर्णय लेने में सम्मिलित करके तथा प्रबन्ध में सहभागिता देकर कर्मचारियों को प्रेरित किया जा सकता है। इससे कर्मचारियों को सन्तुष्टि होती है तथा वे उसमें भाग लेने में गौरव का अनुभव करते हैं। इस प्रकार सहभागिता द्वारा अभिप्रेरण देना सम्भव है।
4. **चुनौती द्वारा अभिप्रेरण–** कई व्यक्ति दक्ष होते हुए भी अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य करने को तत्पर नही होते हैं। ऐसे व्यक्तियों से कार्य लेने के लिए पहले उन्हें जोश दिलाना पड़ता है और तब वे उक्त चुनौती को स्वीकार करके अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य करने के लिए प्रेरित हो उठते हैं। चुनौती को स्वीकार करने तथा उनके अनुसार कार्य करने में कर्मचारी गर्व का अनुभव करते हैं।
5. **स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा द्वारा अभिप्रेरण–** जब किसी उपक्रम को अन्य उपक्रमों से होने वाली प्रतियोगिता का सामना करना पड़ता है तो उक्त उपक्रम में कार्य करने वाले सभी कर्मचारी मिलकर तथा एकजुट होकर प्रतिस्पर्द्धा में विजय पाने के लिए अपनी पूर्ण क्षमता से कार्य करने लगते हैं। इस प्रकार प्रतिस्पर्द्धा व सामूहिक प्रयासों से दक्षता तथा उत्पादन दोनों में वृद्धि होती है तथा उपक्रम आगे बढ़ता है।
6. **परिर्वतन द्वारा अभिप्रेरण–** आवश्यकता पड़ने पर किसी व्यक्ति की प्रवृत्ति में परिवर्तन करना पड़ता है। इसे परिर्वतन द्वारा अभिप्रेरण कहते हैं। उदाहरण के लिए, यदि किसी कॉलेज के प्राध्यापक प्रायः देरी से आते है तथा प्रधान अध्यापक भी देरी से आता है तो प्राध्यापकों की देरी से आने की प्रवृत्ति का उन्मूलन करने के लिए कॉलेज

के प्रधान अध्यापक को स्वयं समय पर आकर अपने प्राध्यापकों के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा करने से प्राध्यापक भी समय पर आने के लिए प्रेरित होंगे।

7. **आकर्षण द्वारा अभिप्रेरण–** कर्मचारियों को अच्छा कार्य करने के प्रति आकर्षण प्रदान करके अभिप्रेरित किया जा सकता है। जो कर्मचारी अच्छा कार्य करते हैं तथा उसे निर्धारित अवधि अथवा उससे पूर्व ही पूरा कर लेते हैं, उनकी प्रशंसा की जानी जानी चाहिए, उनके कार्य को मान्यता मिलनी चाहिए तथा उसे पुरस्कृत भी किया जाना चाहिए। ऐसा करने से अन्य कर्मचारी भी अच्छा कार्य करने तथा निर्धारित अवधि अथवा उससे पूर्व पूरा करने के लिए प्रेरित होंगे।

12.7 अभिप्रेरण के सिद्धान्त अथवा विचारधाराएँ

अभिप्रेरण के सिद्धान्तों को निम्नलिखित तीन समूहों में विभाजित किया जा सकता है –

अ– अभिप्रेरण के मूलभूत सिद्धान्त –

(I) **अभिप्रेरण का एकात्मक अथवा द्रव्यात्मक सिंद्धान्त–** इस सिद्धान्त की आधारशिला यह है कि व्यक्ति केवल अधिकाधिक धन प्राप्त करने के लिए ही कार्य करता है। यह मुद्रा को ही मानवीय व्यवहार का आधार मानकर चलता है, अतः यह सिद्धान्त आर्थिक व्यक्ति की विचारधारा पर आधारित है, जिसका अर्थ है कि व्यक्ति केवल मौद्रिक पुरस्कार पाने के लिए ही कार्य करता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति को दिये जाने वाले पारिश्रमिक की मात्रा जितनी अधिक होगी, व्यक्ति उतना अधिक कार्य करने के लिए तत्पर होगा।

(II) **अभिप्रेरण का अनेकवादी अथवा बहुलवादी सिद्धान्त–** अभिप्रेरण का अनेकवादी सिद्धान्त एक आधुनिक सिद्धान्त है जोकि इस विचारधारा पर आधारित है कि व्यक्ति केवल एक उद्देश्य अथवा एक ही आवश्यकता की पूर्ति के लिए कार्य नहीं करता अपितु अनेक आवश्यकताओं की पूर्ति के कार्य करता है। ये आवश्यकताएँ विभिन्न समयों पर विभिन्न तनाव उत्पन्न करती हैं और उसे ऐसी रीति से व्यवहार करने के लिए प्रेरित करती हैं जिसे वह समझता है कि उसके तनाव कम होंगे एवं उसकी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होगी। आवश्यकताएँ और उनकी सन्तुष्टि का क्रम निरन्तर चलता रहता है।

ब– अभिप्रेरण के आधुनिक सिद्धान्त

(I) **आवश्यकताओं की कमबद्धता का सिद्धान्त–** विख्यात मनोवैज्ञानिक **श्री ए0 एच0 मैस्लो** ने अभिप्रेरण सिद्धान्त की आवश्यकताओं को क्रमबद्धता के आधार पर विकसित किया है। उनके अनुसार एक व्यक्ति की आवश्यकताएँ अनन्त होती हैं तथा उसमें क्रमबद्धता पायी जाती है।

मैस्लो के अनुसार प्रमुख मानवीय आवश्यकताओं के पॉच स्तर हैं–

मैस्लो की आवश्यकताओं की क्रमबद्धता

आत्म– विकास

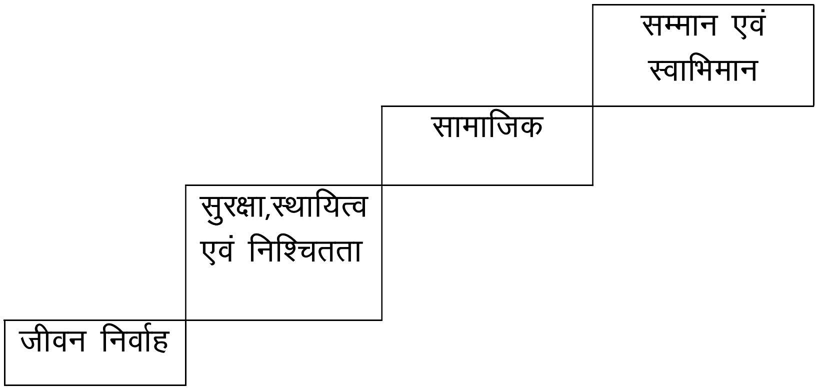

मैस्लो के अनुसार व्यक्ति आवश्यकताओं के उपयुक्त क्रम में अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। प्रत्येक स्तर की आवश्यकताओं का संक्षेप में वर्णन निम्नवत है–

1. **आधारभूत जीवन निर्वाह की आवश्यकताएॅ–** मैस्लो द्वारा प्रतिपादित आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सबसे पहला स्तर आधारभूत निर्वाह सम्बन्धी आवश्यकताएॅ हैं। इनमें भोजन, पानी, वायु, आवास तथा यौन सम्पर्क प्रमुख हैं। ये आवश्यकताएॅ व्यक्ति को कार्य करने के लिए सबसे अधिक प्रेरित करती हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति न होने पर व्यक्ति के लिए अपना जीवन व्यतीत करना कठिन हो जाता है और उसकी मृत्यु तक हो जाती है।
2. **सुरक्षा स्थायित्व तथा निश्चितता की आवश्यकताएॅ–** जैसे ही व्यक्ति की आधारभूत जीवन निर्वाह आवश्यकताओं की सन्तुष्टि हो जाती है, वह तुरन्त आवश्यकताओं के आगे के स्तर अथवा सुरक्षा, स्थायित्व तथा निश्चितता की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। व्यक्ति अपने रोजगार की सुरक्षा चाहता है तथा उसमें स्थायित्व एवं निश्चितता पाने का प्रयास करता है। फलतः वह अधिकाधिक प्रयत्न करता रहता है।
3. **सामाजिक आवश्यकताएॅ–** मानव समाजिक प्राणी है। वह समाज से पृथक् होना नहीं चाहता है। समाज में रहने के लिए सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना परम आवश्यक होता है, अतः वह आधारभूत जीवन–निर्वाह तथा सुरक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि पर ध्यान देता है। यदि मानव की इन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं होती है तो फिर उसके लिए समाज में रहना सम्भव नहीं हो पाता है, क्योंकि उसके मन में सदैव यह भय बना रहता है कि कहीं उसका सामाजिक बहिष्कार न हो जाये।
4. **सम्मान एवं स्वाभिमान आवश्यकताएॅ–** व्यक्ति की सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो जाने के पश्चात् सम्मान एवं स्वाभिमान आवश्यकताओं का जन्म होता है। इन आवश्यकताओं में मान्यता प्राप्त करने की इच्छा, प्रतिष्ठा पाने की इच्छा, अहम शान्त करने की इच्छा आदि प्रमुख है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति इन आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करने का प्रयास करता है, किन्तु उनकी सभी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होना आवश्यक नहीं है। एक कर्मचारी जितने अधिक पद ऊॅचे पद पर होगा उसकी सम्मान एवं स्वाभिमान की आवश्यकताएॅ उतनी ही अधिक होंगी।
5. **आत्म विकास की आवश्यकताएॅ–** मैस्लो की आवश्यकता की क्रमबद्धता में अन्तिम स्थान आत्म–विकास की आवश्यकताओं का है जिन पर की व्यक्ति सबसे अन्त में ध्यान देता है। प्रत्येक व्यक्ति की यह इच्छा होती है कि जो

कुछ उसमें बनने की योग्यता है, वह उसके योग्य बन जाय। इसी को आत्म विश्वास की योग्यता कहते हैं। मैस्लो के अनुसार एक संगीतकार को संगीत बनाना चाहिए, एक कलाकार को रंग करना चाहिए, एक कवि को लिखना चाहिए, यदि यह अन्ततोगत्वा प्रसन्न होना चाहता है।

(II) **अभिप्रेरण आरोग्य स्वास्थ्य सिद्धान्त**

अथवा

द्विघटकों वाली विचारधारा

हर्जबर्ग एवं उनके साथियों ने सन् 1950 में विहसबर्ग क्षेत्र के लगभग 200 अभियन्ताओं एवं लेखाकारों से किये गये साक्षात्कार से प्राप्त निष्कर्षो के आधार पर इस अभिप्रेरण के सिद्धान्त का प्रतिपादन एवं विकास किया। यह सिद्धान्त हर्जबर्ग के अभिप्रेरण आरोग्य सिद्धान्त के नाम से विख्यात है। इस सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य की आवश्यकताओं के समूह होते हैं जो एक दूसरे से भिन्न होते हैं। एक समूह स्वास्थ्य तत्वों का होता है तथा दूसरा समूह अभिप्रेरक तत्वों का होता है।

हर्जबर्ग एवं उनके साथियों ने इन अध्ययनों एवं अनुसंन्धानों के निम्न दो प्रमुख निष्कर्ष निकाले –

1. उनके अनुसार जब व्यक्ति अपने कार्यो से असन्तुष्टि प्राप्त करते हैं तो उनकी इस असन्तुष्टि का प्रमुख कारण वह वातावरण है जिनके अन्तर्गत कि वे कार्य करते हैं। हर्जबर्ग ने इस वातावरण को प्रभावित करने वाले घटकों को आरोग्य अथवा स्वास्थ्य तत्व के नाम से पुकारा है। आवश्यकताओं के प्रथम समूह अथवा आरोग्य तत्व अथवा वातावरण या कृत्य को प्रभावित करने वाले बाहरी तत्व निम्नलिखित हैं–

   आरोग्य तत्व 1– पर्यवेक्षण 2– कम्पनी की नीति और प्रशासन 3– कार्य दशाएँ 4– पारस्परिक वैयक्तिक सम्बन्ध 5– स्थिति 6– मजदूरी तथा 7– कार्य सुरक्षा ।

2. हर्जबर्ग के अनुसार – जब कार्य से सन्तुष्टि प्राप्त करते हैं तो ऐसी सन्तुष्टि केवल कार्य से ही प्राप्त की जा सकती है उन्होने कार्य से सन्तुष्टि प्राप्त करने वाले घटको को अभिप्रेरक तत्व के नाम से सम्बोधित किया है। इन अभिप्रेरक तत्वों को व्यक्ति की आवश्यकताओं के दूसरे समूह में सम्मिलित किया गया है । ये तत्व व्यक्ति को अधिक कुशलता के साथ कार्य करने के लिए अभिप्रेरित करते हैं। इन्हें हर्जबर्ग एवं उनके साथियों ने कार्य के आन्तरिक घटक माना है। अभिप्रेरक तत्व निम्नलिखित है–

   1– कार्य, 2– उपलब्धि, 3– मान्यता, 4– उत्तरदायित्व, 5– उन्नति, 6– विकास की सम्भावनाएँ

(III) **सहभागिता सिद्धान्त**– अभिप्रेरण के सहभागिता सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारी केवल मुद्रा ही नहीं चाहता अपितु संस्था में अपनेपन की भावना का अनुभव करना चाहता है अतः उसे संस्था के प्रबन्ध में सहभागिता प्रदान की जानी चाहिए। यदि संस्था में कार्यरत कर्मचारियों को संस्था के कार्य–निर्धारण एवं नीति– निर्धारण आदि में सम्मिलित किया गया है तो वे इससे अधिकाधिक अभिप्रेरित होगें। यदि कर्मचारियों

को उनके वैयक्तिक एवं सामूहिक लक्ष्यों के निर्धारण में हिस्सा लेने का अवसर प्रदान किया जाय तो वे अधिकाधिक अभिप्रेरित होंगे।

(IV) **कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षण सिद्धान्त अथवा प्रतिरूप विचारधारा–**

रेन्सिस लिकर्ट द्वारा प्रतिपादित कर्मचारी –केन्द्रित पर्यवेक्षण सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारी को प्राप्त होने वाला पर्यवेक्षण उसकी उत्पादकता, सन्तुष्टि एवं अभिप्रेरण को प्रभावित करता है, यदि कर्मचारी यह अनुभव करते हैं कि उनका नियोक्ता सम्पूर्ण व्यवस्था में उन्हें केवल यन्त्र का एक पुर्जा मात्र ही मानता है तो उनको मानसिक आघात पहॅुचाता है तथा इसका उनकी उत्पादकता एवं सन्तुष्टि पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है । किन्तु यदि वह यह अनुभव करते हैं कि उनका नियोक्ता उनके हितों की रक्षा करता है, उनके कल्याण के लिए कार्य करता है एवं उनके लिए प्रभावी पर्यवेक्षण की अवस्था करता है तो वे अभिप्रेरित होते हैं और पूर्ण कार्य क्षमता के साथ कार्य करते हैं।

(V) **पथ–लक्ष्य सिद्धान्त–** इस विचारधारा के प्र्वतक गोरगो पौलस, माहौली व जोन्स हैं। इनकी मान्यता है कि व्यक्ति तब तक कठिन परिश्रम करेंगे जब तक वे इस बात के लिए आश्वस्त हो जायें कि उनको लक्ष्य की प्राप्ति कठिन परिश्रम द्वारा ही हो सकती है। इस विचारधारा की यह मान्यता है कि कर्मचारियों की आकांक्षाए बहुत ऊॅची होती हैं और वे सदैव इनकी तुष्टी के लिए कार्य करते हैं। यह विचारधारा यह भी मानती है कि कार्य के लिए अभिप्रेरण व्यक्तिगत लक्ष्यों पर एवं परिस्थितियों के द्वारा काफी प्रभावित होता है।

स. अभिप्रेरण के परम्परागत सिद्धान्त

1. **भय एवं दण्ड सिद्धान्त–** इस विचारधारा का अनुसरण करने वाले प्रबन्धक तानाशाही मनोवृत्ति के होते हैं और सदैव कर्मचारियों को कार्य करने हेतु बाध्य करते हैं। इस विचारधारा की मान्यता है कि कर्मचारी दण्ड के भय से ही कार्य के लिए प्रेरित होते हैं। अतः कर्मचारियों से कार्य करवाने हेतु प्रबन्धक सदैव यही मूलमन्त्र दोहराते हैं कि या तो कार्य करो या चले जाओ या यह विचारधारा सेना के इस सिद्धान्त के अनुरूप है कि न उत्तर दो न प्रश्न करो, लेकिन करो या मरो।
2. **पुरस्कार सिद्धान्त–** इस विचारधारा की यह मान्यता है कि पुरस्कार तथा अच्छी कार्य की दशाऍ कर्मचारी की संतुष्टि व कार्यक्षमता में वृद्विे करती हैं। यह विचारधारा इस तथ्य पर आधारित है कि कर्मचारी उस सीमा तक ही कुशलतापूर्वक कार्य करेगें जिस सीमा तक उनको लाभ प्राप्त हो अर्थात् लाभ व कार्य निष्पादन में गहरा सम्बन्ध हो और कर्मचारी अधिक लाभ प्राप्ति पर अधिक परिश्रम करते हैं। टेलर ने भी इस विचारधारा का सत्यापन किया, उनके अनुसार यदि कर्मचारी को अधिक धन दिया जाय तो वह अधिक उत्पादन करेगा।
3. **कैरट तथा स्टिक सिद्धान्त–** अभिप्रेरण का यह सिद्धान्त इस बात पर बल देता है कि दण्ड एवं पुरस्कार दोनों के संयोजन से व्यक्तियों को अभिप्रेरित किया जा सकता है । इस सिद्धान्त के अनुसार जो व्यक्ति सामान्य कार्यक्षमता से

अधिक कार्यक्षमता अर्जित कर लेते हैं उन्हें पुरस्कार दिया जाना चाहिए और जो सामान्य कार्यक्षमता से कम कार्यक्षमता अर्जित करते हैं उन्हें दण्ड दिया जाना चाहिए। दूसरे शब्दों में जिन कर्मचारियों एवं श्रमिकों का कार्य निष्पादन के निश्चित न्यूनतम स्तर से ऊपर है उन्हें पुरस्कार दिया जाना चाहिए और जिनका कार्य निश्चित न्यूनतम स्तर से नीचा है, उन्हें दण्डित किया जाना चाहिए।

4. **मेकग्रेगर का एक्स एवं वाई का सिद्धान्त**– एक्स एवं वाई सिद्धान्त का प्रतिपादन मेकग्रेगर ने किया। उन्होंने अभिप्रेरण को दो भागों में बॉटा है– एक्स एवं वाई सिद्धान्त। जहॉ एक ओर एक्स सिद्धान्त निराशावादी प्रवृत्ति को प्रकट करता है वहीं दूसरी ओर वाई–सिद्धान्त आशावादी प्रवृत्ति को प्रकट करता है। इन दोनों सिद्धान्तों का संक्षिप्त विवेचन निम्न प्रकार किया गया है–

एक्स सिद्धान्त (X-THEORY)

एक्स सिद्धान्त एक परम्परागत सिद्धान्त है। वह कड़े अनुशासन, भय तथा डण्डे के जोर से कार्य करता है। अतः बिना भय के कर्मचारी कार्य करने को तत्पर नहीं होता है। नेतृत्व का निरंकुशतावादी सिद्धान्त भी इसी पर आधारित है। इस सिद्धान्त के अनुसार सत्ता और नियंत्रण दोनों समानार्थी हैं ।

एक्स सिद्धान्त की प्राथमिक मान्यता निम्नवत हैं–

- एक सामान्य व्यक्ति स्वेच्छा से कार्य करना नहीं चाहता है।
- उसमें कार्य के प्रति अरुचि की भावना है।
- डर के कारण ही व्यक्ति कार्य करने को तत्पर होता है ।
- व्यक्ति निर्देश के अन्तर्गत ही कार्य करना पसन्द करता है।
- व्यक्ति उत्तरदायित्व से सदैव बचने का प्रयास करता है।
- व्यक्ति बहुत कम महत्वकांक्षी होता है तथा सुरक्षा को सबसे अधिक महत्व देता है।
- व्यक्ति वित्तीय प्रलोभन के आधार पर ही कार्य करता है।
- श्रमिक मशीन का एकमात्र पुर्जा होता है। उसे अपनी बुद्धि का परिचय देने का सुअवसर प्राप्त नहीं होता है।
- व्यक्ति परम्परागत ढ़ंग से कार्य सम्पन्न करता है।

वाई– सिद्धान्त (X-THEORY)

एक्स सिद्धान्त के दोषों को दूर करने के लिए श्री मेकग्रेगर ने वाई सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। यह सिद्धान्त मानवीय मूल्यों तथा प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर आधारित है। यह सिद्धान्त यह मानता है कि व्यक्ति स्वयं अपनी इच्छा से कार्य करना चाहता है तथा उसमें आशावादी एवं सृजनात्मक प्रकृति होती है।

इस सिद्धान्त की प्राथमिक मान्यताएं निम्नवत हैं–

- व्यक्ति स्वेच्छा से कार्य करना चाहता है। उसे कार्य करने का अवसर दिया जाना चाहिए।

- प्रत्येक कार्य अरुचिकर नहीं होता और न सामान्य व्यक्ति में कार्य करने के प्रति अरुचि की भावना ही होती है।
- व्यक्ति से कार्य लेने के लिए उसे भय दिखाने या डराने की जरूरत नहीं है।
- यह कहना गलत है कि व्यक्ति सदैव उत्तरदायित्व से बचने का प्रयास करता है अपितु इसका मूल कारण महत्वकांक्षा का अभाव होना तथा सुरक्षा पर अत्यधिक बल दिया जाना है।
- व्यक्ति कार्य का निष्पादन केवल वित्तीय प्रलोभनों के कारण ही नही करता है, अपितु अवित्तीय प्रलोभन भी उसे कार्य कार्य करने की प्रेरणा देते है।
- संगठन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने में विवेक शक्ति, चातुर्य एवं सृजनात्मकता का गुण सामान्यतः सभी लोगों में पाया जाता है। किसी में यह गुण कम हो तथा दूसरे में अधिक।
- यह सिद्धान्त प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित है।
- यह कर्मचारी की संतुष्टि पर बल देता है।
- इससे कर्मचारी अधिक संतुष्ट होता है तथा उसका जीवन स्तर अधिक ऊँचा होता है।

5. अभिप्रेरण का जैड सिद्धान्त (Z-THEORY OF MOTIVATION)

जैड सिद्धान्त के प्रणेता विश्व प्रसिद्ध प्रबन्ध शिक्षा शास्त्री कर्नल लिण्डाल एफ0 उर्विक हैं। यह सिद्धान्त प्रबन्ध के क्षेत्र में एक अनोखा एवं क्रान्तिकारी चमत्कार है। जैड सिद्धान्त समाज विज्ञान, मानवरचना विज्ञान, मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र एवं व्यवहार विज्ञान की प्रयुक्ति को स्वीकृति प्रदान करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार वैयक्तिक अथवा सामूहिक मानवीय व्यवहार व्यावसायिक संस्था की प्रबन्ध व्यवस्था को प्रभावित करते हैं और प्रबन्ध व्यवस्था को समाजिक एवं मानवीय प्रणाली को रूप में मान्यता प्रदान करते हैं।

जैड सिद्धान्त की मान्यताएँ –

- यह सिद्धान्त प्रत्येक मानव को उपभोक्ता के रूप में देखता है।
- यह सिद्धान्त व्यवसाय को विपणन के रूप में प्रतिस्थापित करने में विश्वास करता है।
- यह सिद्धान्त सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं के निर्धारण का आधार स्वतन्त्र समाज के अनेक व्यक्तियों की पसन्द को मानता है ।
- यह सिद्धान्त यह भी स्वीकार करता है कि निर्माणी संस्था का यह उत्तरदायित्व है कि वह मानव, मुद्रा, सामग्री, उपकरणों एवं साधनों का उपयोग संगठनात्मक व्यवहार एवं आर्थिक लक्ष्यों कि पूर्ति के लिए करें।
- यह सिद्धान्त मानता है कि उपभोक्ता द्धारा उत्पादन विकास एवं नवाचार की मॉग का कारण समाजिक वैज्ञानिक एवं तकनीकी प्रगति है।

- यह सिद्धान्त उत्पादन को वितरण एवं उपभोक्ता स्थिति प्रदान करता है और वितरक एवं उपभोक्ता को उत्पादन की स्थिति में विचार करने का अवसर प्रदान करता है।
- यह सिद्धान्त उत्पादन एवं वितरण कार्य को सरल बनाने तथा व्यक्तियों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए व्यक्तियों की पसन्दगियों को अनेक वर्गो में विभाजित करता है।
- यह सिद्धान्त प्रबन्धकीय निर्णयों एवं सन्देशवाहन के जाल को अपने क्षेत्र में समाविष्ट करता है।
- यह सिद्धान्त दस्तकारी अर्थव्यवस्था एवं यान्त्रिक अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत उपभोक्ता पसन्दगियों के निर्धारण को पृथक्ता प्रदान करता है।
- यह सिद्धान्त सन्देश वाहन की बाधाओं को मनोबल, अनुशासन एवं आत्म–विश्वास के माध्यम से दूर करने का सुझाव देता है।

6. **अभिप्रेरण की ब्रूम की विचारधारा–**

ब्रूम ने हजबर्ग की विचारधारा का विरोध करने के उपरान्त सन् 1964 में अभिप्रेरण की इस नवीन विचारधारा का प्रतिपादन किया। यह विचारधार इस मान्यता पर आधारित है कि 'लोग जो कर सकते है, वे उसे तब करेगें जब वे उसे करना चाहें' अर्थात् यदि कोई व्यक्ति किसी कार्य को कर सकता है तो वह उस कार्य को तब करेगा जबकि उसकी उक्त कार्य को करने की इच्छा हो। दूसरे शब्दों में, एक व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए तब अभिप्रेरित होगा जबकि उसे आशा हो कि कार्य के परिणाम उसकी आशा के अनुकूल होंगे। ब्रूम के अनुसार किसी व्यक्ति की अभिप्रेरण की तीव्रता इस आधारभूत तथ्य पर निर्भर करती है कि कितनी तीव्रता से वह अनुभव करता है कि वह जो सोचता है उसे वह प्राप्त कर लेगा। ब्रूम के अनुसार सन्तुष्ट व्यक्ति द्वारा अच्छा उत्पादन होता है। यदि यह व्यक्ति यह अनुभव करता है कि अधिक उत्पादन करने से उसके लक्ष्यों की प्राप्ति हो जायेगी तो वह अवश्य अधिक उत्पादन करेगा। इसके विपरीत, यदि वह यह अनुभव करता है कि उसके लक्ष्यों की प्राप्ति निम्न उत्पादन से होगी, तो वह कम उत्पादन ही करेगा। निष्कर्ष रूप में, ब्रूम के अनुसार, अभिप्रेरण किसी व्यक्ति के काये के सम्भावित मूल्य और उसकी लक्ष्य प्राप्त करने की अनुमानित आशा का संयुक्त परिणाम है।

ब्रूम द्वारा प्रतिपादित सूत्र– ब्रूम ने अभिपेरण की इस विचारधारा को अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्न सूत्र का प्रतिपादन किया है –

अभिप्रेरण प्रबल – शक्ति × आशा

व्यक्ति की आशा को यदि उसकी शक्ति से गुणा कर दिया जाय तो परिणाम अभिप्रेरण प्रबल उसके गुणनफल के रूप में होगा।

शक्ति का अर्थ– ब्रूम के अनुसार शक्ति किसी उद्देश्य के सम्बन्ध में व्यक्ति की इच्छा प्राथमिकता की मात्रा को प्रकट करती है। यह सकारात्मक तथा नकारात्मक दोनों प्रकार की हो सकती है। सकारात्मक शक्ति उद्धेश्य अथवा लक्ष्य प्राप्त करने के लिए होती है। अभिप्रेरण के अन्य सिद्धान्तों में शक्ति के समान शब्दों में प्रेरणा, प्रवृत्ति तथा

आशातीत उपयोगिता आदि का उपयोग किया गया है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि एक व्यक्ति पदोन्नति की इच्छा करता है तथा यह अनुभव करता है कि लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उसे उच्च निष्पादन का पर्दाशन करना होगा। बिना उच्च निष्पादन के पदोन्नति सम्भव नहीं है। इसे हम सकारात्मक शक्ति कहेंगे।

आशा – आशा व्यक्तिपरक धारणा है जो यह बतलाती है कि वांछित परिणाम प्राप्त करने की सम्भावना कितनी है। जिस व्यक्ति में आशा जितनी अधिक होगी वह उतनी तीव्रता से अभिप्रेरित किया जा सकेगा। यह किसी कर्मचारी की एक उपलब्धि को दूसरी उपलब्धि द्वारा अनुसरण करने की सम्भावना को व्यक्त करती है। वांछित परिणामों को प्राप्त करने की आशा जितनी अधिक प्रबल होती है व्यक्ति उतनी ही सरलता से अभिप्रेरित हो जाता है। इसके विपरीत वांछित परिणामों को प्राप्त करने की आशा जितनी कम प्रबल होगी व्यक्ति उतनी ही कठिनाई से अभिप्रेरित किया जा सकेगा। वांछित परिणामों की प्राप्ति की आशा न होने की दशा में व्यक्ति को अभिप्रेरित नही किया जा सकेगा ।

उदाहरण के लिए, एक व्यापारी किसी निर्माता के माल के विक्रय की मात्रा में वृद्धि करने के लिए तत्पर हो सकता है यदि उसे अधिक कमीशन प्राप्त करने की इच्छा एवं सम्भावना हो। इसके, विपरीत यदि उसे अधिक कमीशन प्राप्त करने की इच्छा एवं सम्भावना न हो तो वह विक्रय में वृद्धि करने के लिए कदापि तत्पर नहीं होगा।

इस विचारधारा के अनुसार एक व्यक्ति को अधिक कार्य करने के लिए प्रेरित करने हेतु निम्नलिखित दो कार्य किये जा सकते हैं–

1. प्रभावशाली संदेशवाहन की सहायता से परिणामों के मूल्यों में वृद्धि की जा सकती है।
2. इस आशा से कार्य इच्छित परिणाम प्रदान करेगा। इसमें वृद्धि की जा सकती है क्योंकि अभिप्रेरण आशा तथा शक्ति का गुणनफल होता है। अतः दोनों में वृद्धि होने से अभिप्रेरण का क्षेत्र भी व्यापक होगा।

12.8 अभिप्रेरण प्रक्रिया

कीथ डेविड के अनुसार अभिप्रेरण प्रक्रिया के निम्न चरण होते हैं–

1. **उद्देश्य निर्धारण**– अभिप्रेरण प्रक्रिया का सर्वप्रथम चरण, अभिप्रेरण के उद्देश्य निर्धारण करना है। प्रबन्धक निर्धारित उद्देश्यों के अभाव में किसी व्यक्ति को दिशा–निर्देश नहीं दे सकता। उद्देश्यों के अभाव में अभिप्रेरण के स्तर का मूल्याकंन भी कठिन हो जाता है।
2. **कर्मचारियों की भावना का अध्ययन करना**– प्रत्येक प्रबन्धक अपने कर्मचारी के साथ मिलकर तभी कार्य को भली भॉति पूरा कर सकता है जब उसे उनकी भावनाओं का पूर्ण ज्ञान हो। साधारण प्रबन्धकों द्वारा इस बात की अवहेलना की जाती है जिससे वे अधिक सफल नही हो पाते हैं।
3. **सम्प्रेषण**– सम्प्रेषण अभिप्रेरण प्रक्रिया का मूलाधार है। उचित सम्प्रेषण के अभाव में न तो प्रबन्धक कर्मचारी की स्थिति और न ही कर्मचारी प्रबन्धक की भावनाओं को समझ सकता है। यदि प्रबन्धक अपनी बात को ठीक ढ़ंग से

तथा सही प्रकार से कर्मचारियों तक नहीं पहुॅचा सकता है तो उसकी कार्य उपलब्धियॉ भी उतनी ही सीमित होंगी। अतः पर्याप्त सन्देशवाहन अभिप्रेरण की नींव है।

4. **हितों का समन्वय–** प्रबन्धक अपने उद्योग के हितों को ध्यान में रखते हुए कर्मचारियों की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रयत्न करता है अर्थात् कर्मचारी एवं संस्था के हितों दोनों का समन्वय होना चाहिए। आपसी सम्बन्ध अच्छे होने से श्रमिक तथा नियोक्ता दोनों पक्ष लाभान्वित होते हैं।

5. **सहायक दशाएॅ उपलब्ध कराना–** प्रत्येक कर्मचारी तभी कार्य के लिए प्रेरित हो सकता है, जब उसे कार्य के लिए अनुकूल परिस्थितियॉ एवं वातावरण मिले। उदाहरण के लिए एक विक्रय प्रतिनिधि तब तक अपना कार्य ठीक प्रकार नहीं कर सकता जब तक उसे अपना विक्रय क्षेत्र, आवागमन की सुविधा, वस्तु के गुण, उसके सम्बन्ध में तकनीकी जानकारी एवं विक्रय सम्बन्धी प्रशिक्षण न दे दिया जाये।

6. **समूह भावना–** प्रबन्धक कर्मचारियों में आपसी मेलजोल, मैत्री तथा समूह भावना को प्रोत्साहन देने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। टीम भावना से उत्पादन वृद्वि होती है। श्रमिक स्वयं कई बातें सीखता रहता है।

12.9 अच्छी अभिप्रेरण प्रणाली की आवश्यक बातें

अभिप्रेरण प्रणाली सुदृढ होने पर ही औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे रह सकते हैं उपयुक्त अभिप्रेरण प्रणाली के लिए निम्न तत्वों का होना आवश्यक है–

1. **नीति की तरह स्थायी–** वित्तीय अथवा गैर–वित्तीय अभिप्रेरण के धनात्मक होने पर व्यक्ति अधिक अच्छी तरह कार्य कर सकते हैं उनका ध्यान विकास की ओर केन्द्रित होता है, जबकि ऋणात्मक अभिप्रेरण की दशा में कर्मचारी दण्ड एवं प्रताड़ना अथवा अनुशासनात्मक कार्यवाही ये बचने के लिए सचेष्ट रहता है वह सीमान्त कर्मचारी बनकर रह जाता है।

2. **संस्थान के उद्देश्यों, नीतियों तथा विचारधाराओं के अनुकूल–** अभिप्रेरण की प्रणाली उपक्रम के लक्ष्यों की प्राप्ति में अधिकतम योगदान देने वाली होनी चाहिए क्योंकि प्रत्येक उपक्रम का उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना होता है, अतः अभिप्रेरण की प्रणाली यदि उसमें योगदान देने मे असमर्थ रहेगी तो निश्चित ही न तो संस्था और न ही कर्मचारी अपने लक्ष्य प्राप्त कर पायेंगे।

3. **प्रत्यक्ष सम्बन्ध कर्मचारी के प्रयासों से** – यह प्रणाली इस प्रकार कि होनी चाहिए कि वह सभी स्तर में कर्मचारियों को प्रभावित कर सकें। जो अधिक कार्य करता है उसे अधिक प्रेरणा तथा नेतृत्व रूपी मान्यता मिलनी चाहिए जिससे अन्य व्यक्ति भी अपने स्वाभिमान की लालसा को सन्तुष्ट करने के लिए प्रयत्न करें ।

4. **अभिप्रेरण उत्पादक होना चाहिए–** जिस प्रेरणा से कार्य को प्रोत्साहन नहीं मिलता हो, उस प्रेरणा का कोई व्यावहारिक महत्व नहीं होता है।

5. **अभिप्रेरण न्यायपूर्ण होना चाहिए–** अनुचित व अन्यायपूर्ण अभिप्रेरण से कर्मचारियों मे नैराश्य एवं मानसिक तनाव उत्पन्न होता है तथा ऐसा अभिप्रेरण अनुत्प्रेरण का कार्य करता है।

6. **अभिप्रेरण प्रणाली सरल एवं बोधगम्य होनी चाहिए–** यह सभी सम्बन्धित वर्ग के कर्मचारियों द्वारा आसानी से समझने योग्य होनी चाहिए जिनक हित के लिए इसका निर्माण किया गया है।

7. **अभिप्रेरण की प्रकृति प्रतिस्पर्द्धात्मक होनी चाहिए–** उससे कर्मचारी को अधिक उत्पादन के लिए अन्य कर्मचारियों से प्रतिस्पर्द्धा का अवसर प्राप्त हो ।

8. **अधिकतम अधिप्रेरण–** अभिप्रेरण प्रणाली का सम्बन्ध केवल वित्तीय अभिप्रेरण से ही नही है अतः यथासम्भव न्यूनतम वित्तीय भार डालने वाली किन्तु अधिकतम अधिप्रेरण देने वाली प्रणाली सर्वोतम होती है।

9. **उचित प्रमाप निर्धारण–** अभिप्रेरण प्रणाली के सफलतापूर्वक क्रियान्वयन के लिए उचित प्रमाप निर्धारण किया जाना चाहिए। प्रमाप निर्धारण के अभाव में अभिप्रेरण का मूल्यांकन करना कठिन होता है।

12.10 अभिप्रेरण को प्रभावित करने वाले घटक

मानवीय स्वभाव को समझाना एक कठिन कार्य है। मानव की अनेक शारीरिक आध्यात्मिक एवं सामाजिक आवश्यकताएँ होती है। व्यक्ति की आयु, शिक्षा और आर्थिक स्थिति के साथ–साथ इन आवश्यकताओं का तुलनात्मक महत्व घटता बढता रहता है। साथ ही यह एक माना हुआ तथ्य है कि एक व्यक्ति की आवश्यकताएँ औसत व्यक्ति की आवश्यकताओं के विल्कुल अनुरूप नही होती। इस लिए सफल अभिप्रेरण के लिए आवश्यक है कि मनुष्य की आवश्यकताओं के साथ साथ उनकी व्यक्तिगत इच्छाओं का भी ध्यान रखा जाये इस दृष्टि से हम देखते है कि विभिन्न व्यक्तियों को विभिन्न घटको से अभिप्रेरणाएँ मिलती है, जिन्हे सुविधा की दृष्टि से दो भागो में विभाजित किया जा सकता है–

1–मौद्रिक आभिप्रेरण 2– अमौद्रिक अभिप्रेरणाएँ।

अभिप्रेरण को प्रभावित करने वाले घटक

मौद्रिक अथवा वित्तीय	अमौद्रिक अथवा अवित्तीय
1– मजदूरी और वेतन	1– जॉब सुरक्षा
2– प्रीमियम	2– गुणों का आधार
3– बोनस	3– सराहना
4– इनाम	4–पदोन्नति
5– विनियोग पर ब्याज	5– परामर्श
	6– जिम्मेदारी का प्रतिपादन
	7– कार्य की मान्यता
	8– कल्याण और सुख सुविधाएँ

12.11 अभिप्रेरण का महत्व अथवा लाभ

अभिप्रेरण प्रबन्ध का एक महत्वपूर्ण कार्य है जो संस्था के कर्मचारियों को निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की ओर निदेर्शित करता है। यह प्रबन्ध का हृदय है। अभिप्रेरण के महत्व तथा लाभ का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. **मानवीय साधनों का अधिकतम उपयोग–** उत्पादन के विभिन्न साधनों में मानवीय साधन सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं क्योंकि मानवीय साधन ही सक्रिय साधन है जबकि उत्पादन में शेष सभी साधन निष्क्रिय है। अभिप्रेरण के द्वारा कर्मचारियों की आन्तरिक योग्यताओ को विकास करके उनका सस्था के हित में अधिकतम उपयोग किया जा सकता है।
2. **कार्य सन्तुष्टि–** अभिप्रेरित कर्मचारी पूर्ण लगन, निष्ठा एवं कुशलता से कार्य करता है और अधिक से अधिक परिणाम देने का प्रयास करता है। इसके परिणामस्वरूप वह अपने कार्य में सन्तुष्टि का अनुभव करता है।
3. **कर्मचारियों की स्थिरता–** अभिप्रेरण से कर्मचारियों की आवश्यकताओं की संन्तुष्टि होती है तथा साथ में कार्य सन्तुष्टि भी होती है। इसके परिणामस्वरूप कर्मचारीगण दोनों को लाभ होता है तथा दोनों की ख्याति में बृद्धि होती है।
4. **कुशलता में वृद्धि–** अभिप्रेरण वह शक्ति है जो किसी व्यक्ति को अपनी पूर्ण कुशलता के साथ कार्य करने के लिए न केवल प्रेरित ही करता है अपितु उसमें बृद्धि भी करता है। अभिप्रेरण के कारण कर्मचारियों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है, कार्य सन्तुष्टि प्राप्त होती है, मनोबल में वृद्धि होती है। मानवीय सम्बन्धों में सुधार होता है, कार्य करने का स्वस्थ वातावरण उत्पन्न होता है। और इन सभी के परिणामस्वरूप उनकी कुशलता में बृद्धि होती है।
5. **आवश्यकताओं की सन्तुष्टि–** मानव की आवश्यकताएँ अनन्त होती हैं एवं उनमें क्रमबद्धता होती हैं। एक आवश्यकता की सन्तुष्टि के पश्चात् दूसरी आवश्यकता का उदय होता है। असन्तुष्ट आवश्यकताओं की अभिप्रेरण का स्त्रोत होती है एक प्रबन्ध अपने कर्मचारियों की आवश्यकताओं की सन्तुष्टि अभिप्रेरण के द्वारा करता है।
6. **लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक–** अभिप्रेरण कार्यरत कर्मचारियों में कार्य करने की इच्छा जाग्रत करके प्रयासों को निर्धारित दिशा में निर्देशित करता है जिससे संस्था के निर्धारित लक्ष्यों को सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।
7. **स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों का विकास–** अभिप्रेरण के द्वारा कर्मचारियों को आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है तथा उसमें संस्था एवं अधिकारियों के प्रति निष्ठा बनी रहती है। प्रबन्धक भी कर्मचारियों को स्नेह एवं सम्मान की भावना से देखते हैं। इसके परिणामस्वरूप संस्था में स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों की स्थापना होती है। स्वस्थ मानवीय सम्बन्धों के कारण संस्था में शक्ति स्थापित होती है तथा उत्पादन एवं उत्पादकता दोनों में वृद्धि होती है।
8. **मनोबल में वृद्धि–** कोई भी संस्था तब तक आगे नही बढ सकती है जब तक की उसके कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा न हो। ऊँचा मनोबल कार्य करने की क्षमता में वृद्धि करता है तथा कार्य के प्रति रुचि उत्पन्न करता है। कर्मचारियों को दी जाने वाली विभिन्न अभिप्रेरणाएँ निश्चय ही उसके मनोबल में वृद्धि करती है।

9. **सहयोग में वृद्धि एवं स्वस्थ वातावरण की स्थापना**– अभिप्रेरित कर्मचारी न केवल अपने अधिकारियों के साथ ही सहयोग करते है अपितु अपने साथी कर्मचारियों से साथ भी सहयोग करते है। इससे उपक्रम में कार्य करने का स्वस्थ वातावरण उत्पन्न होता है।

10– अन्य लाभ –

- अभिप्रेरण से संस्था में स्वस्थ श्रम सम्बन्धों की स्थापना होती है।
- साधनों का मितव्ययितापूर्ण तथा अधिकतम उपयोग करता सम्भव होता हैं।
- संस्था की ख्याति का निर्माण होता है एवं उसमें वृद्धि होती है।
- कर्मचारियों की अनुपस्थिता में कमी होती है।

12.12 अभिप्रेरण की समस्याएँ

अभिप्रेरण की प्रमुख समस्याएँ एवं सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1. क्रियान्वयन सम्बन्धी समस्या अथवा सीमा।
2. आधारभूत तत्वों के निर्धारण की समस्या अथवा सीमा ।
3. सीमित मात्रा में ही अभिप्रेरण दिये जा सकने की समस्या अथवा सीमा।
4. कर्मचारियों की असमानताओं के कारण अभिप्रेरण की असमानता की समस्या अथवा सीमा ।
5. कर्मचारियों की रुचि भिन्नता की समस्या अथवा सीमा।
6. संगठन के प्रति कर्मचारियों में निष्ठा की समस्या अथवा सीमा ।
7. आन्तरिक उद्वेग या स्वयं अभिप्रेरण के अभाव की समस्या अथवा सीमा।

12.13 सारांश

दूसरे व्यक्तियों से कार्य करवाने हेतु उन्हें प्रोत्साहित करने को अभिप्रेरण कहते हैं। अभिप्रेरण निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए व्यक्तियों के व्यवहार को पथप्रदर्शित, निर्देशित और उत्तेजित करता है। यह एक निरन्तर, गतिशील तथा चक्रीय प्रक्रिया है। जिसके द्वारा अधिकाधिक सहयोग प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। इस मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया के द्वारा संस्था के लक्ष्यों की प्राप्ति व मधुर श्रम सम्बन्धों की स्थापना की जाती है।

अभिप्रेरण चार प्रकार का होता है– धनात्मक एवं ऋणात्मक अभिप्रेरण,वित्तीय एवं अवित्तीय अभिप्रेरण, वाह्य एवं आन्तरिक अभिप्रेरण, व्यक्तिगत एवं सामूहिक अभिप्रेरण । अभिप्रेरण कुशल नेतृत्व द्वारा, लक्ष्यों द्वारा, सहभागिता द्वारा, चुनौती द्वारा, स्वस्थ प्रतिस्पर्द्धा द्वारा, परिर्वतन द्वारा, आकर्षण द्वारा आदि विधियों से किया जाता है।

अभिप्रेरण के सिद्धान्तों को तीन समूहों में विभाजित किया गया है– मूलभूत सिद्धान्त, आधुनिक सिद्धान्त तथा परम्परागत सिद्धान्त। इन सिद्धान्तों के अर्न्तगत एकात्मक सिद्धान्त, अनेकवादी सिद्धान्त, आवश्यकताओं की क्रमबद्धता का सिद्धान्त, आरोग्य स्वास्थ्य सिद्धान्त, सहभागिता सिद्धान्त, कर्मचारी केन्द्रित पर्यवेक्षण सिद्धान्त, पथ–लक्ष्य सिद्धान्त, भय एवं दण्ड सिद्धान्त, पुरस्कार सिद्धान्त, कैरट तथा स्टिक सिद्धान्त,

मेकग्रेगर का एक्स एवं वाई का सिद्धान्त तथा जैड सिद्धान्त का अध्ययन किया जाता है।

12.14 शब्दावली

अभिप्रेरण–	वह प्रक्रिया जो व्यक्तियों को संगठनात्मक लक्ष्यों की ओर सहयोग करने और अपने सर्वोत्तम प्रयासों का योगदान करने के लिए प्रेरित करता है।
वित्तीय अभिप्रेरणा–	वे वित्तीय साधन जिनका मुद्रा से प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से सम्बन्ध होता है।
अवित्तीय अभिप्रेरणा–	जिनका मुद्रा से कोई सम्बन्ध नही है, अर्थात् जिन्हें देने के लिए मुद्रा की आवश्यकता नहीं होती।
सम्प्रेषण–	एक संगठन में विभिन्न स्तरों पर सूचना का आदान–प्रदान।
धनात्मक अभिप्रेरण–	वह प्रक्रिया जिसमें कर्मचारी को उसकी इच्छानुसार काम करने के लिए प्रेरित किया जाता है।
ऋणात्मक अभिप्रेरण–	वह प्रक्रिया है जिसमें कार्य करने के लिए भय व दबाव डाला जाता है।
प्रतिस्पर्धा–	कर्मचारियों में ज्यादा परिश्रम करने की होड़।

12.15 बोध प्रश्न

(A) सही उत्तर चुनिए

1. विलियम जी0 आऊची निवासी हैं।

   (i) अमेरिका (ii) जापान

   (iii) जर्मनी (iv) इंग्लैण्ड

2. ए0 एच0 मैस्लो निवासी थे।

   (i) जर्मनी (ii) अमेरिका

   (iii) फ्रांस (iv) इंग्लैण्ड

3. हर्जबर्ग निवासी है।

   (i) जापान (ii) इंग्लैण्ड

   (iii) जर्मनी (iv) अमेरिका

4. एक्स तथा वाई के अभिप्रेरण सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है।

   (i) मैस्लो (ii) आउची

   (iii) हर्जबर्ग (iv) मैकग्रेकर

(B) रिक्त स्थान भरो।

1. अभिप्रेरणा मनुष्य को प्रेरित करने वाला.............. अंग है ।
2. अभिप्रेरणा एक आन्तरिक..............है।
3. अभिप्रेरण प्रत्येक मनुष्य में ....होती है।
4. अभिप्रेरणा का अध्ययन करना..............है।
5. मनुष्य को .... अभिप्रेरित किया जा सकता है, भागों में नहीं।

6. अभिप्रेरणा सन्तुष्टि से.............है।
7. अभिप्रेरणा उत्पादकता में .... करती है।
8. अभिप्रेरणा टर्नओवर को ....है।

12.16 बोध प्रश्न एवं उनके उत्तर

(A)

उत्तर. **1.**(i), 2 (ii), 3 (iv), 4 (iv)

(B)

1. मुख्य, **2.** भावना, **3.** पृथक, **4.** कठिन, **5.** सम्पूर्णतः, **6.** भिन्न, **7.** वृद्धि, **8.** घटाता।

12.17 स्वपरख प्रश्न

1. अभिप्रेरणा की परिभाषा दीजिए। इसकी प्रकृति तथा विशेषताओं का वर्णन कीजिए ?
2. अभिप्रेरणा की मुख्य तकनीकों की विवेचना कीजिए ?
3. आधुनिक प्रबन्ध में अभिप्रेरणा की आवश्यकता एवं महत्व में प्रकाश डालिए?
4. मास्लो के अभिप्रेरणा सिद्धान्त की विवेचना कीजिए ?
5. अभिप्रेरण के सम्बन्ध में मास्लो तथा हर्जबर्ग के विचारों को समझाइए। क्या ये विचार आपस में भिन्न हैं ? इनकी विभिन्नताओं को स्पष्ट कीजिए।
6. अभिप्रेरणा की विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए। अभिप्रेरणा की विभिन्न समस्याओं का भी वर्णन कीजिए ?
7. अभिप्रेरण का क्या अर्थ है ? श्रम कार्यकुशलता की वृद्धि में मौद्रिक तथ अमौद्रिक अभिप्रेरणाओं के योगदान का वर्णन कीजिए ?
8. वित्तीय एवं अवित्तीय अभिप्रेरणाओं का विवेचन कीजिए। अवित्तीय अभिप्रेरण के प्रमुख रूप बताइए।
9. अभिप्रेरणा क्या है ? अभिप्रेरणा के एक्स तथा वाई सिद्धान्तों का परीक्षण कीजिए ।

12.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979 ।

इकाई 13 प्रबन्ध में सहभागिता (PARTICIPATION IN MANAGEMENT)

13.1 प्रस्तावना
13.2 अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं
13.3 प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग देने के उद्देश्य
13.4 प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने के विभिन्न रूप
13.5 भारत में श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने की व्यवस्था
13.6 भारत में कर्मचारियों की सहभागिता विचारधारा का उद्गम एवं विकास
13.7 प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता का लाभ
13.8 भारत में प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग व्यवस्था की प्रगति का मूल्यांकन
13.9 भारत में प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता योजना के कार्यान्वयन में कठिनाइयॉ
13.10 भारत में प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता योजना की सफलता के लिए सुझाव
13.11 सच्चर समिति की सिफारिशें
13.12 भारत में किये गये प्रयत्न
13.13 सारांश
13.14 शब्दावली
13.15 बोध प्रश्न
13.16 बोध प्रश्नो के उत्तर
13.17 स्वपरख प्रश्न
13.18 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता का अर्थ, उद्देश्य और रुप को समझ सकें।
- भारत में कर्मचारियों की सहभागिता विचारधारा का उद्गम एवं विकास को समझ सकें।
- प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता योजना के कार्यान्वयन में कठिनाइयॉ बता सकें।
- प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता के लाभ का वर्णन कर सकें।
- प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता योजना की सफलता के लिए सुझाव दे सकें।

13.1 प्रस्तावना

गत कुछ शताब्दियों से श्रमिकों को वस्तु या निर्जीव साधन समझने की विचारधारा अपना महत्व खो चुकी है। दीर्घकाल से शोषित श्रमिक के साथ मालिकों द्वारा अब मानवीय व्यवहार किया जाने लगा है। प्रत्येक विचारशील व्यक्ति यह समझने

लगा है कि श्रमिक भी चिन्तनशील मानव है, जिसके पास स्वयं का मस्तिष्क, विचार एवं सोचने की शक्ति है, अतः उनके साथ मानवतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। यह उनका मूल अधिकार है जिसे अन्ततः स्वीकार करना ही होगा।

प्रबन्ध के क्षेत्र में परिवर्तन के कारण तानाशाह प्रबन्ध तथा पैतकतावादी प्रबन्ध का स्थान संवैधानिक प्रबन्ध ने अधिग्रहीत कर लिया है, इसीलिए आज प्रजातांत्रिक एवं हिस्सेदारी प्रबन्ध का बोलबाला है। वर्तमान में राजनीतिक क्षेत्रों के साथ–साथ औद्योगिक क्षेत्रों में प्रजातांत्रिक व्यवस्था अपनी जड़ें मजबूत का रही है। आज श्रमिक न केवल उत्पादन का कार्य कर रहा है बल्कि प्रबन्ध में भी सहयोग कर रहा है। श्रमिकों द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि नियोक्ताओं के साथ मिलकर विचार–विमर्श करते हैं, उद्देश्यों एवं नीतियों का निर्धारण करते हैं तथा महत्वपूर्ण निर्णय लेते हैं। आज श्रमिक जागरूक है जो अपने अधिकारों के लिए संघर्ष कर सकता है।

सरकार नियोक्ता तथा श्रमिकों में सहकारिता की भावना उत्पन्न करने के प्रश्न पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (I.L.O.) के 34 वें अधिवेशन में विचार किया गया था। इस अधिवेशन में सरकार ने नियोक्ताओं और श्रमिकों के बीच सहकारिता की भावना उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लिए आवश्यक समझी। उसका समर्थन करते हुए ग्रेट ब्रिटेन के श्रम तथा राष्ट्रीय सेवा के मन्त्री ने भी कहा था कि व्यक्तिगत उत्पादन क्षमता शारीरिक प्रयत्न तथा तान्त्रिक व्यवहार पर भी अवलम्बित नहीं है। यह एक ऐसी समस्या है जो मनोवैज्ञानिक और भौतिक दोनों पहलुओं से सम्बन्धित है। इसका समाधान केवल सरकार, नियोक्ताओं तथा श्रमिकों के पूर्ण सहयोग से हो सकता है।

प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता की विचारधारा मूलतः मानवीय सम्बन्ध विचारधारा से सम्बन्धित है। यह पूर्णतः नवीन विचारधारा नहीं है। इसे अलग–अलग देशों में अलग–अलग नामों से सम्बोधित किया जाता है, जैसे– अमेरिका में संघ–प्रबन्ध सहकारिता, फ्रांन्स में श्रम–प्रबन्ध सहकारिता, इंगलैण्ड एवं स्वीडन में संयुक्त विचार–विमर्श, पश्चिमी जर्मनी में 'सह निर्णय' या 'स्व प्रबन्ध एवं यूगोस्लाविया में श्रमिक प्रबन्ध आदि।

13.2 अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताए

प्रबन्ध में 'श्रमिकों की सहभागिता' एक लोचदार शब्द है जिसका अर्थ विभिन्न पक्षों ने विभिन्न लगाया है। श्रमिक इसका अर्थ सह–निर्णय तथा सह–निर्धारण से लगाते हैं। प्रबन्धक वर्ग निर्णय लेने से पूर्व संयुक्त विचार–विमर्श से लगाते हैं तथा सरकार इस पद्धति को श्रम प्रबन्ध की सहभागिता एवं औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना का पूर्वाभ्यास समझती है, जबकि प्रशासकों एवं विशेषज्ञों के अनुसार यह निर्णय लेने के लिए श्रमिकों तथा प्रबन्ध में सहयोग है।

सरल व शाब्दिक अर्थ में श्रमिकों द्वारा प्रबन्ध में भाग लेने से आशय उद्योगों के प्रबन्ध व्यवस्था में श्रमिकों द्वारा हिस्सा लेने से है। इसके अन्तर्गत श्रमिक लाभ एवं नीति निर्धारण में भाग लेते हैं। इस विधि में कर्मचारी को मजदूरी के अतिरिक्त लाभ एवं उद्योग से सम्बन्धित समस्त नीतियों को निर्धारित एवं कार्यान्वित करने का अधिकार प्राप्त होता है इसमें समस्त श्रमिकों को न लेकर प्रबन्ध समिति में उनके

प्रतिनिधियों को लिया जाता है जिससे वह अपनी सलाह देकर स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर सकें।

परिभाषाएँ–

1. **कीथ डेविस के अनुसार** , "सहभागिता से आशय किसी समूह स्थिति में श्रमिकों का मानसिक एवं भावनात्मक रूप में कार्य में योगदान है जो समूह के उद्देश्यों को पूरा करने में योगदान देने तथा अपने उत्तरदायित्व को समझने के लिए प्रेरित करता है।"
2. **वी0 जी0 मेहत्राज के अनुसार** ,"उद्योग में सहभागिता की विचारधारा से आशय किसी औद्योगिक संगठन के श्रमिकों द्वारा अपने उचित प्रतिनिधियों के माध्यम से प्रबन्ध के उपयुक्त स्तरों पर सम्पूर्ण प्रबन्धकीय क्षेत्र की क्रियाओं में निर्णय लेने के अधिकार में हिस्सा बाँटना है।"
3. **मैकग्रेगर के अनुसार** ," प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता से आशय मूलतः उपयुक्त दशाओं के अन्तर्गत श्रमिकों के लिए उन अवसरों का निर्माण करने से है जिनमें वे उनको प्रभावित करने वाले निर्णयों को प्रभावित कर सकें।
4. **पीटर एवं ड्रकर के अनुसार**, "प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता एवं प्रबन्धकीय प्रवृत्ति है जो परम्परागत प्रबन्ध दर्शन की इस मौलिक मान्यता को चुनौती देती है कि सही निर्णय केवल प्रबन्धक ही ले सकते हैं और श्रमिकों का कार्य आदेशों के अनुपालन मात्र हैं ।"

विशेषताएँ–

- इससे श्रमिकों में आत्म–विश्वास, आत्म–सम्मान तथा अधिक कार्य करने की भावना का विकास होता है।
- श्रम तथा पूँजी के बीच सामाजिक सहयोग स्थापित करने का तरीका है।
- औद्योगिक शान्ति को प्रोत्साहन देने व श्रम असन्तोष को कम करने की दिशा में एक प्रभावी व्यवस्था है।
- श्रमिकों के प्रतिनिधियों को प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिलता है।
- सहभागिता की विचारधारा मूलतः मानवीय सम्बन्ध विचारधारा से सम्बन्धित है।
- श्रमिक का प्रबन्ध में मानसिक एवं भावनात्मक समावेश है जो श्रमिक को समूह के उद्देश्यों को पूरा करने में सहयोग देने तथा अपने उत्तरदायित्व को समझने के लिए प्रेरित करता है।
- यह औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना का आधार है ।
- प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता उद्योग के प्रबन्ध संचालन में श्रमिकों को सक्रिय भागीदारी देने की व्यवस्था है।

13.3 प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग देने के उद्देश्य

प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग देने के उद्देश्यों को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **मनोवैज्ञानिक उद्देश्य**– इस व्यवस्था से श्रमिकों में एक मनोवैज्ञानिक परिर्वतन लाया जाता है। उन्हें मशीन का पुर्जा न समझकर उत्पादन कार्य में सहयोग देना है। अतः श्रमिकों के साथ मानवीय व्यवहार करके उनके हृदय में अत्मसम्मान की भावना सुरक्षा एवं सामाजिक चेतना को उत्पन्न करने के लिए उन्हें प्रबन्ध में भाग लेने दिया जाता है ऐसा करने से उनके सोचने, समझने एवं कार्य करने की पद्धति में आमूल परिर्वतन आकार, वे उत्पादन कार्य को अपना कार्य समझने लगते हैं।

2. **आर्थिक उद्देश्य**– इसमें उत्पादन में वृद्धि एवं औद्योगिक सम्बन्धों में मधुरता आदि सम्मिलत करते हैं और इस विचारधारा में अधिकतम लाभ के स्थान पर अधिकतम आर्थिक कल्याण को महत्व दिया जाता है। इस विधि से आर्थिक दृष्टि से उद्योगों के उत्पादन में सदैव वृद्धि हुई।

3. **सामाजिक उद्देश्य**— श्रमिक को समाज में उचित स्थान दिलाने, उसकी प्रतिष्ठा बढ़ाने, हीन स्थिति से बचाने एवं प्रजातन्त्र को वास्तविक रूप में लाने के उद्देश्य से प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग लेने दिया जाता है।

प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की पूर्व, इस योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए, निम्न शर्तो का पूर्ण होना आवश्यक है–

1. **सरकारी आधार**– उद्योगों को सरकारी आधार पर चलाया जाना चाहिए, जिससे वह पूँजी में भी अपना अंशदान दे सकें।
2. **शिक्षा का प्रबन्ध**– इस तकनीक के सम्बन्ध में उत्पादन में भाग लेने वाले सभी वर्गो जैसे– नियोक्ता, कर्मचारी, अंशधारी, विनियोक्ता आदि को शिक्षा दी जाय।
3. **पक्षों में इच्छा होना**– उद्योग से सम्बन्धित सभी पक्षकारों में इस योजना के प्रति सच्ची इच्छा होना आवश्यक है, जिससे उसे सफलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा सके।
4. **श्रमिकों का उत्पादन में हित**– विभिन्न उपायों द्वारा श्रमिकों का उत्पादन में स्थायी हित उत्पन्न किया जाना चाहिए, जिससे वे रुचिपूर्ण ढंग के कार्य कर सके। यह हित अधिक मजदूरी देकर, नौकरी को स्थायित्व प्रदान करके एवं अन्य उपायों द्वारा उत्पन्न किया जा सकता है।
5. **रहन सहन के स्तर में सुधार**– श्रमिकों के रहन सहन के स्तर में आवश्यक सुधार करके उन्हें अच्छा जीवन बिताने का आश्वासन दिया जाना चाहिए।
6. **विचारों की स्वतंत्रता**– श्रमिकों को संगठित होने, अपने विचार व्यक्त करने एवं उत्तरदायित्व वहन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।
7. **सभी स्तरों पर लागू**– इस योजना के इस प्रकार नियोजित किया जाना चाहिए कि सभी स्तरों पर लागू की जा सके।
8. **तकनीकी शिक्षा**– श्रमिक को तकनीकी शिक्षा दी जानी चाहिए जिससे वे प्रबन्ध में उचित ढंग से भाग ले सके।
9. **अन्तर समाप्त करना**– कर्मचारी नियोक्ता एवं अन्य प्रकार के श्रमिकों के मध्य के अन्तर को समाप्त कर देना चाहिए।

10. **उचित संचार व्यवस्था**– कर्मचारियों एवं नियोक्ता के मध्य परामर्श एवं सुझाव देने सम्बन्धी उचित संचार व्यवस्था का विकास किया जाना चाहिए तथा कर्मचारियों को उद्योग से सम्बन्धित तथ्यों का पूर्ण ज्ञान होना आवश्यक है।

11. **उचित वातावरण**– आपसी अविश्वास व सन्देह को दूर करने के लिए उद्योगों में उचित वातावरण का निर्माण किया जाना चाहिए।

12. **श्रम संघों का स्वास्थ्य विकास**– देश में श्रम संघों का स्वरूप विकास किया जाना चाहिए तथा उन्हें राजनीतिक संस्थाओं से दूर रहना चाहिए ।

13.4 प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने के विभिन्न रूप

प्रबन्ध में श्रमिकों द्वारा भाग लेने वाले विभिन्न रूपों को निम्न रुप से प्रकट किया जा सकता है–

1. **कार्य समिति का निर्माण**– कार्य समिति के निर्माण में प्रबन्ध एवं श्रमिकों के प्रतिनिधि भाग लेते हैं जो उद्योगों के सम्बन्धित अनेक सम संस्थाओं पर विचार विमर्श करते हैं। भिन्न–भिन्न समस्याओं पर विचार करने के लिए पृथक–पृथक समितियों का निर्माण किया जाता है जिसमें एक दूसरे के पक्ष को समझने का पूरा अवसर प्राप्त होता है तथा एक दूसरे की कठिनाइयों को समझकर उनका समाधान किया जाता है।
2. **सहभागिता**– इसमें श्रमिकों को जो लाभ दिया जाता है उसके बदले में अंश खरीद लेते हैं, जिससे वे कर्मचारी के अतिरिक्त संस्था के अंशधारी भी बन जाते हैं और अंशधारी के कारण उन्हें प्रबन्ध में भाग लेने के अधिकार प्राप्त हो जाते हैं।
3. **श्रमिक संचालन की नियुक्ति**– इस विधि में संचालक मण्डल में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने वाले संचालक नियुक्त कर दिये जाते हैं जिन्हें अन्य संचालकों के समान अधिकार प्राप्त होते हैं तथा कम्पनी के कार्यो के सम्बन्ध में समस्त जानकारी प्राप्त करके प्रबन्ध व श्रम के मध्य अच्छे सम्बन्ध स्थापित कर सकते हैं। इसमें श्रमिकों के हितों की रक्षा करके झगड़ों का निपटारा सरलता से हो जाता है।

13.5 भारत में श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने की व्यवस्था

भारत में सर्वप्रथम 1938 में दिल्ली क्लाथ एण्ड जनरल मिल्स के0 लि0 ने अपने संस्थान के प्रबन्ध में श्रमिकों के प्रतिनिधियों को लिया। परन्तु इस दिशा में अन्य संस्थाओं ने स्वतंत्रता से पूर्व रुचि नहीं ली। देश जब समाजवादी समाज की स्थापना का ध्येय अपना चुका है तो यह आवश्यक हो जाता है कि श्रमिको को उद्योगों के प्रबन्ध में हिस्सा दिया जाय। भारत सरकार इस व्यवस्था से होने वाले लाभों से भली प्रकार परिचित है और उसने 1948 तथा 1956 की औद्योगिक नीतियों में इस ओर संकेत भी किया था। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस सम्बन्ध में एक निश्चित योजना बनायी गयी। योजन आयोग के शब्दों में, ''एक समाजवादी समाज की रचना लाभकारी सिद्धातों पर नहीं की जा सकती, उसके लिए समाज सेवा के सम्बन्धों को अपनाना पड़ेगा। यह आवश्यक है कि श्रमिक यह समझे कि वह प्रगतिशील राष्ट्र के निर्माण में

अपना योगदान दे रहा है प्रजातांन्त्रिक समाज को संगठित करने के पहले औद्योगिक प्रजातंत्र की स्थापना अति आवश्यक है। द्वितीय योजना के सफल संचालन के लिए कर्मचारियों का प्रबन्ध में अधिकाधिक सहयोग अनिवार्य है। इससे उत्पादन में वृद्धि होगी, श्रमिक के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे तथा साथ ही साथ मजदूरों को अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का अवसर मिलेगा जिससे औद्योगिक शान्ति होगी।

सन् 1956 में भारत सरकार ने विशेषज्ञों का एक दल यूरोपीय देशों में श्रम–प्रबन्ध सहयोग के सम्बन्ध में अध्ययन करने के लिए भेजा। दल ने सुझाव दिये कि किन उद्योगों में प्रबन्ध में श्रमिकों का हिस्सा देने का किन उद्योगों में प्रबन्ध में श्रमिकों का हिस्सा देने का अधिनियम लागू हो। यह निर्णय करने का अधिकार सरकार को हो।

जुलाई 1957 में भारतीय श्रम सम्मेलन के 55 वें अधिवेशन में यह निर्णय किया गया है कि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों को स्वेच्छा के आधार पर अपनाया जाये और उसने योजना की विस्तृत बातों पर विचार करने के लिए एक त्रिदलीय समिति नियुक्त की। इस समिति ने उन संस्थाओं की एक सूची बनायी जिन्होंने सहयोग देने का वचन दिया है और इसमें परिषदों के क्षेत्र व कर्त्तव्यों को भी परिभाषित किया है। फरवरी 1958 में हुई एक त्रिदलीय सेमीनार में इन परिषदों की स्थापना के लिए एक आर्दश समझौता स्वीकार किया गया। इसके अनुसार यह तय हुआ कि संयुक्त परिषदों में श्रमिकों एवं मालिकों के बराबर प्रतिनिधि हो जो 12 से अधिक और 6 से कम न हो।

केन्द्रीय श्रम मन्त्रालय के तत्वाधान में मार्च 1960 में दूसरी सेमीनार उद्योगों के प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग पर आयोजित की गयी। केन्द्रीय श्रम मंत्री ने संयुक्त परिषदों की असन्तोषजनक प्रगति पर खेद प्रकट किया और बताया कि यह योजना सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों की अपेक्षा निजी क्षेत्र में अधिक सफल रही है। प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग देने के लिए उपयुक्त वातावरण निर्माण हेतु तथा योजनाएं तैयार करने के लिए 22 फरवरी 1961 को एक अन्तर्राज्यीय मन्त्री सम्मेलन आयोजित किया गया, जिसमें यह नीति स्वीकार की गयी कि सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों में जहॉ भी अनुकूल वातावरण हो, इस व्यवस्था को लागू किया जाये । मार्च 1965 में बम्बई में तीन क्षेत्रीय विचार गोष्ठियॉ केन्द्रीय श्रम शिक्षा मंण्डल द्वारा आयोजित की गयी। इनका मुख्य उद्देश्य संयुक्त प्रबन्ध परिषदों की स्थापना करना था तथा श्रमिकों एवं नियोक्ताओं को उनके महत्व को समझाना था।

अक्टूबर 1975 में एक तृतीय सेमीनार– प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग पर जयपुर में आयोजित की गयी जिसने राय प्रकट की कि योजना को बढ़ी सावधानी व धीरे धीरे कदम रखते हुए लागू किया जाय, जिससे योजना के क्रियान्वयन में आने वाली बाधाओं को दूर किया जा सकें। यह सुझाव दिया गया कि प्रारम्भ में प्रमुख उद्योगों जैसे– कोयला, इस्पात हैवी इंजीनियरिग एवं खाद में योजना की परीक्षा की जाये। सेमीनार ने त्रिस्तरीय समितियॉ– कार्यालय समिति, विभागीय समिति, एवं संयम स्तरीय समिति के निर्माण का सुझाव दिया। 30 अक्टूबर 1975 को भारत सरकार ने एक योजना घोषित की जिसके अन्तर्गत निर्माणी एवं खाद उद्योगों में जहॉ 500 से अधिक

श्रमिक कार्य करते हैं, कार्यक्षमता परिषदों एवं संयुक्त परिषदों की स्थापना निजी, सार्वजनिक क्षेत्रों में की जाये ।

राष्ट्रीय श्रम संस्थान द्वारा मई 1976 में एक विचार– गोष्ठी राज्य स्तर पर आयोजित की गयी, जिसमें इस योजना को अधिक उपयोगी बनाने के लिए विभिन्न पहलुओं पर विचार व्यक्त किया गया। इस क्रियान्वयन में आने वाली व्यावहारिक कठिनाइयों को दूर करने के तरीकों के सम्बन्ध में विचार विमर्श किया गया।

6. मई 1977 को दिल्ली में श्रम समस्याओं में विचार विमर्श हेतु द्वि–दिवसीय त्रिपक्षीय राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन आमंन्त्रित किया गया। सम्मेलन में यह निश्चय किया गया कि एक कमेटी स्थापित किया जाय जो प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग के प्रश्न पर विचार विमर्श करें।

सितम्बर 1977 में भारत सरकार द्वारा 21 सदस्यों वाली नियुक्त की गयी। समिति ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी जिस पर जुलाई 1980 में होने वाले श्रम मंत्रियों के सम्मेलन में विचार किया गया। प्रबन्ध में श्रमिकों द्वारा सहभाजन की योग्यता को वैधानिक समर्थन दिये जाने को सामान्य रूप से ठीक माना गया। सितम्बर 1980 में श्रम मंत्रियों की स्थायी समिति की बैठक में इस बात में सहमति पायी कि प्रबन्ध में श्रमिकों के सहभाजन के विभिन्न स्तरों के लिए श्रमिकों के प्रति निधियों के चुनाव के ढंग के सम्बन्ध में श्रम मंन्त्रियों के एक कर्मचारी दल को सुझाव देने चाहिए।

13.6 भारत में कर्मचारियों की सहभागिता विचारधारा का उद्गम एवं विकास

प्रबन्ध में कर्मचारियों की भागीदारी का इतिहास अति प्राचीन नहीं है। भारत में इस विचारधारा का उद्गम महात्मा गॉधी के न्यासिता के विचार के आधार पर हुआ। यह विचार इस बात पर आधारित है कि पूॅजीपतियों के पास अपनी उचित आवश्यकताओं की पूर्ति के पश्चात् जो भी धन बचता है, वह वास्तव में समाज की धरोहर है और पूॅजीपति केवल इस धन के ट्रस्टी हैं। अतः उसका उपयोग जन कल्याण के लिए होना चाहिए। जन कल्याण के लिए उपयोग तभी सम्भव है जबकि श्रमिकों को भी अन्य भागीदारों के समान समझा जाये। तत्पश्चात् गॉधी जी ने स्पष्ट किया कि उद्योग में नियोक्ता और श्रमिक दोनों बराबर के भागीदारी हैं तथा दोनों को ही सहभागिता प्राप्त होनी चाहिए किन्तु उनकी यह विचारधारा केवल सैद्धान्तिक ही रही, व्यवहार में इस सम्बन्ध में कुछ भी न हो सका।

श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने के सम्बन्ध में लाभ

इस योजना के मुख्य लाभ निम्न प्रकार हैं–

1. **मितव्ययता व समस्याओं का हल–** श्रमिकों में भी श्रेष्ठ विचार के व्यक्ति होने पर उद्योग की समस्याओं को सरलता से हल करके उत्पादन की अनेक हानियों को रोककर मितव्ययता प्राप्त कर सकते हैं।
2. **सहयोग की भावना–** श्रमिक एवं नियोक्ता एक दूसरे के निकट आते हैं जिससे औद्योगिक सम्बन्धों में वृद्धि होकर सहयोग की भावना में वृद्धि होती है तथा प्रतिनिधियों को अपने विचार रखने की पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होती है।

3. **श्रमिक वर्ग का महत्व बढ़ना–** श्रमिक वर्ग का प्रबन्ध में भाग लेने से उसके सामाजिक स्तर में वृद्धि हो जाती है, फलस्वरूप श्रमिक वर्ग का उद्योग में महत्व बढ़ जाता है तथा उसकी आवाज को सुना जाता है।

4. **श्रमिक कार्यक्षमता में वृद्धि–** प्रबन्ध में भाग लेने से श्रमिक पहले की तुलना में अधिक परिश्रम से कार्य करते हैं तथा उनके मन में लगन से कार्य करने की इच्छा बनी रहती है। श्रमिक के लगन व परिश्रम से कार्य करने के फलस्वरूप श्रमिकों की कार्यक्षमता में पहले से अधिक वृद्धि होकर वे कुशल श्रमिक बन जाते हैं।

5. **श्रेष्ठ निर्णय–** प्रबन्धकों को श्रेष्ठ निर्णय लेने में सहायता मिलती है क्योंकि योग्यता प्राप्त कर्मचारी भी निर्णय लेने की प्रक्रिया में सहयोग प्रदान करते हैं।

6. **आदेशों का स्वागत–** प्रबन्धकों के आदेश आसानी से स्वीकार कर लिये जाते हैं, इससे प्रभावी प्रेरणा मिलती है।

श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की हानियॉ

प्रबन्ध में श्रमिको को भाग देने से निम्न कठिनाइयॉ उत्पन्न हो जाती हैं–

1. **अयोग्य प्रतिनिधि–** यह माना जाता है कि प्रायः श्रमकों के प्रतिनिधि अयोग्य होते हैं, जिनमें पर्याप्त ज्ञान एवं तकनीकी अनुभव का अभाव पाये जाने से वे उद्योग की प्रगति में सही ढ़ंग से योगदान देने में सर्वथा अनुपयुक्त रहते हैं।

2. **नियोक्ता द्वारा विरोध–** प्रबन्धकों द्वारा इस विचार का विरोध किया जाता है। उनके मतानुसार प्रबन्ध में भाग लेने का अधिकार केवल प्रबन्धकों को ही होता है। श्रमिकों को प्रबन्ध में बराबर भाग लेने देना गलत एवं अनुचित है ऐसा करने से उद्योग की प्रबन्ध–व्यवस्था कार्यक्षमता से नहीं चलायी जा सकेगी।

ये कठिनाइयॉ नियोक्ता के संकुचित दृष्टिकोण के कारण उपस्थित होती हैं, परन्तु इन कठिनाइयों के कारण इस योजना को त्यागा नहीं जा सकता तथा प्रायः समस्त औद्योगिक राष्ट्रों में इस योजना को सरलतापूर्वक कार्यान्वित किया जा रहा है।

13.7 प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता का लाभ

श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने से मुख्य रूप से निम्नलिखित लाभों की प्राप्ति होती है–

1. **औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना–** इस योजना के लागू करने से श्रमिकों को अपनी बात कहने और विचार प्रकट करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। उन्हें अपने ही प्रबन्धकों को चुनने का अवसर दिया जाता है।

2. **उत्पादन में वृद्धि–** श्रम प्रबन्ध सहभागिता की योजना उत्पादन मे वृद्धि करती है। औद्योगिक विवादों की संस्था में कमी हो जाने से कार्य में रुकावट कम होती है। श्रमिकों द्वारा अधिक रुचि से कार्य किये जाने के कारण भी उत्पादन की मात्रा एवं किस्म में सुधार होता है।

3. **श्रमिकों को अधिक प्रोत्साहन–** श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने से उन्हें अधिक कार्य करने का प्रोत्साहन मिलता है। वे स्वयं को न केवल श्रमिक समझते हैं, बल्कि कारखाने के मालिक भी समझने लगते हैं। नियोक्ता द्वारा अच्छा व्यवहार किये जाने और अधिक सम्मान दिये जाने के कारण भी श्रमिकों को अधिक कार्य करने की प्रेरणा मिलती है।

4. **औद्योगिक शान्ति की स्थापना–** वास्तव में इस योजना का प्रमुख उद्‌देश्य यही है कि औद्योगिक विवादों को समाप्त कर औद्योगिक शान्ति की स्थापना की जाये। जब श्रमिकों को प्रबन्ध में हिस्सा दिया जाता है तो श्रमिक एवं नियोक्ता आपस में विचार–विमर्श द्वारा ही अनेक समस्याओं का हल निकालते हैं, जिससे हड़ताल तथा तालाबन्दी की स्थिति नहीं आने पाती।

5. **श्रमिकों को त्रिपक्षीय लाभ–** श्रमिकों को प्रबन्ध में भाग देने से श्रमिक तीन प्रकार के लाभान्वित होते हैं। प्रथम श्रमिक के रूप में उन्हें मजदूरी मिलती है, द्वितीय नियोक्ता के रूप में उन्हें लोगों में हिस्सा मिलता है और तृतीय प्रबन्धक के रूप में उन्हें प्रबन्धकीय शक्ति के क्रियान्वयन का अधिकार मिलता है।

6. **अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध–** प्रबन्ध में हिस्सा मिलने पर श्रमिकों द्वारा उत्तरदायित्व पूर्ण व्यवहार किया जाता है। वे अनावश्यक मॉगे करना छोड़ देते हैं। नियोक्ता और श्रमिकों में निकट का सम्बन्ध हो जाने के कारण वे एक दूसरे को अधिक अच्छी प्रकार से समझने लगते हैं। उसके पारस्परिक मतभेदों में कमी आती है और औद्योगिक सम्बन्ध मधुर बनते हैं।

7. **आत्म सम्मान–** जब श्रमिक स्वयं संस्था के नीति निर्धारण में भाग लेता है और विभिन्न समस्याओं के समाधान में सहयोग देता है तो इससे उसकी हीन भावना समाप्त हो जाती है और उसमें आत्म विश्वास एवं आत्म सम्मान बढ़ता है। श्रमिक को संस्था में अपनी विशिष्ट स्थिति का ज्ञान होने से भी उसमें आत्म सम्मान बढ़ता है।

8. **बाहरी हस्तक्षेप में कमी–** कर्मचारियों को संस्था के प्रबन्ध में सहभागिता प्रदान करने से बाहरी पेशेवर एवं अवसरवादी राजनीतिज्ञों के हस्तक्षेप में पर्याप्त कमी हो जाती है। परिणामस्वरूप सेवानियोजकों तथा कर्मचारियों दोनों को अपनी संस्था के कर्मचारियों की वास्तविक समस्याओं को समझने एवं उन्हें हल करने का अवसर मिल जाता है।

9. **अभिप्रेरित होना–** कर्मचारियों को प्रबन्ध में सहभागिता प्रदान करने से–

(i) उनकी मजदूरी में वृद्धि होती है।

(ii) संस्था के प्रबन्ध में सहभागिता प्राप्त होती है।

(iii) अंशधारी बनकर उन्हें अंशों पर लाभांश मिलता है।

(iv) उनकी सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं ही सन्तुष्टि होती है। परिणामस्वरूप श्रमिक अभिप्रेरित हो उठते हैं।

10. अन्य लाभ–

- श्रमिकों की आय एवं सामाजिक स्तर में वृद्धि होती है।
- मजदूरी समस्याओं का समाधान होता है।
- निर्णयों को लागू करने में सुविधा होती है।
- श्रमिकों की सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि होती है।
- श्रमिकों के मनोबल में वृद्धि होती है।

- विवेकीकरण एवं आधुनिकीकरण की योजनाओं को सरलता से लागू किया जा सकता है।
- इससे आत्म सम्मान की भावना को संरक्षण मिलता है एवं उसका विकास होता है।
- उत्पादन की किस्म में सुधार करने में सहायता मिलती हैं।
- श्रमिक का राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्तर ऊँचा उठता है।
- इस योजना को लागू किये जाने से कर्मचारियों की कुशलता में वृद्धि की जा सकती है।
- इस योजना के लागू किये जाने से पारस्परिक समझदारी में वृद्धि होती है।
- संस्था में मानवीय पहलू की महत्ता में वृद्धि होती है।
- इस योजना के लागू किये जाने से संस्था की ख्याति में वृद्धि होती है।

13.8 भारत में प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग व्यवस्था की प्रगति का मूल्यांकन

सर्वप्रथम अक्टूबर 1957 में मद्रास में निजी क्षेत्र के सेम्पसन ग्रुप की मिलों में, सार्वजनिक क्षेत्र में ट्रांन्सपोर्ट इजीनियरिंग वर्कशाप में तथा जुलाई 1958 में हिन्दुस्तान मशीन टूल्स फैक्टरी में संयुक्त परिषदों की स्थापना की गयी। जनवरी 1959 में टाटा आयरन एंण्ड स्टील कम्पनी में भी संयुक्त प्रबन्ध परिषद् बनी।

1958 में जबकि योजना ऐच्छिक आधार पर थी, संयुक्त प्रबन्ध परिषदों की संख्या 23 थी जो बढ़कर 1978 में 1,943 हो गयी। 545 केन्द्रीय पब्लिक सेक्टर और केन्द्रीय सरकार की विभागीय संस्थाओं में यह योजना लागू थी। इसके अलावा 1,132 प्राइवेट क्षेत्र में, 163 राज्यों के पब्लिक सेन्टर में तथा 99 सहकारी क्षेत्र की सस्थाओं में यह योजना लागू हो चुकी थी या इसकी पहल की जा चुकी थी। इनके अलावा 207 संस्थाओं में इस योजना की वैकल्पिक व्यवस्थाएँ थी। उपलब्ध सूचना के अनुसार केन्द्रीय सरकार की 1,043 पब्लिक सेक्टर एवं विभागीय सस्थाओं में यह योजना लागू हो चुकी थी या इसकी शुरुआत हो चुकी थी। बडे उपक्रमों में अनेक विभागीय परिषदें या वर्कशाप परिषदें भी स्थापित की जा सकती है। इसमें श्रमिकों व मालिकों के समान प्रतिनिधि होते हैं। इनके अध्यक्ष मालिक व उपाध्यक्ष श्रमिकों द्वारा मनोनीत किये जाते हैं।

औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के अन्तर्गत ऐसे सभी उपक्रमो में कार्य समितियॉ बनाने का प्रावधान है जिनमें सदस्यों की संख्या 100 या इससे अधिक है। इन कार्य समितियों में श्रमिकों व मालिकों के प्रतिनिधि होते हैं। एक अनुमान के अनुसार अब तक करीब 1,100 कार्य समितियॉ बन चुकी हैं जो 10 लाख से अधिक श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करती हैं। प्रशासनिक सुधार आयोग के सुझाव पर सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों के संचालन मंण्डलों में श्रमिकों के प्रतिनिधि नियुक्त किये जाने लगे हैं। प्रत्येक राष्ट्रीयकृत बैंक के प्रबन्ध मण्डल में भी कर्मचारियों के प्रतिनिधि को नियुक्त

किया जाने लगा है। हिन्दुस्तान एण्टीबायोटिक्स लिमिटेड व हिन्दुस्तान औद्योगिक कैमिकल्स लिमिटेड में श्रमिकों के संचालक नियुक्त किये गये हैं।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि देश की औद्योगिक इकाइयों की संस्था में इन परिषदों की संख्या समुद्र में बूँद के समान है। निजी एवं सार्वजनिक क्षेत्र ने कोई विशेष रुचि नही दिखायी है। धीमी प्रगति के कारण रहे इनकी दूषित कार्यप्रणाली तथा श्रम व नियोक्ता में वैमनस्य राष्ट्रीय विकास परिषद ने भी यह स्वीकार किया कि इन परिषदों का इतना प्रचार होने पर भी इनको आशानुकूल सफलता नहीं मिल पायी है। वर्तमान परिप्रेक्ष में सरकारी दृष्टिकोण को देखते हुए इतना कहा जा सकता है कि निःसन्देह इस योजना की प्रगति धीमी है परन्तु यह योजना जो कि आज छोटे रूप में प्रतीत होती है, भविष्य में एक विशाल वृक्ष के रूप में परिलक्षित होकर निजी एवं सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों को अपनी छत्र छाया में ले लेगी।

13.9 भारत में प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता योजना के कार्यान्वयन में कठिनाइयॉ

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता को बढ़ावा दिया जा रहा है। इस दिशा में प्रगति भी देखने में आयी है, किन्तु उसको पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। इस योजना को प्रभावी रूप में लागू करने में कुछ कठिनाइयॉ है। ये कठिनाइयॉ निम्नलिखित हैं–

1. **श्रम संघो की निर्बल स्थिति–** भारतीय श्रम संघवाद की स्थिति बहुत दयनीय है। यह अभी भी राजनीतिक प्रभुत्व से घिरा हुआ है और राजनीतिक एवं वैयक्तिक मामलों से अग्रसर होता है। सीमित आकार, आपसी फूट, अनुत्तरदायी नेतृत्व अपरिपक्व विकास और संकीर्ण दृष्टिकोण आदि ने शक्तिशाली श्रम संघवाद के विकास को बाधा पहॅुचाई है। श्रमिक अपने अधिकारों के प्रति सचेत नहीं हो पाये हैं।
2. **योजना के प्रति उत्साह एवं सहयोग का अभाव–** श्रमिक सहभागिता योजना का यद्यपि श्रमिक तथा प्रबन्ध दोनों स्वागत करते हैं, किन्तु व्यवहार में आवश्यक उत्साह तथा पारस्परिक सहयोग का अभाव पाया जाता है।
3. **योजना को उचित रूप में समझाना–** श्रमिक एवं नियोक्ता दोनों के द्वारा ही प्रस्तुत योजना को पूर्ण रूप में नहीं समझा गया है। इस योजना को लागू होने से नियोक्ता अपने अधिकारों का हनन मानते हैं। वहीं दूसरी ओर श्रमिक भी अपने अधिकारों को संकुचित समझते हैं।
4. **सार्वजनिक क्षेत्र की उदासीनता–** सार्वजनिक क्षेत्र को एक आदर्श नियोक्ता के रूप में श्रमिक भागीदारी को अपने उपक्रमों में लागू करना चाहिए, लेकिन व्यवहार में पाया जाता है कि उसने पहल एवं नेतृत्व का कार्य नहीं किया है। अतः निजी क्षेत्र के उद्योगपति भी इन योजनाओं को अपनाने में कतराते हैं।
5. **समान संस्थाओं का अस्तित्व–** उद्योगों में संयुक्त प्रबन्धन परिषदों के सम–स्तर की संयुक्त समितियॉ भी कार्यशील है, जैसे– आपातकालीन उत्पादन समिति, कैण्टीन समिति, कल्याण समिति आदि। इनकी उपस्थिति से संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्य और उपादेयता के विषय में भ्रम उत्पन्न होता है।

6. **उपयुक्त वातावरण का अभाव–** किसी भी योजना को लागू करने से पूर्व उपयुक्त वातावरण का निर्माण परम आवश्यक है। प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता को लागू करने से पूर्व इसके लिए उद्योग में एक उपयुक्त वातावरण तैयार करना आवश्यक था। किन्तु हमारे देश में यह वातावरण आज की तिथि तक भी तैयार नहीं किया गया है जिसके फलस्वरूप योजना का असफल होना स्वाभाविक ही था।

7. **प्रबन्ध का परम्परागत होना–** भारतीय व्यवसायिक एवं औद्योगिक जगत अभी तक भी परम्परागत प्रबन्ध व्यवहारों से आक्रांत है। अभी भी निर्देश एवं नियंत्रण द्वारा प्रबन्ध होता है। कर्मचारी अभी भी उपयुक्त निर्देश हेतु अपने नायकों की तरफ देखते हैं। इन परिस्थितियों ने कर्मचारियों में आत्म चेतना के भावों को जाग्रत नहीं होने दिया है और वे प्रबन्ध कार्यो में भाग लेते हुए हिचकिचाते हैं। यही कारण है कि प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता योजना पूर्णरूपेण सफल नहीं हो पायी है।

8. **संकीर्ण प्रबन्धकीय दृष्टिकोण–** अधिकतर उद्योगों में प्रबन्धकीय पदों पर उद्योगों के मालिक या उनके परिवार के सदस्य सुशोभित होते हैं, जो पितृदाय दृष्टिकोण से अधिक ग्रसित होते हैं और व्यावसायीकरण की ओर उनका झुकाव कम रहता है। लोकक्षेत्रीय उपक्रमों में प्रबन्धकीय पदों पर प्रशासकीय अधिकारी बैठे हुए है, जो विभिन्न स्तरों पर प्रबन्ध कार्यो में कर्मचारी सहभागिता को पसन्द नही करते हैं। यह स्थिति श्रम प्रबन्ध के मध्य दूरी बनाये हुए है।

13.10 भारत में प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता योजना की सफलता के लिए सुझाव

भारत में प्रबन्ध कर्मचारियों की सहभागिता को सफल बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं–

1. **श्रमिक शिक्षा पर बल–** इस योजना को प्रभावकारी ढंग से लागू करने के लिए यह भी आवश्यक है कि कर्मचारियों को शिक्षित किया जाय ताकि वे इस योजना को अच्छी तरह से समझ सकें, विचार–विमर्श में भाग ले सकें और अच्छे एवं ठोस सुझाव प्रस्तुत कर सके तथा बाहरी नेताओं के चंगुल से भी बचे रहें।

2. **अनुकूल वातावरण का सृजन–** प्रबन्ध में कर्मचारी सहभागिता की विचारधारा को प्रभावी बनाने के लिए प्रथम आवश्यकता एक ऐसे कदम उठाये जाने की है जिससे की अनुकूल वातावरण का सृजन हो सके। सरकार एवं प्रबन्ध को भली प्रकार समझाया जाना चाहिए कि यह राष्ट्र के आर्थिक हितों के विकास का सर्वोत्तम तरीका है। प्रत्येक व्यावसायिक प्रतिष्ठान के प्रबन्ध द्वारा इसे सहर्ष स्वीकार किया जाना चाहिए, जिससे की इस व्यवस्था को लागू करने हेतु आवश्यक अनुकूल वातावरण का सृजन किया जा सके।

3. **प्रबन्ध प्रशिक्षण का सूत्रपात–** इस व्यवस्था की सफलता के लिए आवश्यक है कि प्रबन्ध अपने परम्परागत दृष्टिकोणों, मूल्यों, तकनीकों, तरीकों एवं पद्धतियों में आमूल–चूल परिर्वतन लाये, जिससे कि आधुनिक श्रम–पद्धतियों तथा दृष्टिकोणों के साथ एक तालमेल उत्पन्न हो सके। अतः प्रबन्ध प्रशिक्षण का सूत्रपात शीघ्रातिशीघ्र किया जाना चाहिए।

4. **प्रबन्धकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन**– श्रमिक भागीदारी को सफल बनाने के लिए यह आवश्यक है कि प्रबन्धकों नियोक्ताओं एवं मालिकों को अपने दृष्टिकोण में परिर्वतन करना चाहिए और उनको यह समझना चाहिए कि इससे उनके अधिकारों में कोई कमी नहीं आती बल्कि समस्याओं के समाधान में सहायता मिलती है। संघर्षो की स्थिति नहीं आती है तथा एक दूसरे के निकट आने से सद्भावना जाग्रत होने के कारण संस्था को लाभ ही रहता है।

5. **एक प्रतिष्ठान में एक ही एकीकृत श्रमिक भागीदारी योजना**– एक कारखाने, प्रतिष्ठान या मिल में श्रमिक भागीदारी के लिए एक ही एकीकृत समिति होनी चहिए, जो संयुक्त परिषद, कार्य समिति या श्रमिक संचालकों का कार्य करे। यदि कहीं कार्य स्तर या शॉप स्तर आदि पर समितियॉ बनाने की आवश्यकता हो तो वे सभी एकीकृत समिति के अर्न्तगत होने चाहिए।

6. **श्रम संघवाद का विकास करना**– प्रबन्ध में कर्मचारी भागिता की योजना तभी सफल हो सकती है, जबकि राष्ट्र में श्रम संघवाद का स्वस्थ विकास किया जा सके। अतः यह कहना सर्वथा सत्य है कि आधुनिक उद्योग में सफल पारस्परिक सम्बन्धों की स्थापना, विकास एवं अनुरक्षण के लिए शक्तिशाली तथा उत्तरदायी कर्मचारी संघों की आवश्यकता हैं। श्रम संघों को शक्तिशाली बनाने और भारतीय श्रम संघवाद व स्वस्थ विकास करने के लिए आवश्यक है कि **राष्ट्रीय श्रम आयोग** द्वारा दी गयी सिफारिशों पर ध्यान दिया जाये। आयोग की सिफारिशों में यह कहा गया है कि श्रम संघों का पंजीयन अनिवार्य किया जाये।

7. **श्रमिकों को प्रगति के भागीदार के रूप में स्वीकार करना**– श्रम को वस्तु के रूप में स्वीकार करने वाले परम्परागत प्रबन्ध दृष्टिकोण के तत्काल परित्याग की आवश्यकता है। प्रबन्ध को चाहिए कि वे कर्मचारियों को अपनी ही तरह मनुष्य समझे। प्रबन्ध को यह भी स्वीकार करना चाहिए कि कर्मचारीगण अपना सहयोग देने को तत्पर और इच्छुक रहते हैं, यदि उनकी आवश्यकताओं को संगठन की आवश्यकता से जोड़ दिया जाये।

8. **सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन**– सामूहिक सौदेबाजी विद्यमान तथा भावी औद्योगिक विवादों के निपटारे की एक सर्वोतम व्यवस्था है। अतः सामूहिक सौदेबाजी को सही दिशा में प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। सामूहिक सौदेबाजी की व्यवस्था शान्ति, विश्वास और पारस्परिक सहयोग के वातावरण का सृजन करती है और इसी वातावरण को प्रबन्ध में कर्मचारी सहभागिता की व्यवस्था का पोषक माना गया है।

13.11 सच्चर समिति की सिफारिशें

एकाधिकार एवं प्रतिबन्धात्मक व्यापार व्यवहार अधिनियम एवं कम्पनी अधिनियम का अध्ययन करने एवं सुधार हेतु आवश्यक सुझाव देने के लिए गठित राजेन्द्र सच्चर समिति ने कम्पनियों के प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग देने के सम्बन्ध में सन 1978 में निम्नलिखित प्रमुख सिफारिशें सरकार को प्रस्तुत की गई थीः–

1. समिति के संचालक मंण्डल में श्रमिकों को भाग देने की सिफारिश की। समिति के अनुसार प्रारम्भ में यह योजना उन कम्पनियों पर लागू की जानी चाहिए

जिनमें एक हजार या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। यह सिफारिश सरकारी तथा गैर सरकारी दोनों प्रकार की कम्पनियों के लिए की गई है।

2. एक कम्पनी को वैधानिक रूप से संचालन मंडल स्तर पर श्रमिकों को भाग देने हेतु बाध्य किया जाना चाहिए, यदि कम्पनी के श्रमिकों के कम से कम 51 प्रतिशत भाग द्वारा गुप्त मतदान से इसका समर्थन किया जाय।

3. समिति ने यह भी सुझाव दिया है कि भविष्य में 10 प्रतिशत से 15 प्रतिशत अंशों के निर्गमन को कम्पनी के श्रमिकों के लिए सुरक्षित रखा जाना चाहिए। उनके द्वारा न लेने पर ही अंशो को विद्यमान अंशधारियों या जनता को निर्गमित किय जाना चाहिए।

4. सरकार को चाहिए कि वह श्रम संचालकों को समुचित प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करे और व्यापारिक सन्नियम एवं लेखांकन आदि विषयों का ज्ञान करायें।

5. समिति की राय में यूरोपीय देशों के समान द्विपक्ष मण्डल व्यवस्था भारत के लिए उपयुक्त नहीं है।

6. श्रम संचालकों का चुनाव कम्पनी के श्रमिकों में से ही किया जाना चाहिए। ऐसे श्रम संचालकों का कार्यकाल तीन वर्ष का होना चाहिए।

13.12 भारत में किये गये प्रयत्न

भारत में इस दिशा में सबसे पहला कदम सन 1938 में दिल्ली क्लॉथ एण्ड जनरल मिल्स लि0 ने उठाया। इस कम्पनी ने अपने संचालक मंण्डल में श्रमिकों के प्रतिनिधियों को उपयुक्त स्थान दिया। तत्पश्चात् बहुत समय तक इस दिशा में कोई सक्रिय कदम नहीं उठाया गया, अतः कोई प्रगति न हो सकी। सन 1947 में औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया गया। इसके प्रावधानों के अन्तर्गत की गयी कार्य समितियों की स्थापना ने भारत में प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता की शुरुआत की ठोस नींव डाली। तत्पश्चात् सन 1948 तथा 1956 की औद्योगिक नीतियों में इस ओर संकेत किया गया। द्वितीय पंचवर्षीय योजना में भी इसका उल्लेख किया गया। योजना में कहा गया कि एक सामाजिक समाज की रचना लाभकारी सिद्धान्तों पर नहीं की जा सकती, उसके लिए समाज सेवा के सिद्धान्त को अपनाना पड़ेगा। यह आवश्यक है कि श्रमिक समझे कि वह प्रगतिशील राष्ट्र निर्माण में अपना योग दे रहा है। प्रजातांत्रिक समाज संगठित करने के पहले औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना अति आवश्यक है। द्वितीय योजना के सफल संचालन के लिए कर्मचारियों का प्रबन्ध में अधिकाधिक सहयोग अनिवार्य है। इससे उत्पादन में वृद्धि होगी, श्रमिक उद्योगों के बारे में अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेगें तथा साथ ही साथ श्रमिकों को अपनी भावनाओं के व्यक्त करने का अवसर मिलेगा, जिससे औद्योगिक शान्ति होगी।

सहभागिता योजना की प्रगति का क्रमानुसार अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है–

1. **अध्ययन दल, 1956 की नियुक्ति–** प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग देने की योजना को वास्तविक रूप प्रदान करने तथा इससे उत्पन्न होने वली समस्याओं के सम्बन्ध में आवश्यक सूचना प्राप्त करने के उद्देश्य से भारत सरकार द्वारा यूरोपीय देशों में श्रमिकों द्वारा प्रबन्ध संचालन में भाग लेने की प्रथा का अध्ययन करने के लिए सन

1956 में 10 सदस्यों का एक अध्ययन मण्डल जिसमें मालिकों, श्रमिकों तथा सरकार कें प्रतिनिधि थे केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के सचिव श्री विष्णुसहाय की अध्यक्षता में भेजा गया । इसने बिट्रेन, बेल्जियम, स्वीडन, यूगोस्लाविया, जर्मनी आदि देशों का दौरा किया। सन 1957 में इसने अपनी रिर्पोट सरकार के सामने प्रस्तुत की। यह रिर्पोट जून सन 1957 में प्रकाशित हुई।

2. **भारतीय श्रम सम्मेलन 1957–** जुलाई 1957 में भारतीय श्रम सम्मेलन का 15वॉ अधिवेशन दिल्ली में सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन में भी भारत में प्रबन्ध में श्रमिको की सहभागिता के प्रश्न पर विचार विमर्श किया गया इस सम्मेलन ने अध्ययन मण्डल 1956 की प्रमुख सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। इसने नियोक्ताओ का यह सुझाव भी स्वीकार कर लिया कि कानून बनाने से पूर्व इस योजना की स्वेच्छापूर्वक आधार पर उचित परीक्षा करनी चाहिए। इस योजना की विस्तृत बातों पर विचार करने के लिए एक त्रिदलीय समिति नियुक्त की गई, जिसमें 12 सदस्य थे। इस समिति ने यह सिफारिश की कि पहले यह योजना केवल 50 उद्योगों पर ही लागू की जाये।

3. **त्रिदलीय विचार गोष्ठी 1958–** 31 जनवरी तथा 1 फरवरी, सन 1958 को नई दिल्ली में त्रिदलीय विचार गोष्ठी को आयोजन किया गया, जिसके अध्यक्ष तत्कालीन केन्द्रीय श्रम मंत्री गुलजारी लाल नन्दा थे। इस गोष्ठी में श्रमिकों, मिल मालिकों तथा सरकार के 100 से अधिक प्रतिनिधि उपस्थिति थे। सर्वसम्मति से यह तय किया गया कि संयुक्त परिषदों के श्रमिकों और मालिकों के बराबर प्रतिनिधि हो, जो 12 से अधिक और 6 से कम न हों। यह संयुक्त परिषद श्रमिकों की रहने और काम करने की दशाओं में सुधार श्रमिकों को सुझाव देने के लिए प्रोत्साहन व्यवस्था कानून तथा प्रसंविदा करने में सहायता प्रदान करेगी। इसके अतिरिक्त इस परिषद में कार्य के नियम छटनी, विवेकीकरण कारखानों की बन्दी आदि महत्वपूर्ण प्रश्नों पर भी विचार विमर्श किया जायेगा ।

4. **द्वितीय अखिल भारतीय श्रम आर्थिक सम्मेलन,1958–59–** 31 दिस्मबर 1958 से 2 जनवरी 1959 तक आगरा में जिसके अध्यक्ष श्री वी0 वी0 गिरि थे, इस योजना पर विचार विनिमय किया गया था। इस सम्मेलन में यह विचार प्रकट किया था कि इस योजना को धीरे धीरे श्रमिकों तथा मालिकों के सक्रिय सहयोग द्वारा कार्यान्वित किया जाना जाना चाहिए। प्रारम्भ से परीक्षण के रूप में इसका अर्थ सलाह के रूप में ही लिया जाय। दोनों को आपस में कन्धे से कन्धे मिलाकर कार्य करते हुए अपने दायित्व को निभाना चाहिए।

5. **द्वितीय त्रिदलीय विचार गोष्ठी, 1960–** 8 तथा 9 मार्च 1960 को दिल्ली में केन्द्रीय श्रम मंत्रालय ने पुनः एक त्रिदलीय विचारगोष्ठी आयोजित की। इस गोष्ठी में उन कारणों पर विचार किया गया जिनके कारण भारत में संयुक्त प्रबन्ध परिषदो की स्थापना एवं प्रगति संन्तोषजनक नहीं हो रही है। इस गोष्ठी में प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता के सम्बन्ध में अनेक सुझाव दिये गये।

6. **त्रिदलीय कर्मचारी सहभागिता योजना,1977–** 30 अक्टूबर, 1977 को केन्द्रीय सरकार द्वारा घोषित 20 सूत्रीय कार्य क्रम में कर्मचारियों को प्रबन्ध में भागिता देने एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम था। इस योजना के अनुसार कर्मचारियों को निगम स्तर, संयन्त्र

स्तर तथा शॉप – फ्लोर स्तर पर प्रबन्ध में भागिता दिये जाने का प्रावधान किया गया ।

7. **जनता सरकार, 1977–** सन 1977 में जनता सरकार ने देश के शासन की बागडोर सँभाली। 4 अप्रैल 1977 को राष्ट्र के नाम अपने सन्देश में जनता शासन के तत्कालीन प्रधानमन्त्री मोरारजी देसाई ने प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता की प्रस्तुत योजना पर बल दिया। उन्होंने कहा कि जनता सरकार इस योजना को लागू करने के लिए वचनबद्ध है, साथ ही उन्होंने चेतावनी दी कि कर्मचारियों के प्रबन्ध में हिस्सा देन में बाधा डालने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध कठोर कारवाही की जायेगी। जनता सरकार ने सन 1977 में घोषित अपनी औद्योगिक नीति में इस बात का उल्लेख किया गया कि औद्योगिक इकाइयों की अंश पूँजी में सहभागिता तथा कार्यशाला स्तर पर संचालन मण्डल तक निर्णय लेने में कर्मचारियों का सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जायेगा, साथ ही उद्योग में कर्मचारियों की आर्थिक सहभागिता के लिए आवश्यक वातावरण का निर्माण किया जायेगा।

8. **प्रबन्ध एवं अंश पूँजी में श्रमिकों का भाग–** भारत सरकार ने सितम्बर, 1977 में केन्द्रीय श्रम मन्त्री की अध्यक्षता में प्रबन्ध एवं अंशपूजी में श्रमिकों की सहभागिता के सम्बन्ध में अध्ययन हेतु एक विपक्षीय समिति का गठन किया। समिति ने अक्टूबर, 1978 में ड्राफट रिर्पोट की मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित है–

- प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता की योजना को लागू करते समय निजी सार्वजनिक एवं सरकारी क्षेत्र में किसी प्रकार का अन्तर नही किया जाना चाहिए।
- समिति के अधिकांश सदस्यों ने सहभागिता की तीन स्तरीय व्यवस्था का समर्थन किया। ये स्तर है– कम्पनी स्तर, प्लाण्ट स्तर, और शाफ फ्लोर स्तर। निजी क्षेत्र के नियोक्ताओं के प्रतिनिधियों ने दो स्तरीय व्यवस्था का समर्थन किया – शॉप स्तर एवं प्लाण्ट स्तर ।
- समिति ने ये भी राय व्यक्त की कि निरीक्षकों एवं मध्यम स्तर प्रबन्धको को भी प्रबन्ध में सहभागी बनाया जाना चाहिए जिससे वे भी निर्णय प्रक्रिया में भाग ले सकें।
- सहभागिता के तीन स्तरों पर किये जाने वाले कार्यो की सूची भी समिति ने तैयार की। संचालक मण्डल स्तर पर अन्य बातों के अतिरिक्त नवीन प्राविधिकी उत्पाद अन्तर्लय एवं विस्तार योजनाओं पर विचार विमर्श करना एवं निर्णय लेना।
- सहभागिता की योजना को लागू करने एवं इसकी क्रियाशीलता का अध्ययन करने हेतु केन्द्रीय एवं राज्य स्तर पर संगठन बनाये जाने चाहिए।
- अंशभागिता के सम्बन्ध में समिति ने विचार प्रकट किया कि यह वैकल्पिक ही रहनी चाहिए।

9. **सन 1980 से आज तक–** सन 1980 में कॉग्रेस ई सरकार पुनः सत्ता में आ गयी। इस नवगठित कॉग्रेस सरकार ने प्रबन्ध में कर्मचारियों की सहभागिता पर पुनः

बल दिया। सन 1983 में कार्यशाला परिषदों तथा संयुक्त परिषदों की स्थापना की नवीन योजना प्रस्तुत की गयी। तत्पश्चात 1 अगस्त 1985 को केन्द्रीय सरकार ने श्रमिकों को उनकी कम्पनियों की अंश पूजी में भागीदारी दिलाने के लिए निम्न दो योजनाएँ भारतीय संसद में प्रस्तुत की –

प्रथम योजना के अन्तर्गत अंशों को श्रमिकों की बचत से जोड़ा गया है। सम्बन्धित कम्पनी के कर्मचारी तीन विभिन्न दरों में वार्षिक बचत जमा करके पॉच वर्ष पश्चात् कम्पनी के अंश बाजार भाव के 80 प्रतिशत भाव पर क्रय कर सकेंगे। इस योजना को अपनाना कम्पनी और उसके कर्मचारियों की इच्छा पर निर्भर करता है। **द्वितीय योजना** में कम्पनियॉ कुल पब्लिक या राइट्स अंशो का कम से कम 5 प्रतिशत भाग अपने श्रमिकों को प्राथमिकता के आधार पर आबंटित करेंगी। इस योजना के निर्देशों के अन्तर्गत कम्पनियों को सलाह दी गई कि जब वे पूॅजी निर्गमन नियन्त्रक के समक्ष नये शेयर जारी करने का प्रस्ताव रखें तो नये शेयरों में 5 प्रतिशत अंश अपने कर्मचारियों के लिए रिजर्व रखें। संसद ने दोनों योजनाए तुरन्त पारित कर दी एवं उन्हें लागू कर दिया गया। ये दोनों योजनाएँ पूर्णतः ऐच्छिक है।

कर्मचारियों को प्रबन्ध में सहभागी बनाने के लिए 13 जुलाई ,1985 को तत्कालीन श्रम मंत्री की अपील 13 जुलाई 1985 को तत्कालीन श्रम मन्त्री टी0 अंजैया ने नियोजकों से अपील की कि वे श्रमिकों को प्रबन्ध में भागीदारी का अवसर दें ताकि श्रम सम्बन्धी अनियमिताएँ विषय पर आयोजित गोष्ठी का उद्घाटन करते हुए कहा कि ऐसा करने से सौहार्द्रपूर्ण औद्योगिक सम्बन्धों को बढ़ावा मिलेगा, जो राष्ट्र के आर्थिक विकास की अनिवार्य पूर्व शर्त है। उन्होंने कहा कि सरकार राष्ट्रीय वेतन नीति तैयार करेगी तथा इस बात की भी व्यवस्था करेगी के कर्मचारियों के वेतन में प्रत्येक दो तीन वर्ष में वृद्धि हो सके।

13.13 सारांश

श्रमिकों द्वारा प्रबन्ध में भाग लेने से आशय उद्योगों की प्रबन्ध व्यवस्था में श्रमिकों द्वारा भाग लेने से है। इसके अन्तर्गत श्रमिक लाभ एवं नीति निर्धारण में भाग लेते हैं। इस विधि में कर्मचारी को मजदूरी के अतिरिक्त लाभ एवं उद्योग से सम्बन्धित नीतियों को निर्धारित एवं कार्यान्वित करने का अधिकार प्राप्त होता है। इसमें समस्त श्रमिकों को न लेकर उनके प्रतिनिधियों को लिया जाता है, जिससे वह अपनी सलाह देकर स्वस्थ वातावरण का निर्माण कर सकें।

प्रबन्ध में सहभागिता से श्रमिकों में आत्म–विश्वास, आत्म–सम्मान तथा अधिक कार्य करने की भावना का विकास होता है। यह श्रम तथा पूॅजी के बीच सामाजिक सहयोग स्थापित करने का तरीका है। इससे औद्योगिक शान्ति को प्रोत्साहन देने व श्रम असन्तोष को कम करने तथा प्रतिनिधियों को प्रबन्ध के विभिन्न स्तरों पर निर्णय लेने की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिलता है। प्रबन्ध में श्रमिकों को भाग लेने के मुख्य उद्देश्यों को मनोवैज्ञानिक उद्देश्य, आर्थिक उद्देश्य एवं सामाजिक उद्देश्यों में विभक्त किया गया है।

प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने वाले विभिन्न रूप कार्य समिति के निर्माण, सहभागिता, श्रमिक संचालन की नियुक्ति, श्रमिक कार्यक्षमता में वृद्धि आदि हैं। श्रमिकों

को प्रबन्ध में भाग देने से मुख्य रूप से औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना, उत्पादन में वृद्धि, श्रमिकों को अधिक प्रोत्साहन, औद्योगिक शान्ति की स्थापना, श्रमिकों को त्रिपक्षीय लाभ, अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध, आत्म–सम्मान की प्राप्ति आदि लाभों की प्राप्ति होगी। निर्णयों को लागू कर, श्रमिकों की सामाजिक एवं मानसिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि कर, श्रमिकों के मनोबल में वृद्धि कर, विवेकीकरण एवं आधुनिकीकरण की योजनाओं को सरलता से लागू कर श्रमिकों के आत्म सम्मान की भावना को संरक्षण मिलता है एवं मजदूरी समस्याओं का समाधान होता है।

भारत में प्रबन्ध कर्मचारियों की सहभागिता को सफल बनाने के लिए श्रमिक शिक्षा पर बल, अनुकूल वातावरण का सृजन, प्रबन्ध प्रशिक्षण का सूत्रपात, प्रबन्धकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन, एक प्रतिष्ठान में एक ही एकीकृत श्रमिक भागीदारी योजना, श्रम संघवाद का विकास करना, श्रमिकों को प्रगति के भागीदार के रूप में स्वीकार करना, सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहन आदि विधियॉ अपनायी जा सकती हैं।

13.14 शब्दावली

प्रबन्ध में सहभागिता– उद्योग की प्रबन्ध व्यवस्था में श्रमिकों द्वारा हिस्सा लेना।

अभिप्रेरण– श्रमिकों को सहयोग और सर्वोत्तम प्रयासों का योगदान करने के लिए प्रेरित करना।

मितव्ययता– कम खर्च करना।

लाभ भागिता– श्रमिक को लाभ में प्राप्त अंश जो पहले से निश्चित कर दिया जाता है।

सामूहिक सौदेबाजी– नियोक्ता एवं श्रमिक संघ के प्रतिनिधियों के बीच कार्य की दशाओं एवं मजदूरी से सम्बन्धी सौदाकारी।

कार्य सम्पन्नता– कार्य को अधिक विस्तृत, उत्तरदायित्वपूर्ण व चुनौतीपूर्ण बनाना है।

13.15 बोध प्रश्न

(A) सही उत्तर चुनिए

1– सहभागिता योजना का जन्म सर्वप्रथम किस देश में हुआ था ?

(i) अमेरिका (ii) जापान

(iii) जर्मनी (iv) इंग्लैण्ड

2– औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने के लिए सहभागिता पर अधिक जोर दिया गया।

(i) प्रथम पंचवर्षीय योजना (ii) द्वितीय पंचवर्षीय योजना

(iii) तृतीय पंचवर्षीय योजना (iv) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना

3– सरकार, नियोक्ता तथा श्रमिकों में सहकारिता की भावना उत्पन्न करने के प्रश्न पर अर्न्तराष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (I.L.O) के किस अधिवेशन में विचार किया गया।

(i) 31 वें अधिवेशन (ii) 32 वें अधिवेशन

(iii) 33 वें अधिवेशन (iv) 34 वें अधिवेशन

4– बोनस भुगतान अधिनियम 1977 में कितना न्यूनतम बोनस श्रमिकों को देना तय किया गया

(i) 8.33% (ii) 7.33%

(iii) 6.33% (iv) 5.33%

5 – सहभागिता से श्रमिकों के सामाजिक स्तर में क्या प्रभाव पड़ता है

(i) कमी आती है (ii) वृद्धि होती है

(iii) कोई प्रभाव नहीं पड़ता (iv) उपर्युक्त में कोई नहीं

(B) रिक्त स्थान भरो।

1. किसी औद्योगिक इकाई के लाभ में से श्रमिकों को भाग देना............. कहलाता है ।
2. सहभागिता पद्धति के अनुसार श्रमिक अपने उद्योग के .... बन जाते हैं।
3. लाभांश भागिता एक स्वतन्त्र समझौता है जो ....या .... हो सकता है।।
4. कार्य समिति के निर्माण में प्रबन्ध एवं श्रमिकों के............ भाग लेते हं।
5. सहभागिता योजना का प्रयोग केवल ....कम्पनियों में ही किया जा सकता है।

13.16 बोध प्रश्नो के उत्तर

(A)

उत्तर. **1.(iv),** 2 **.(iii),** 3 **.(iv),** 4.**(i),** 5.**(ii)**

(B)

Ans. 1. लाभांश भागिता योजना, **2.** सहभागी, **3.** लिखित या मौखिक, **4.** प्रतिनिधि , **5.** संयुक्त पॅूजी वाली

13.17 स्वपरख प्रश्न

1. लाभांस भागिता से आप क्या समझते हैं ? इस योजना के गुण दोषों की विवेचना कीजिए।
2. लाभांस भागिता पद्धति पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
3. लाभांस भागिता तथा सहभागिता को स्पष्ट कीजिए ? उत्पादन बढ़ाने में उनकी प्रभावकरिता का परीक्षण कीजिए।
4. लाभांस भागिता एवं श्रम सहभागिता में अन्तर दिखाइए ? दोनों ही पद्धतियों के लाभ और हानियों को बतलाते हुए उत्तर दीजिए।
5. प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी से आप क्या समझते हैं ? भारतीय उद्योगों में इसकी क्या प्रगति हुई है।

6. श्रमिकों के उद्योगों के प्रबन्ध में निर्णयात्मक भाग देना कहॉ तक उचित है? अपने विचार व्यक्त कीजिए।
7. भारतीय उद्योगों के प्रबन्ध में श्रमिकों द्वारा भाग लेने की खोज योजनाओं का आलोचनात्मक मूल्याकंन कीजिए ।
8. क्या आप औद्योगिक उपक्रमों में प्रबन्ध में श्रमिकों की भागीदारी के पक्ष में है ? यह प्रयोग हमारे देश में किस सीमा तक सफल हुआ है।

13.18 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979।

इकाई 14 मानव संसाधन सूचना पद्धति (Human Resources Information Systems (HRIS)

इकाई की रुपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 मानव संसाधन सूचना पद्धति का अर्थ
14.3 मानव संसाधन सूचना पद्धति की आवश्यकता
14.4 मानव संसाधन सूचना पद्धति के प्रयोग
14.5 मानव संसाधन सूचना पद्धति का आयोजन
14.6 मानव संसाधन सूचना पद्धति के लाभ
14.7 मानव संसाधन सूचना पद्धति में सेविवर्गीय स्टॉक
14.8 मानव संसाधन सूचना पद्धति की सीमाएं
14.9 सारांश
14.10 शब्दावली
14.11 बोध प्रश्न
14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर
14.13 स्वपरख प्रश्न
14.14 सन्दर्भ पुस्तकें

14.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) का अर्थ समझ सकें।
- मानव संसाधन सूचना पद्धति की आवश्यकता एवं उसके प्रयोग को बता सकें।
- मानव संसाधन सूचना पद्धति के आयोजन के विभिन्न कदमों का विश्लेषण कर सकें।
- मानव संसाधन सूचना पद्धति में सेविवर्गीय स्टॉक की सूची में क्या सम्मिलित होता है, इसे बता सकें।
- मानव संसाधन सूचना पद्धति के माध्यम से किसी संस्था को हो सकने वाले लाभों को समझ सकें।
- मानव संसाधन सूचना पद्धति को लागू करने के पश्चात् होने वाली समस्याओं को भी समझ सकें।

14.1 प्रस्तावना

वर्तमान युग में कर्मचारी की उत्पादकता, प्रतिस्पर्धात्मक शक्ति तथा कॉरपोरेट उत्कृश्टता (corporate excellence) के लिए किसी भी संगठन में सूचना (Information) की महत्ता महसूस की जाने लगी है और इसीलिये इसे पाँचवे संगठनात्मक संसाधन के रुप में जाना जाने लगा है। सूचना तकनीकी (Information Technology) के वर्तमान युग में सूचना ही शक्ति है। यह किसी संगठन के जीवन–रक्त के समान है। अब यह अहसास होने लगा है कि आज के जटिल एवं परिवर्तित होने वाले व्यावसायिक

वातावरण में किसी व्यवसाय की सफलता, संस्था के मानव संसाधन के प्रभावी प्रबन्धन पर निर्भर है। चूँकि मानव संसाधन का प्रभावी प्रबन्धन इस संसाधन के लिए प्रयोग की गई सूचनाओं की किश्म पर निर्भर करता है। अतः व्यवसायिक वातावरण में एक ऐसी सूचना प्रणाली (पद्धति) की आवश्यकता होती है जिसके माध्यम से सूचनाओं का आदान–प्रदान किया जा सके। इस आवश्कता के कारण ही मानव संसाधन सूचना प्रणाली (HRIS) का अविष्कार हुआ।

14.2 मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) का अर्थ

मानव संसाधन सूचना पद्धति का अर्थ –

मानव संसाधन सूचना प्रणाली (HRIS), किसी संगठन के प्रभावी प्रबन्धन के लिए वांछित सूचनाओं की आपूर्ति करने की पद्धति है। इस सूचनाओं के आधार पर संगठन में कार्यरत मानव संसाधन के सन्दर्भ में विभिन्न निर्णयन (Decision-making) किये जाते हैं। कम्प्यूटरीकृत मानव संसाधन सूचना प्रणाली के अन्तर्गत व्यक्तियों के किसी संगठन में नियुक्त होने के समय से संस्था को छोड़ने तक की अवधि के क्रियाकलापों के बारे में विभिन्न जानकारियों एकत्रित की जाती है। HRIS की व्याख्या करने से पूर्व प्रबन्धन सूचना प्रणाली Management Information System (MIS) को समझना आवश्यक है। MIS किसी प्रबन्ध के लिए औपचारिक एवं सामान्यतः कम्प्यूटरीकृत सूचनाओं को प्रदान करने वाली गतिविधि है। इसके माध्यम से किसी संस्था के आन्तरिक एवं बाहरी मामलों से सम्बन्धित विभिन्न निर्णयन लिये जाते हैं। MIS की उपरोक्त अवधारणा को मानव संसाधन प्रबन्ध के संबंध में प्रयोग करते हुए HRIS को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है –

''मानव संसाधन सूचना प्रणाली प्रत्येक कर्मचारी से सम्बन्धित विभिन्न आंकड़ों एवं सूचनाओं को सुव्यवस्थित रुप में रखने की ऐसी प्रणाली है जिसका उपयोग, नियोजन, निर्णयन, तथा बाहरी एजेन्सियों को रिपोर्ट एवं विवरणियों के सम्प्रेषण में किया जाता है।''

14.3 मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) की आवश्यकता

मानव संसाधन नियोजन प्रक्रिया के अन्तर्गत विभिन्न आंकड़ों की आवश्यकता होती है। आधुनिक व्यावसायिक संगठन के लिए सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए जो मानवीय रिकार्ड पद्धति अपनायी जाती है, वह प्रायः अपर्याप्त तथा अपूर्ण होती है। मानवीय रिकार्ड पद्धति की कठिनाईयों तथा रिकार्ड को उचित रुप से बनाये रखने तथा उन्हें अद्यतन (Up-date) रखने सम्बन्धी समस्या के कारण ही HRIS की आवश्यकता महसूस की गई। पुरानी प्रणाली में विभिन्न प्रकार की समस्याएं थी, जैसे – समय, लागत, दो बार रिकार्ड होना, शुद्धता, आंकड़ों का विष्लेशण, आंकड़ों का एक रिकार्ड से दूसरें में अन्तरण करते समय गलती आदि। इस कारण मानवीय रिकार्ड पद्धति में आंकड़ों की शुद्धता तथा विश्वसनीयता पर विपरीत प्रभाव पड़ता था। इसके अतिरिक्त दो बार लेखा हो जाने अथवा आकड़ों के गलती से किसी दूसरे लेखे में अन्तरित (ट्रांसफर) हो जाने के कारण असमंजस रहता था। चूंकि आंकड़ों सूचनाओं की संकलन विभिन्न विभागों में, विभिन्न स्थानों पर भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा किया

जाता था। इस कारण प्रत्येक कर्मचारी की सम्पूर्ण सूचनाएं एक केन्द्रीयकृत स्थान पर मिलना असम्भव था। इसका प्रभाव संगठन की निर्णयन प्रणाली पर पड़ना स्वाभाविक था। अतः नये व्यवसायिक वातावरण में HRIS की आवश्यकता महसूस की गई। HRIS की आवश्यकता को निम्न उद्देश्यों की पूर्ति के संबंध में देखा जा सकता है–

1. प्रत्येक कर्मचारी के बारे में तुरन्त सन्दर्भ हेतु आंकड़ों एवं सूचनाओं को तैयार रखना।
2. दिन–प्रतिदिन के व्यक्तिगत मामलों (उदाहरणार्थ–अवकाश की अनुमति) के निर्णयन के आधार पर निर्धारण करना। इसके अतिरिक्त मानव संसाधन कार्यों जैसे – नियोजन, बजटन, क्रियान्वयन आदि के लिए भी आधार हेतु।
3. सरकार तथा अन्य एजेन्सियों हेतु आंकड़ों एवं अन्य विवरणियों की आपूर्ति हेतु।
4. कर्मचारियों की प्रोन्नति स्थानान्तरण आदि में समानता एवं न्याय हेतु रिकार्ड की आवश्यकता हेतु।
5. मानव संसाधन से सम्बन्धित रिकार्ड का प्रायः अभाव रहता है, अतः इस अभाव की पूर्ति हेतु।

14.4 मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) के प्रयोग

चूंकि किसी संस्था में HRIS का प्रयोग करने का मुख्य उद्देश्य विभिन्न सूचनाओं एवं रिकार्ड को एकत्र करना, उन्हें वर्गीकृत करना, प्रक्रियाबद्ध करना एवं भावी आवश्यकता हेतु उन्हें सुरक्षित ढंग से रखना होता है ताकि उस संस्था के मानव संसाधन का समुचित एवं प्रभावी प्रबन्धन किया जा सके। किसी संस्था में HRIS के विभिन्न प्रयोगों को निम्न प्रकार वर्णित किया जा सकता है –

1. **व्यक्तिगत सूचनाएं** – HRIS के माध्यम से कर्मचारियों की व्यक्तिगत सूचनाएं एक ही स्थान पर मिल जाती हैं। व्यक्तिगत सूचनाओं के अन्तर्गत कर्मचारी का नाम, पता, जन्मतिथि, वैवाहिक स्थिति, संस्था में नियुक्ति पाने की तिथि आदि सूचनाएं सम्मिलित होती हैं। इसी के साथ कर्मचारी के निकटतम सम्बन्धी का नाम, पता, फोन नं0 आदि भी रिकार्ड में रखा जा सकता है ताकि भविष्य में आवश्यकता पड़ने पर उससे सम्पर्क किया जा सके।
2. **वेतन सम्बन्धी** – HRIS के विभिन्न कार्यों में से एक कार्य यह है कि इसके द्वारा कर्मचारियों के वर्तमान वेतन, विभिन्न लाभ, अन्तिम वेतन वृद्धि एवं भविष्य में वेतन वृद्धि से सम्बन्धित सूचनाएं प्राप्त की जा सकती है। इसके आधार पर सही समय पर वेतन सम्बन्धी सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान सम्भव है।
3. **अवकाश एवं अनुपस्थिति का रिकार्ड** – HRIS द्वारा कर्मचारियों की छुट्टियों एवं अनुपस्थितियों पर नियन्त्रण रखा जा सकता है। इसमें प्रत्येक कर्मचारी के अवकाशों का विवरण होता है। इस हेतु प्रत्येक कर्मचारियों को एक परिचय–पत्र दिया जा सकता है, जिस पर कर्मचारी की विशेष कोड संख्या लिखी जाती है और कर्मचारी के संस्था में प्रवेश और बाहर जाते समय कर्मचारी के परिचय–पत्र पर उसकी उपस्थिति एवं समय रिकार्ड हो जाता है,

ऐसा होने पर कर्मचारियों द्वारा किसी भी प्रकार की उपस्थिति सम्बन्धी अनियमितिताएं नहीं होगी और साथ ही प्रत्येक कर्मचारी के वेतन निर्धारण में भी गलतियां नहीं होंगी।

4. **कार्य कौशल को मापने में सहायक** – HRIS का एक अन्य प्रयोग कर्मचारियों के कौशल को रिकार्ड करना तथा कौशल सम्बन्धी आंकड़ों का परीक्षण करते रहना भी है। कौशल सम्बन्धी रिकार्ड के आधार पर संस्था में किसी निश्चित पद या कार्य पर किसी योग्य कर्मचारी को नियुक्त किया जा सकता है।
5. **निष्पादन मूल्यांकन हेतु** – कर्मचारियों के बारे में विस्तृत जानकारी एक साथ प्राप्त करने के लिए HRIS के माध्यम से कर्मचारियों का एक ऐसा डाटाबेस तैयार हो जाता है, जिसके आधार पर कर्मचारियों का निष्पादन मूल्यांकन, प्रोन्नति के लिए योग्यता अंकन तथा प्रत्येक निष्पादन कार्य के लिए अंक निर्धारण आसानी से हो जाता है। इन आंकड़ों के आधार पर कर्मचारियों के प्रशिक्षण, स्थानान्तरण तथा प्रोन्नति मामलों में सही एवं उचित समय पर निर्णयन लिये जा सकते हैं।
6. **जनशक्ति नियोजन हेतु** – HRIS का मानवशक्ति नियोजन में भी प्रयोग किया जाता है। क्योंकि इसमें विभिन्न पदों से सम्बन्धित संगठनात्मक आवश्यकताओं की सूचनाएं भी रखी जाती हैं। यह प्रणाली संगठन में वांछित पदों हेतु कर्मचारियों को तैयार रखती है। साथ ही संस्था में होने वाली पद–रिक्तियों और उन पदों पर नियुक्त किये जा सकने वाले मानव संसाधनों को भी व्यवस्था करती है।
7. **भर्ती हेतु** – मानव संसाधन प्रबन्ध का एक प्रमुख कार्य कर्मचारियों की भर्ती करना है। HRIS इस कार्य हेतु भर्ती के दौरान होने वाली गतिविधियों के विवरण को रिकार्ड करती है। इस रिकार्ड की प्रक्रिया में लागत, भर्ती में लगने वाली समयावधि तथा भर्ती के विभिन्न तरीकों को भविष्य के लिए उदाहरण के रुप में प्रयोग किया जा सकता है।
8. **सामूहिक सौदेबाजी हेतु** – कम्प्यूटर का प्रयोग होने के कारण HRIS द्वारा नवीनतम एवं उचित तथ्य, आंकड़ें एवं विभिन्न सूचनाएं प्राप्त की जा सकती हैं। अतः इस सूचनाओं के आधार पर बेहतर सामूहिक सौदेबाजी सम्भव है। इसके अतिरिक्त HRIS संस्था में बेहतर मानव सम्बन्धों को बनाने में भी सहायक होती है।

14.5 मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) का आयोजन

आधुनिक युग में अधिकांश व्यवसायिक संस्थाओं में एक अच्छी मानव संसाधन सूचना पद्धति HRIS के आयोजन की आवश्यकता महसूस की जाने लगी है। एक आदर्श HRIS के आयोजन में निम्नलिखित चरण सम्मिलित किये जा सकते हैं –

1. **सूचनाओं की आवश्यकताओं का निर्धारण** – किसी भी निर्णयन प्रक्रिया के लिए आंकडें एवं सूचनाएं एक आधार का कार्य करते हैं। विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों को भिन्न–भिन्न प्रकार की सूचनाओं की आवश्यकता पड़ सकती है। अतः HRIS के आयोजन में सर्वप्रथम चरण प्रबन्धकों द्वारा आवश्यक सूचनाओं

की पहचान करना होता है। इस कार्य हेतु संगठन में विस्तृत एवं स्पष्ट अध्ययन की आवश्यकता होती है, जिसमें कार्य करने का तरीका, आपसी सम्बन्ध तथा HRIS को प्रभावित करने वाले कारकों का विश्लेषण भी आवश्यक है। यद्यपि उपरोक्त कारक संस्था, उद्योग तथा समय के आधार पर भिन्न–भिन्न हो सकते हैं फिर भी इन पर विचार किये जाने की नितान्त आवश्यकता होती है।

2. **पद्धति के बारे में आयोजन** – इस अवस्था में विभिन्न सूचनाओं का रख रखाव इस तरह से हो चुका होता है, जिसका प्रबन्धकों की आवश्यक सूचनाओं के साथ तालमेल उचित तथा मितव्ययी ढंग से हो जाता है। यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि HRIS प्रबन्ध सूचना पद्धति (MIS) की एक उप–पद्धति है, जिसमें यद्यपि किसी पृथक आयोजन, की जरुरत नहीं होती है लेकिन फिर भी विभिन्न स्तरों के प्रबन्धकों के वांछित आंकडों की विश्लेषण प्रक्रिया के दौरान HRIS का आयोजन किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है।
3. **क्रियान्वयन** – इस अवस्था में HRIS वास्तव में स्थापित हो चुकी होती है। अतः इस पद्धति के प्रभावी संचालन हेतु कर्मचारियों को विभिन्न ओरिएन्टेसन तथा प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से आवश्यक कौशल विकसित किया जाता है। इसके अतिरिक्त, सुविधाओं को नवीनतम तथा बढ़ाया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण प्रक्रिया को इस तरह से परिवर्तित किया जाता है, जिससे HRIS का विभिन्न स्तरों पर उचित प्रकार से क्रियान्वयन किया जा सके।
4. **मूल्याकंन** – HRIS किसी संस्था के सम्पूर्ण संसाधन प्रबन्ध के निष्पादन को मापने से सम्बन्धित है। इस पद्धति के क्रियान्वयन से विभिन्न कर्मियों का पता लग जाता है, और कुछ सुधारात्मक उपायों को लागू करके विभिन्न कार्यों को सरलतापूर्वक सम्पादित भी किया जा सकता है। इस पद्धति का एक निश्चित अन्तराल पर समय–समय पर मूल्यांकन किया जाना चाहिए ताकि आवश्यक परिवर्तनों को संस्था में लागू किया जा सके।

14.6 मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) के लाभ

किसी संस्था में एक विकसित मानव संसाधन सूचना पद्धति के द्वारा निन्म लाभ प्राप्त होते हैं –

1. मानव संसाधन से सम्बन्धित आंकडों, के संकलन की लागत में अपेक्षाकृत कमी आती है।
2. विभिन्न आंकड़ों के रखरखाव की प्रक्रिया की गति में तेजी आती है।
3. कुछ कार्यों को दोबारा होने की आशंकाओं में कमी, फलस्वरुप लागत में भी कमी आती है।
4. मानव संसाधन से सम्बन्धित आंकड़ों का सही, शुद्ध एवं उचित समय पर प्राप्ति सम्भव है।
5. आंकड़ों का बेहतर विश्लेषण सम्भव। इस कारण निर्णय अधिक प्रभावी ढंग से लिये जा सकते हैं।

6. सभी स्तरों पर अधिक अर्थपूर्ण कैरियर आयोजन सम्भव है।
7. विभिन्न रिपोर्टो की बेहतर गुणवत्ता के साथ प्रस्तुति सम्भव है।
8. पद्धति में अपेक्षाकृत अधिक पारदर्शिता रहती है।

14.7 मानव संसाधन सूचना पद्धति में सेवीवर्गीय स्टॉक (Personnel Inventory)

सेविवर्गीय इन्वेन्ट्री/स्टॉक का अभिप्राय किसी संस्था में कार्यरत कर्मचारियों की व्यक्तिगत सूचनाओं की एक सूची (List) से है। व्यक्तिगत सूचनाओं के अन्तर्गत व्यक्ति का नाम, पता, लिंग, योग्यताएं, अनुभव आदि को सम्मिलित किया जाता है। मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) के अन्तर्गत सेविवर्गीय स्टॉक मानव संसाधन नियोजन हेतु सहायक सिद्ध होता है। सेविवर्गीय स्टॉक की सूचनाएं समय–समय पर कर्मचारियों द्वारा भरे जाने वाली प्रश्नावली (Questionnaires) तथा आवेदन पत्रों के माध्यम से प्राप्त की जा सकती हैं। सेविवर्गीय स्टॉक में कौन–कौन सी सूचनाएं सम्मिलित की जाए, यह प्रत्येक संस्था के प्रयोग किये जाने की आवश्यकता पर निर्भर होता है। सेविवर्गीय स्टॉक में निम्नलिखित बातों का समावेश किया जा सकता है –

1. व्यक्ति विशेष का नाम, पता, जन्मतिथि, वैवाहिक स्थिति तथा अन्य वह विवरण जो व्यक्ति की अन्य जानकारी से सम्बन्धित हो।
2. व्यक्ति के कौशल, योग्यताए कार्य अनुभव और संस्था में हित से सम्बन्धित सूचनाएं जो कि कर्मचारी के संस्था में आने के पूर्व तथा पश्चात् दोनों अवधि के सन्दर्भ में हों।
3. संस्था में आने की तिथि, पद तथा कार्य से सम्बन्धित अन्य आंकडें तथा सूचनाएं।
4. पूर्व में यदि किसी पद पर कार्य किया हो तो वहाँ का कार्य निष्पादन, पर परिवर्तन स्थान विशेष पर नियुक्त की दशा में परिवर्तन इत्यादि का विवरण।
5. कार्य निष्पादन से सम्बन्धित सूचनाएं, जो कि प्रायः गोपनीय होती हैं, अतः इन्हें किसी कोड भाषा में लिखा जाना चाहिए।
6. मजदूरी एवं वेतन तथा अन्य लाभ की गणना हेतु सभी आवश्यक आंकड़ें।
7. श्रमिक के पर्यवेक्षण से सम्बन्धित सूचनाएं जैसे आने जाने का समय नोटिस करना, अनुपस्थिति का रिकार्ड रखना, उत्पादन तथा श्रम लागत सम्बन्धी सूचनाएं।
8. स्वास्थ्य सुरक्षा शिक्षा एवं प्रशिक्षण से सम्बन्धित सूचनाएं।
9. कर्मचारियों के भर्ती एवं चयन से सम्बन्धित सूचनाएं, जैसे –कौन–कौन से आवेदन पत्र प्रक्रिया में हैं, कौन–कौन से आवेदन पत्र फाइल में है, भर्ती की गतिविधियों की क्या स्थिति है? आदि।

14.8 मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) की सीमाएं

कम्प्यूटराइज्ड HRIS के माध्यम से किसी संस्था को मात्र लाभ ही प्राप्त नहीं होते है, बल्कि HRIS के कारण संस्था को विभिन्न समस्याओं का भी सामना करना पड़ता है। यदि इन समस्याओं का समाधान निकाल लिया जाता है तो HRIS अधिक

प्रभावी ढंग से लाभदायक सिद्ध हो सकता है। HRIS की मुख्य समस्याओं अथवा सीमाओं का वर्णन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है –

1. यह पद्धति धन और मानवशक्ति की आवश्यकता के सन्दर्भ में अधिक खर्चीली है।
2. इस पद्धति के प्रभावी उपयोग के लिए यह आवश्यक है कि HRIS के रख–रखाव के लिए उत्तरदायी कर्मचारियों को बडे पैमाने पर कम्प्यूटर की जानकारी होनी आवश्यक है।
3. यदि HRIS के आयोजन के लिए नियुक्त व्यक्ति अपने कार्य में पूर्ण रुप से निपुण नहीं है तो HRIS द्वारा उपलब्ध आंकड़ों तथा प्रबन्धकों को वांछित आंकड़ों में परस्पर असमानता हो सकती है।
4. कम्प्यूटर, मानव शक्ति का स्थान कभी नहीं ले सकता है क्योंकि किसी भी परिस्थिति में सुधार करने हेतु मानवीय प्रयास बने रहेंगे।
5. HRIS के निरन्तर अद्यतन (Up-dating) के अभाव में सूचनाओं में नवीनता नहीं रह पाती है।

14.9 सारांश

मानव संसाधन सूचना पद्धति को संक्षेप में HRIS अर्थात Human Resource Information System कहा जाता है। यह एक कम्प्यूटराइज्ड सूचना पद्धति है जिसमें किसी संस्था के प्रभावी मानव संसाधन प्रबन्ध के लिए विभिन्न आंकडों एवं सूचनाओं को एकत्र किया जाता है, ताकि उसका प्रयोग आवश्यक निर्णयन प्रक्रिया के अन्तर्गत शीध्रता से किया जा सके। HRIS की आवश्यकता कुछ उद्‌देश्यों को पूरा करने हेतु महसूस की जाती है जैसे – संस्था में कार्यरत किसी कर्मचारी के बारे में तुरन्त सन्दर्भ की दशा में सूचनाएं तुरन्त एवं एक ही स्थान पर उपलब्ध हो जाती है। इसके अतिरिक्त दिन प्रतिदिन के विभिन्न निर्णय लेने की स्थिति में HRIS के माध्यम से सम्बन्धित आंकडें एवं सूचनाएं यथाशीध्र मिल जाते हैं। साथ ही सरकार एवं विभिन्न एजेन्सियों को भेजी जाने वाली विभिन्न रिपोर्ट हेतु भी भ्त्रै द्वारा आंकडों को आवश्यकतानुसार विश्लेषित किया जा सकता है।

HRIS का प्रयोग किसी भी संस्था में कार्यरत कर्मचारियों की सूचनाओं, उनके वेतन, अवकाश, कार्य निष्पादन, मूल्यांकन, भर्ती, चयन, प्रोन्नति, कैरियर नियोजन तथा सामूहिक सौदेबाजी हेतु किया जा सकता है। HRIS के आयोजन हेतु सर्वप्रथम विभिन्न सूचनाओं की आवश्यकताओं का निर्धारण किया जाता है, तत्पश्चात पद्धति का चुनाव एवं आयोजन किया जाता है, फिर उसे क्रियान्वित किया जाता है। इसके बाद समय–समय पर पद्धति का मूल्यांकन करते रहना चाहिए।

HRIS के प्रयोग द्वारा संस्था में आंकडों के एकत्रीकरण की लागत में कमी आती है, आंकडों को स्टोर करने एवं उन्हें आवश्यकतानुसार विश्लेषित करने में अपेक्षाकृत कम समय लगता है। विभिन्न सरकारी एजेन्सियों को भेजी जाने वाली रिपोर्ट अधिक गुणवत्तायुक्त तथा शीध्र प्रेषित की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली में पारदर्शिता भी रहती है।

सेविवर्गीय स्टॉक से तात्पर्य यह है कि HRIS के अन्तर्गत विभिन्न कर्मचारियों की व्यक्तिगत सूचनाओं, कार्य अनुभव, कार्य निष्पादन, उपस्थिति एवं अवकाश, चयन एवं प्रोन्नति मापदण्ड आदि से सम्बन्धित आंकड़ों को कम्प्यूराइज्ड तरीके से स्टॉक के रुप में एक ही स्थान पर रखना, ताकि कभी भी आवश्यकता के समय इस सूची को देखकर निर्णय लिये जा सकें। HRIS की सीमाओं के अन्तर्गत सर्वप्रथम यह समस्या है कि इस पद्धति में मानव संसाधन एवं व्यय की अधिकता रहती है। साथ ही बडे पैमाने पर कम्प्यूटर कार्य में निपुण मानव संसाधनों की आवश्यकता रहती है। साथ ही HRIS हेतु आंकड़ों के अद्यतन (up-dating) की समस्या भी बनी रहती है।

14.10 शब्दावली

निर्णयन – मानव संसाधन प्रबन्ध (HRM) का एक मुख्य कार्य। संस्था की नीति को क्रियान्वित करने की प्रक्रिया में लिये जाने वाले निर्णय।

तुरन्त सन्दर्भ (Ready Reference) – तुरन्त आवश्यकता पड़ने पर सूचनाओं की उपलब्धता।

कार्य निष्पादन मूल्यांकन – कर्मचारी के द्वारा किये गये कार्य का मूल्यांकन करना।

सेविवर्गीय स्टॉक सूची – एक ऐसी सूची, जिसमें किसी संस्था में कार्यरत कर्मचारियों के बारे में विभिन्न सूचनाएं एक ही सूची में उपलब्ध हों।

कम्प्यूटराइज्ड HRIS – HRIS सम्बन्धी कार्य कम्प्यूटर के माध्यम से करना।

अद्यतन (Up-date) – किसी भी सूचना, जानकारी अथवा आंकड़ों को नवीनतम रुप में प्रस्तुत करना।

14.11 बोध प्रश्न

(अ) निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों को भरिये –

1. सूचना तकनीकी के वर्तमान युग में ....ही शक्ति है।
2. HRIS प्रत्येक ....से सम्बन्धित रिकार्ड एवं सूचनाओं को सुव्यवस्थित रखने की पद्धति है।
3. HRIS का प्रयोग जनशक्ति ....में भी किया जाता है।
4. HRIS में आंकड़ों के रखरखाव की लागत अपेक्षाकृत ....होती है।
5. HRIS के निरन्तर ....के अभाव में सूचनाओं में नवीनता नहीं रह पाती है।

(ब) निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

1. HRIS एवं MIS का आशय समान है।
2. HRIS की आवश्यकता कर्मचारियों के तुरन्त सन्दर्भ (Ready reference) हेतु होती है।
3. HRIS में कर्मचारियों की उपस्थिति का रिकार्ड रखने की आवश्यकता नहीं होती है।
4. HRIS से आंकड़ों का बेहतर विश्लेषण किया जा सकता है।
5. सेविवर्गीय स्टॉक के अन्तर्गत कार्य निष्पादन सम्बन्धी सूचनाएं गोपनीय भाषा में लिखी जानी चाहिए।

14.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)
1. सूचना
2. कर्मचारी
3. नियोजन
4. कम
5. अद्यतन (Updating)

(ब)
1. गलत
2. सही
3. गलत
4. सही
5. सही

14.13 स्वपरख प्रश्न

1. मानव संसाधन सूचना पद्धति से आप क्या समझते हैं? आधुनिक व्यवसायिक संगठनों में HRIS की क्या आवष्यकता हैं?
2. HRIS के विभिन्न प्रयोग एवं महत्व को समझाइए।
3. किसी औद्योगिकी संगठन में आप एक HRIS का आयोजन किसी प्रकार करेंगे?
4. HRIS के अन्तर्गत सेविवर्गीय स्टॉक पर एक टिप्पणी लिखिए।
5. मानव संसाधन सूचना पद्धति (HRIS) पर एक आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

14.14 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979।

इकाई 15 अनुशासन एवं परिवेदना (Discipline and Grievance)

इकाई की रुपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 अनुशासन : अर्थ एवं विशेषताएं
15.3 अनुशासन के उद्देश्य
15.4 अनुशासन के रुप
15.5 अच्छी अनुशासन प्रणाली के सिद्वान्त
15.6 अनुशासनहीनता : अर्थ एवं कारण
15.7 अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया
15.8 परिवेदना : अर्थ एवं विशेषताएं
15.9 परिवेदना के कारण
15.10 परिवेदना निवारण प्रक्रिया
15.11 सारांश
15.12 शब्दावली
15.13 बोध प्रश्न
15.14 बोध प्रश्नों के उत्तर
15.15 स्वपरख प्रश्न
15.16 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकेगें कि :

- अनुशासन का अर्थ, उद्देश्यों एवं रुपों को समझ सकें।
- एक अच्छी अनुशासन प्रणाली के सिद्वान्तों को बता सकें।
- अनुशासनहीनता के अर्थ एवं इसके विभिन्न कारणों को समझ सकें।
- अनुशासनहीनता कार्यवाही की प्रक्रिया को समझ सकें।
- परिवेदना का अर्थ एवं कारणों को बता सकें।
- परिवेदना निवारण की प्रक्रिया के विभिन्न चरणों के बारे में समझ सकें।

15.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत अनुशासन के अर्थ, उद्देश्य रुप और इसके विभिन्न सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। साथ ही अनुशासनहीनता के अर्थ एवं इसके विभिन्न कारणों पर भी प्रकाश डाला गया है। इसके अतिरिक्त अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया को भी समझाया गया है। इसी इकाई में परिवेदना के अर्थ एवं कारणों का भी वर्णन किया गया है तथा अन्त में परिवेदना निवारण प्रक्रिया को भी विस्तृत रुप से समझाया गया है।

15.2 अनुशासन : अर्थ एवं विशेषताएं

मानव संसाधन प्रबन्धन में 'अनुशासन' का महत्वपूर्ण स्थान है। किसी भी संगठन में व्यक्तियों को कार्य पर लगाने और उनके द्वारा कार्य को निष्पादित करने के लिए अनुशासन अत्यन्त आवश्यक

है। 'अनुशासन' के संदर्भ में मूल धारणा यह रहती है कि किसी भी संगठन के सदस्य व्यक्तिगत स्वार्थों पर नियन्त्रण रखें और मिलकर सामूहिक हित के लिए कार्य करें। किसी भी औद्योगिक संगठन अथवा संस्थान में अधिकतम उत्पादन की प्राप्ति के लिए अनुशासन को बनाये रखना एक आवश्यकता प्रतीत होती है। अनुशासन, एक संगठन में अच्छे मानवीय सम्बन्धों को बनाये रखने के लिए भी आवश्यक है।

सामान्य शब्दों में अनुशासन का अर्थ आज्ञा को मानना अथवा आज्ञा के अनुरुप व्यवहार करना होता है। अनुशासन उन समस्त नियमों, कानूनों एवं प्रक्रियाओं के अनुसार कार्य करना है, जो कि किसी संगठन को प्रभावी ढंग से चलाने के आवश्यक होते हैं। अनुशासन के अर्थ को निम्नलिखित परिभाषाओं के आधार पर स्पष्ट किया जा सकता है –

रिचर्ड कैल्हून के अनुसार – ''अनुशासन एक शक्ति है जो व्यक्तियों अथवा समूहों को उनके नियमों, प्रमापों या प्रणालियों के पालन के लिए प्रेरित करती है, जिसे संगठन के लिए आवश्यक समझा जाता है।''

ऑर्डवे टीड के अनुसार – ''अनुशासन एक सुनियोजित कार्य है जिसमें किसी संगठन के सदस्य, नियमों का पालन करते हुए सामूहिक रुप से मिल–जुल कर लक्ष्य प्राप्ति के प्रयत्न करते हैं।''

ज्यूसियस के अनुसार – ''अनुशासन, जिसे संज्ञा के रुप में विशेषण 'अच्छे' के साथ जोड़ा गया है, का तात्पर्य कर्मचारियों द्वारा स्वेच्छा से संगठन के नियमों और आदेशों के पालन करने से है। अनुशासनहीनता को ठीक करने अथवा उसके कारणो के पालन करने से है। अनुशासनहीनता को ठीक करने अथवा उसके कारणों में सुधार करने के लिए दण्ड आदि के प्रावधान को अनुशासन कहा जाता है।''

इस प्रकार, वह मानसिक प्रवृत्ति, जो व्यक्तियों को स्वेच्छा से विभिन्न नियमों का पालन और सहयोग करने को प्रेरित करती है, अनुशासन कहा जा सकता है। यह आज्ञापरायणता भीतर से जागृत होनी चाहिए, यद्यपि दबाव द्वारा भी अनुशासन मनवाया जा सकता है। किसी भी संस्था में अनुशासन प्रबन्धकों तथा कर्मचारियों के आपसी सहयोग पर ही स्थापित रह सकता है। नियम बनाना तथा उन्हें प्रभावी ढंग से लागू करना तभी सम्भव हो सकता है जब वे सद्भावना से बनाये गये हों, कर्मचारी की क्षमता में वृद्धि करने योग्य हों तथा कर्मचारी भी स्वयं में संगठित हों।

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर अनुशासन में निम्नलिखित विशेषताएं पाई जाती हैं –

1. **आत्म–नियन्त्रण** – अनुशासन, व्यक्तियों द्वारा स्वयं को नियन्त्रित करने का वह प्रयास है, जिसमें किसी संस्था को चलाने के लिए बनाये गये नियमों एवं प्रक्रियाओं के अनुरुप संस्था के उद्देश्यों को प्राप्त करने में वे अपनी सहभागिता करते हैं।
2. **ऋणात्मक दृष्टिकोण** – अनुशासन में व्यक्तियों को एक ओर कुछ कार्यों को करने के लिए प्रेरित किया जाता है जबकि दूसरी ओर उन्हें कुछ अन्य क्रियाकलापों को न करने के लिए भी कहा जाता है।
3. **दण्डात्मक दृष्टिकोण** – अनुशासन के अन्तर्गत, संस्था के कार्यों क्रियान्वयन हेतु बनाये गये नियमों के उल्लंधन करने पर अथवा नियमों को न मानने पर जुर्माना या दण्ड की भी व्यवस्था की जाती है। यह दण्ड पुरानी गलतियों के लिए नहीं लगाया जाता है, वरन् भविष्य में गलती की पुनरावृत्ति को रोकने के लिए लगाया जाता है।

15.3 अनुशासन के उद्देश्य

1. **कर्मचारियों को प्रेरित करना** – अनुशासन का मुख्य उद्‌देश्य किसी संस्था में काम करने वालों व्यक्तियों को वहाँ के निष्पादन प्रमापों के अनुरुप कार्य करने हेतु अभिप्रेरित करना है। कोई व्यक्ति किसी कार्य को न कर पाने के बाद ही अनुशासित होता है क्योंकि असफल व्यक्ति प्रायः किसी कार्य को सही ढंग से तब नहीं कर पाता है, जब वह नियमों के अनुरुप कार्य नहीं करता है अथवा नियमों का उल्लंधन करता है।
2. **विश्वास और सम्मान की भावना विकसित करना** – किसी संस्था में नियोक्ता और कर्मचारियों के मध्य अनुशासन का पालन उचित रुप से होने पर केवल कर्मचारी के व्यवहार में ही परिवर्तन नहीं होता है, अपितु उनके मध्य अच्छे सम्बन्धों के कारण भविष्य में होने वाली अनुशासहीनता में भी कमी आती है।
3. **कर्मचारी की योग्यता में सुधार करना** – अनुशासन के आधार पर कर्मचारी की योग्यता का मूल्यांकन किया जा सकता है। यदि उसकी योग्यता का मूल्यांकन कार्य निष्पादन के आधार पर असन्तोषजनक पाया जाता है तो उसे अनुशासित होने के लिए कहा जा सकता है।
4. **कर्मचारियों की कार्यक्षमता को बढाना** – अनुशासन का उद्‌देश्य कर्मचारियों की कार्यक्षमता में वृद्धि करना भी होता है। क्योंकि अनुशासित कर्मचारियों द्वारा निष्पादित कार्य तथा कार्य की गुणवत्ता सदैव अनुशासन के साथ काम न करने वाले कर्मचारियों की तुलना में बेहतर होती है।
5. **औद्योगिक शान्ति में सहायक** – अनुशासन के माध्यम से किसी संस्था में औद्योगिक शान्ति का वातावरण स्थापित किया जा सकता है, क्योंकि अनुशासित कर्मचारियों द्वारा किये गये कार्य का परिणाम सन्तोषप्रद तथा परिमाण में भी बेहतर होता है, जिससे किसी भी प्रकार का असन्तोष नहीं रहता है।
6. **सहनशीलता एवं मेलजोल की भावना विकसित करना** – अनुशासन का एक उद्‌देश्य कर्मचारियों में मेलजोल की भावना एवं सहनशीलता विकसित करना भी है। नियमों के अनुरुप कार्य करने पर स्वयं ही सभी कर्मचारी मिल जुलकर कार्य निष्पादित करते हैं।
7. **उत्तरदायित्व एवं निर्देशन कार्य सम्पन्न करना** – किसी संस्थान में कर्मचारियों के मध्य उत्तरदायित्व एवं निर्देशन की सुनिश्चितता निर्धारित करने हेतु अनुशासन अत्यन्त आवश्यक है। अनुशासन के अभाव में प्रबन्ध के इन कार्यों को क्रियान्वित करने में अवरोध उत्पन्न होता है।

अनुशासन के उपरोक्त वर्णित उद्‌देश्यों की पूर्ति के लिए किसी संगठन में मिलजुल कर कार्य करने की आवश्यकता होती है साथ ही एक प्रभावशाली कार्यक्रम के अनुरुप कर्मचारी और नियोक्ता वर्ग में आपसी सहयोग, विश्वास एवं कर्तव्यनिष्ठ होना जरुरी है। साथ ही नियमों के अनुरुप सभी कर्मचारियों का अपने कर्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना भी अत्यन्त आवश्यक है।

15.4 अनुशासन के रुप

अनुशासन के निम्न दो रुप होते हैं –

1. **धनात्मक अनुशासन** – धनात्मक अनुशासन के अन्तर्गत कर्मचारियों का व्यवहार इस प्रकार का होता है कि वे स्वाभाविक रुप से एवं स्व–इच्छा से संगठन के उद्‌देश्यों को प्राप्त करने के लिए जागरुक रहते हैं। इस प्रणाली में कर्मचारी, संगठन के नियमों के अनुसार स्वयं नियन्त्रित एवं अनुशासित रहते हैं। उन्हें किसी प्रकार के दण्ड का भय दिखाने की आवश्यकता नहीं, अपितु प्रशंसा,

पुरुस्कार, प्रोन्नति, सुविधाएं आदि अभिप्रेरक कर्मचारियों को स्वतः अनुशासित बनने में सहायक होते हैं।

धनात्मक अनुशासन किसी संगठन में प्रबन्धक या पर्यवेक्षक की कार्यकुशलता, संगठन के कुशल संचालन तथा कर्मचारियों द्वारा भली–भाँति स्वीकार किये जाने पर निर्भर करता है। इस प्रणाली के लिए निम्न बातों का होना आवश्यक है –

1. नियमावलियों का निर्माण उचित रुप से होना चाहिए।
2. नियमों की संख्या न्यूनतम, समझने योग्य तथा लागू किये जाने योग्य होनी चाहिए।
3. नियमों का ज्ञान सभी कर्मचारियों को होना चाहिए।
4. प्रत्येक कार्य के लिए कार्यभार समुचित होना चाहिए ताकि कर्मचारी अपने कार्य को पूर्ण लगन, अनुशासित होकर एवं निर्धारित समयावधि में कर सकें।
5. पर्यवेक्षकों को स्वयं अनुशासित होना चाहिए ताकि अन्य कर्मचारी उनका अनुसरण कर सकें।

2. **ऋणात्मक अनुशासन** – ऋणात्मक अनुशासन के अन्तर्गत कर्मचारियों को नियमों का उल्लंघन करने पर विभिन्न प्रकार के दण्ड, दबाब, धमकियाँ आदि भय दिखाकर नियन्त्रित किया जाता है। इस प्रणाली में प्रबन्ध वर्ग द्वारा कर्मचारियों के मन में डर या भय उत्पन्न किया जाता है, जिससे वे नियमों का उल्लंघन न करें तथा साथ ही अपने व्यवहार एवं कार्य प्रणाली में सुधार कर सकें। इस प्रणाली में यद्यपि कर्मचारी को दण्ड का भय दिखाया जाता है, लेकिन इसके पीछे कोई दुर्भावना अथवा प्रतिशोध की भावना नहीं होती है। इसका उद्देश्य कर्मचारियों को नियमों का पालन करते हुए उन्हें सही मार्ग पर लाने में सहायता करना होता है। ऋणात्मक अनुशासन प्रणाली के अन्तर्गत में पर्यवेक्षक का कार्य काफी महत्वपूर्ण होता है, उन्हें यह निरीक्षण करना होता है कि कर्मचारी कब और किसी प्रकार संस्था के नियमों के विपरीत कार्य कर रहा है और उसे अनुशासित होकर कार्य करने हेतु क्या–क्या प्रयास करने होंगे।

15.5 अच्छी अनुशासन प्रणाली के सिद्धान्त

1. **नियमों का न्यायसंगत होना** – अनुशासन के नियम सभी कर्मचारियों के सहयोग से एवं न्यायसंगत बनने चाहिए। नियमों से सम्बन्धित विभिन्न प्रमाप इतने अधिक एवं ऊँचे निर्धारित न हों कि उन्हें पूर्ण करना ही मुश्किल हो।

2. **कर्मचारियों को नियमों की जानकारी होना** – अच्छी अनुशासन प्रणाली विकसित करने हेतु कर्मचारियों को संस्था में बनाये गये नियमों का ज्ञान होना जरुरी है। उन्हें यह भी मालूम होना चाहिए कि प्रबन्ध वर्ग उनसे क्या अपेक्षाएं रखता है। कर्मचारियों को नियमों की एक–एक प्रति देकर तथा सम्बन्धित स्थानों पर अथवा नोटिस बोर्ड पर विभिन्न नियमों को प्रचारित भी किया जा सकता है।

3. **उत्तरदायित्व निर्धारित करना** – अनुशासन प्रणाली को श्रेष्ठतम रुप में लागू करने के लिए संस्था में कुछ उत्तरदायी व्यक्तियों को यह कार्य सौंपना चाहिए, ताकि वे अपने अधीन कार्यरत कर्मचारियों को मौखिक अथवा लिखित रुप में अनुशासन का पालन करने के सन्दर्भ में आदेशित कर सकें, साथ ही यदि अनुशासनहीनता के मामलों में कोई भी कार्यवाही करने से पूर्व उन्हें अपने वरिष्ठ अधिकारियों से सलाह–मशविरा कर लेना चाहिए।

4. **अनुशासनहीनता सिद्ध करने का कर्तव्य नियोक्ता का होना** – यदि किसी व्यक्ति द्वारा कोई अनुशासनहीनता की गई है तो इसे सिद्व करने का दायित्व और कर्तव्य नियोक्ता का होता है, क्योंकि जब तक किसी की अनुशासनहीनता सिद्व नहीं हो जाती है, वह व्यक्ति तब तक निर्दोष माना जाता है।

5. **समान अनुशासनहीनता पर समान दण्ड का प्रावधान होना** – संस्था में यह नीति होनी चाहिए कि एक समान अनुशासनहीनता अथवा किसी दोष या गलती के लिए समान दण्ड की व्यवस्था निश्चित हो। किसी भी व्यक्ति को लिंग, पद, श्रेणी या वरिष्ठता के आधार पर दण्डित नहीं किया जाना चाहिए। नियम को प्रभावी बनाने हेतु समान रुप से दोषी व्यक्तियों को एक ही प्रकार से दण्डित किया जाना चाहिए।

6. **प्रत्येक घटना का पूर्ण एवं पर्याप्त विवरण रखना** – अनुशासनहीनता के प्रकरण में सहभागी सभी व्यक्तियों, उनकी गतिविधियों, संस्था के तत्कालीन वातावरण, परिस्थिति आदि का सम्पूर्ण विवरण एवं जानकारी रिकॉर्ड कर लेनी चाहिए ताकि भविष्य में होने वाले वाद विवाद की स्थिति में इन रिकार्ड को उपलब्ध कर निर्णय लिये जा सकें।

7. **दोषी व्यक्ति को उच्च अधिकारी के सामने अपना पक्ष रखना** –यदि अनुशासनहीनता के लिए किसी कर्मचारी को दोषी बनाया गया है तो उस कर्मचारी को अपना पक्ष रखने का पूरा समय दिया जाना चाहिए, ताकि यदि कोई व्यक्ति निर्दोष है तो उसे अनावश्यक रुप से दण्डित न किया जा सके।

8. **अनुशासनात्मक कार्यवाही का गुप्त होना** – अनुशासन का पालन न करने, पर यदि किसी को दण्ड दिया जाता है तो ऐसे दण्ड की सूचना एवं प्रक्रिया गुप्त होनी चाहिए क्योंकि समूह मे किसी व्यक्ति विशेष को दण्डित करने पर वह उसके आत्म सम्मान को ठेस पहुँच सकती है और वह इसके लिए प्रतिकार कर सकता है।

9. **अनुशासनात्मक कार्यवाही का शीध्र होना** – अनुशासनात्मक के मामलों में कार्यवाही एवं दण्डित किये जाने से सम्बन्धित कार्यवाही शीध्र एवं तत्पर होनी चाहिए, लेकिन यह ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए कि शीध्रता में लिया गया निर्णय गलत न हो। कार्यवाही में इतना विलम्ब न हो कि दण्ड का प्रभाव ही समाप्त हो जाए।

10. **ऋणात्मक कार्यवाही को धनात्मक कार्यवाही में परिवर्तन करना** – किसी भी अनुशासनात्मक कार्यवाही करने के उपरान्त दण्डित किये गये कर्मचारी से पूर्ववत सामान्य व्यवहार किया जाना चाहिए, तभी अनुशासनात्मक कार्यवाही सफल हो सकती है। बीती बातें भुलाकर कर्मचारी धनात्मक रुप से अनुशासित होकर अभिप्रेरित होना चाहिए।

15.6 अनुशासनहीनता : अर्थ एवं कारण

अनुशासनहीनता का सामान्य अर्थ अनुशासन का पालन न करना है अर्थात स्थापित नियमों एवं प्रक्रियाओं का उल्लंघन करना अनुशासनहीनता कहलाता है। अनुशासनहीनता किसी भी संस्था में कार्य के दौरान, कार्य से अलग रहकर, संस्था के अन्दर अथवा संस्थान के बाहर कर्मचारियों द्वारा की जा सकती है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि संस्थान के प्रबन्धक इस बात को सुनिश्चित करें कि अनुशासहीनता क्या और किस कारण हुई है? अनुशासनहीनता को प्रायः दो वर्गों में बाँटा जा सकता है – साधारण और गम्भीर।

साधारण प्रकार की अनुशासनहीनता के अन्तर्गत उन कार्यों को सम्मिलित किया जाता है। जिनके कारण संस्था को न्यूनतम नुकसान होता है। इन कार्यों के लिए सम्बन्धित कर्मचारियों को लिखित अथवा मौखिक चेतावनी दी जाती है। यदि चेतावनी के पश्चात् भी गलती दोहराई जाती है, तो कठोर दण्ड का प्रावधान होता है। इस प्रकार के कार्यों में असावधानी, लापरवाही, अवांछित अनुपस्थिति, व्यर्थ समय नष्ट करना, सुरक्षात्मक नियमों का उल्लंघन करना, प्रमाप से कम कार्य करना, आवश्यकता से ज्यादा गलतियाँ करना इत्यादि कार्य सम्मिलित किये जाते हैं।

गम्भीर प्रकार की अनुशासनहीनता के अन्तर्गत कार्य के प्रति अत्यधिक लापरवाही करना, चोरी करना, संस्था की सम्पत्ति को दुर्भावना से क्षति पहुंचाना, संस्था के दस्तावेजों में जानबूझकर जालसाजी करना, अनैतिक, अश्लील एवं अभद्र व्यवहार करना आदि कार्य सम्मिलित किये जाते है। इस प्रकार के कार्यों को करने वाले दोषी कर्मचारियों को कार्य से निलम्बित या कार्यमुक्त कर दिया जाता है।

अनुशासनहीनता के कारण – अनुशासनहीनता के विभिन्न कारण निम्न प्रकार हो सकते हैं –

1. **अनुशासनहीनता संहिता का अभाव** – यदि किसी भी संस्था में विधिवत एवं नियमानुसार कार्य संबंधी नियम बना लिए गये हैं तभी इन्हें सभी कार्मचारियों पर लागू किया जा सकता है। यदि नियमावली का निर्माण नहीं हुआ है तो कर्मचारियों को स्पष्ट निर्देश नहीं दिये जा सकते है और न ही उन पर नियन्त्रण रखा जा सकता है जिस कारण अनुशासनहीनता बढ़ सकती है।
2. **प्रभावी नेतृत्व का अभाव** – यदि प्रबन्धवर्ग की नेतृत्व क्षमता ऐसी है कि वह श्रम संघ, कर्मचारी, सरकार, उपभोक्ता सभी वर्गों पर अपना सन्तुलन बना सके, तब संस्था को इसका लाभ मिल सकता है, लेकिन यदि प्रभावी नहीं है तो श्रमिकों को अनुशासित रख पाना असम्भव है।
3. **दोषपूर्ण प्रबन्ध व्यवस्था** – प्रबन्ध व्यवस्था दोषपूर्ण होने पर विभिन्न प्रकार की समस्याएं एवं अनुशासनहीनता उत्पन्न होती हैं। प्रबन्धकीय कुशलता के अभाव में विभिन्न साधनों का दुरप्रयोग होता है। प्रबन्धकीय व्यवस्था उचित न होने के कारण कर्मचारियों में असन्तोष की भावना जन्म लेती है। अधिकांश कर्मचारी मनमानी करने लगते हैं, परिणामस्वरुप अनुशासनहीनता की स्थिति आती है।
4. **व्यक्तिगत विकास के अवसरों में कमी** – यदि किसी कर्मचारी की प्रोन्नति के अवसर समाप्त हो जाते हैं अथवा उसके व्यक्तिगत विकास के रास्ते बंद हो जाते हैं तो ऐसा व्यक्ति उन्नति की आशा में ही रह जाता है, फलस्वरुप वह परेशान एवं असन्तुष्ट रहता है। ऐसी दशा में वह व्यक्ति अनुशासन के प्रति अधिक जागरुक नहीं रह पाता है।
5. **पक्षपात** – यदि प्रबन्ध वर्ग द्वारा विभिन्न कर्मचारियों के मध्य पक्षपात पूर्ण व्यवहार किया जाता है अर्थात कुछ कर्मचारियों को विशेष सुविधाएं, सुरक्षा दी जाती हैं और कुछ पर ध्यान नहीं दिया जाता है तो ऐसी स्थिति में कर्मचारियों में असन्तोष की भावना बढ़ती है, जिसका परिणाम अनुशासनहीनता के रुप में दिखाई देता है।
6. **बदले की भावना** – प्रबन्ध वर्ग कुछ कर्मचारियों के प्रति विरोधी धारणाएं बना लेते हैं और उन्हें आर्थिक एवं मानसिक रुप से प्रताड़ित करने का प्रयास करते हैं, अतः पीड़ित कर्मचारी अपने संगठन को अपनी समस्या बताते हैं। समस्या का निवारण न हो पाने तक ऐसे कर्मचारी संस्था के प्रति निष्ठावान नहीं रह पाते हैं और वे अनुशासहीनता का व्यवहार करने लगते हैं।
7. **कर्मचारियों पर अनुचित दबाव** – प्रबन्ध वर्ग को अपने कर्मचारियों पर कार्य के दौरान अत्यधिक दबाब और बन्धन नहीं रखना चाहिए। अनुचित दबाव बनाने पर व्यक्ति कभी–कभी अनुशासनहीन हो जाता है, क्योंकि व्यक्ति स्वतन्त्रता में बेहतर कार्य कर पाता है और वह यह नहीं चाहता है कि उस पर आवश्यकता से अधिक किसी का नियन्त्रण हो।
8. **'फूट डालो और राज करो' की नीति** – कर्मचारियों के मध्य यह नीति प्रायः अनुशासनहीनता को बढावा देती है। चूंकि कुछ संस्थाओं में कर्मचारी आपस में एक–दूसरे की शिकायत

करने अथवा एक–दूसरे को नीचा दिखाने के लिए कार्य करते हैं। इससे उत्पादन की हानि होती है।

9. **अन्य कारण** – उपरोक्त कारणों के अतिरिक्त भी कई कारणों से अनुशासनहीनता उत्पन्न होती है – जैसे –कर्मचारियों का कम शिक्षित होना, कर्मचारियों की मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति, रुचि के अनुरुप कार्य का न मिलना, कर्मचारी का उच्छृंखल स्वभाव, मद्यपान की आदत, लापरवाही इत्यादि।

15.7 अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया

सामान्यतः अनुशासनहीनता करने पर किसी निश्चित प्रक्रिया के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही करने की व्यवस्था नहीं है। लेकिन विभिन्न औद्योगिक संगठनों अथवा संस्थाओं में निम्नलिखित कदमों के अनुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है –

1. **दायित्व का निर्धारण** – अनुशासनात्मक कार्यवाही में सर्वप्रथम यह निर्धारित किया जाता है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का दायित्व किसका होगा? कर्मचारी के ऊपर पद वाला व्यक्ति या मानव संसाधन विभाग? यदि पयवेक्षक अथवा तुरन्त ऊपर पद वाला व्यक्ति को कार्यवाही करने का दायित्व दिया जाता है, तो वह व्यक्ति दोषी व्यक्ति के बारे में विभाग की अपेक्षा अधिक बेहतर तरीके से जानता है। यदि विभाग को यह दायित्व दिया जाता है तो इसमें समय ज्यादा लगता है और साथ ही इस बात की सम्भावना भी रहती है कि अपने अधीनस्थों पर उतना नियन्त्रण नहीं रख पायेंगे।

2. **कार्य अपेक्षाएं निर्धारित होना** – यह पूर्व निश्चित होना चाहिए कि कर्मचारियों द्वारा संस्था में किस प्रकार का कार्य तथा व्यवहार अपेक्षित होगा। यह व्यवहार, कार्य और कार्य प्रमाप संस्था के उद्देश्यों के अनुसार होने चाहिए तथा संस्था के उद्देश्यों के अनुरुप इन अपेक्षाओं में अन्तर होना चाहिए। संस्थाए इसके लिए अपने कर्मचारियों को लिखित रुप में निर्देश पुस्तिकांये भी वितरित कर सकती हैं।

3. **नीतियों एवं नियमों के बारे में कर्मचारियों को सूचित करना** – कर्मचारियों के कार्य निष्पादन के स्तर को नापने के लिए कर्मचारियों के व्यवहार, कार्य–सीमा, कार्य स्तर आदि के बारे में उन्हें स्पष्ट एवं पूर्व में ही भली–भांति सूचित कर दिया जाना चाहिए, यह सूचनाएं कर्मचारियों को लिखित रुप में अथवा संस्थान के सूचना पट्ट या पुस्तिकाओं के रुप में प्रदर्शित की जा सकती हैं।

4. **कार्य निष्पादन सम्बन्धी सूचनाओं का संग्रह करना** – किसी नियम का उल्लंघन करने पर अनुशासहीनता मानी जाती है। ऐसी दशा में अनुशासनात्मक कार्यवाही करते समय सम्बन्धित कर्मचारी के द्वारा किये गये कार्य से सम्बन्धित सभी परिस्थितियों एवं सूचनाओं को एकत्र किया जाता है। तत्पश्चात् ही उनका विवेचना करने के उपरान्त आगे की कार्यवाही की जाती है।

5. **कर्मचारी को उसके दोषों के बारे में सूचित करना** – यदि किसी कर्मचारी को प्रथम दृष्टया अनुशासनहीनता का दोषी पाया जाता है तो ऐसे व्यक्ति को एक पत्र, (जिसे 'कारण बताओ नोटिस' कहा जाता है) दिया जाता है, तत्पश्चात उसे उस पत्र के उत्तर में, एक निश्चित समयावधि में अपना पक्ष रखने का अवसर दिया जाता है।

6. **कर्मचारी के प्रत्युत्तर पर कार्यवाही** – दोषी कर्मचारी द्वारा अपना पक्ष रखते हुए जो उत्तर दिया जाता है, उस पर प्रबन्ध वर्ग द्वारा उचित निर्णय लिया जाता है। दोषी व्यक्ति द्वारा अपना अपराध कबूल करने पर उस पर तद्नुसार आवश्यक कार्यवाही या उचित दण्ड देकर भविष्य में ऐसा न करने को कहा जा सकता है। यदि प्रबन्धकवर्ग दोषी कर्मचारी के उत्तर से सन्तुष्ट हो जाता है तो

उस पर लगाये गये आरोपों से उसे बरी कर दिया जाता है। यदि प्रबन्ध वर्ग दोषी कर्मचारी के उत्तर से सन्तुष्ट नहीं होता तो मामले को आगे बढ़ाया जा सकता है और दोषी व्यक्ति को दण्डित किया जा सकता है।

7. **दण्ड निर्धारित करना** – यदि दोषी कर्मचारी पर असन्तोष जनक कार्य निष्पादन सिद्ध हो जाता है तो प्रबन्ध वर्ग सम्बन्धित कर्मचारी के लिए दण्ड की संस्तुति कर देता है ऐसी स्थिति में उसे अनुशासनहीनता के लिए दण्डित तथा भविष्य में ऐसी पुनरावृत्ति होने पर अधिक दण्ड दिये जाने का प्रावधान किया जा सकता है।

8. **आदेश भेजना** – दण्ड निर्धारित होने के पश्चात् सम्बन्धित कर्मचारी को दण्ड सम्बन्धी आदेश भिजवाया जाता है जिसमें दिये गये दण्ड का उल्लेख होता है। यदि दण्ड में जुर्माना है तो उसे चुकाने के लिए एक निर्धारित अवधि भी लिखी जाती है।

9. **कार्यवाही को जांचते रहना** – अनुशासनात्मक कार्यवाही का अन्तिम चरण दण्डात्मक कार्यवाही को जांचते रहना होता है अर्थात दण्ड दिये जाने के उपरान्त कर्मचारी के व्यवहार एवं कार्य निष्पादन में सुधार हुआ है या नहीं? अनुशासनात्मक कार्यवाही के फलस्वरुप कर्मचारी संगठन की प्रतिक्रिया को भी ध्यान में रखना चाहिए।

अनुशासनात्मक कार्यवाही के विभिन्न ढंग –

1. साधारण मौखिक चेतावनी ।
2. लिखित चेतावनी तथा सेवा–पुस्तिका में प्रतिकूल प्रविष्टि।
3. वेतन वृद्धि रोकना अथवा मिलने वाले लाभों में कमी करना ।
4. जुर्माना करना ।
5. जबरी छुट्टी करना ।
6. पदच्युत करना अथवा पद –अवनति करना।
7. सेवा निवृत्ति अथवा निलम्बन करना।

15.8 परिवेदनाः अर्थ एवं विशेषताएं

अर्थ – किसी संगठन में कार्यरत कर्मचारियों द्वारा व्यक्त किया गया असन्तोष, परिवेदना कहलाता है। प्रायः सभी संगठनों में कर्मचारियों में परस्पर मतभेद, लड़ाई झगड़े तथा असन्तोष पाया जाता है। कभी नियोक्ता अपने कर्मचारियों से तथा कभी अपने नियोक्ताओं से असन्तुष्ट रहते हैं, फलस्वरुप असन्तुष्ट कर्मचारी दूसरे पक्ष के प्रति शिकायत करने को विवश हो जाते हैं। इस प्रकार असन्तोष की अभिव्यक्ति को शिकायत कहा जाता है। यह मौखिक अथवा लिखित हो सकती है।

परिभाषाएं :

1. **पीगर्स एवं मायर्स के अनुसार** – ''परिवेदना औपचारिक रुप से लिखित असन्तोष है जो संगठन के क्रियाकलाप द्वारा उत्पन्न होता है। शिकायत प्रस्तुत करने वाला व्यक्ति संगठन के क्रियाकलाप को अनुचित, अन्यायपूर्ण, गलत एवं असमान समझता है।''
2. **माइकेल ज्यूशियस के अनुसार** – ''परिवेदना ऐसा कृत्य है जिससे व्यक्त अथवा अव्यक्त, उचित अथवा अनुचित असन्तोष प्रकट होता है, जिसका सम्बन्ध कम्पनी से है और जिसके बारे में कर्मचारी सोचता है, विश्वास करता है या अनुभव करता है कि अमुक कार्य अनुचित है, न्यायसंगत नहीं है और समान नहीं है।''
3. **कैल्हून के अनुसार** – ''परिवेदना कोई भी ऐसी स्थिति है जिसे कर्मचारी गलत सोचता या समझता है तथा उससे कर्मचारी की विचारधारा भंग होती है।''

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अधिकारों की मांग के लिए प्रस्तुत शिकायत अथवा सामूहिक प्रदर्शन को परिवेदना कहा जाता है। सभी ऐसी लिखित शिकायतें, जो मजदूरी भुगतान, अवकाश, पदोन्नति, कार्य की दशाएं, मशीन आदि से सम्बन्धित हो, परिवेदना के अन्तर्गत आती हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि असन्तोष, कर्मचारी की अनुभूति है, जिसे व्यक्त किया जा सकता है और व्यक्त नहीं भी किया जा सकता है। शिकायत, असन्तोष की अभिव्यक्ति है। यह मौखिक अथवा लिखित हो सकती है। इस प्रकार जब किसी व्यक्ति के हितों एवं अधिकारों का अतिक्रमण किया जाता है तो वह असन्तोष अनुभव करता है और उस असन्तोष को व्यक्त करता है और तत्पश्चात् वह उचित रुप से परिवेदना करता है।

विशेषताएं :

1. परिवेदना, किसी संस्था की नीतियों, कार्यों एवं कार्यविधियों से सम्बन्धित है।
2. यह स्पष्ट, लिखित अथवा गर्भित हो सकती है।
3. कर्मचारी यह महसूस करता है कि उसके साथ अन्याय हो रहा है।
4. यह न्यायिक है और क्रोध, गुस्सा जैसी भावनाओं पर आधारित नहीं होता है।
5. परिवेदना व्यक्तिगत प्रवृत्ति की होती है, न कि सामूहिक।

15.9 परिवेदना के कारण

परिवेदना, किसी व्यक्ति विशेष के असन्तोष का परिणाम होता है। उसके असन्तोष का कोई एक या कुछ निश्चित कारण नहीं हो सकता है। यह व्यक्ति और व्यक्ति के मध्य तथा संस्था एवं संस्था के मध्य अलग–अलग स्वरुप में हो सकती है। अध्ययन की सुविधा के लिए कर्मचारियों की परिवेदना को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. **मजदूरी सम्बन्धी परिवेदना**
   (i) व्यक्तिगत मजदूरी निर्धारण संबंधी शिकायत
   (ii) कार्य–वर्गीकरण संबंधी शिकायत
   (iii) अभिप्रेरण प्रणाली संबंधी शिकायत
   (iv) मजदूरी गणना में त्रुटि संबंधी शिकायत
   (v) मजदूरी भुगतान व्यवस्था संबंधी शिकायत
2. **सामान्य कार्य दशाओं से सम्बन्धित परिवेदना**
   (i) अस्वास्थ्यप्रद तथा असुरक्षित कार्य दशाओं से सम्बन्धित
   (ii) अपर्याप्त सामान्य सुविधाओं से सम्बन्धित
   (iii) कच्चे माल, मशीन और यन्त्रों की अनुपलब्धता अथवा प्रतीक्षा
   (iv) योग्यता अनुसार कार्य की अनुपलब्धता
3. **वरिष्ठता, पदोन्नति आदि से सम्बन्धित परिवेदना**
   (i) वरिष्ठता क्रम में परिवर्तन
   (ii) वरिष्ठता गणना में त्रुटि से सम्बन्धित
   (iii) जबरी छुट्टी या अनुशासनात्मक कार्यवाही के विरुद्ध शिकायत
   (iv) स्थानान्तरण सम्बन्धी
4. **पर्यवेक्षण सम्बन्धी शिकायत**

(i) पर्यवेक्षक की शिकायत

(ii) पर्यवेक्षकीय ढंग की शिकायत

(iii) नियम पालन सम्बन्धी

(iv) अनुशासन के विरुद्ध शिकायत

5. **सामूहिक सौदेबाजी से सम्बन्धित**

(i)कम्पनी द्वारा नियम उल्लंघन सम्बन्धी

(ii) अनुबन्ध के निर्वचन सम्बन्धी

(iii) परिवेदना निवारण में असमर्थता सम्बन्धी शिकायत

परिवदेना कर्मचारी की ओर से नहीं, अपितु कभी–कभी नियोक्ता अथवा प्रबन्धक वर्ग द्वारा भी की जा सकती है। प्रबन्ध वर्ग की परिवेदना को निम्न रुप में वर्गीकृत किया जा सकता है –

1. **व्यक्ति विशेष से असन्तोष से सम्बन्धित**

(i) **अनुशासन सम्बन्धी** – जैसे नियमों तथा पर्यवेक्षक के आदेशों की अवहेलना करना, लगातार काम पर न आना इत्यादि।

(ii) **कार्य सम्बन्धी शिकायत** – जैसे कार्य को धीमी गति से करना, कार्य का निम्न स्तर इत्यादि।

2. **सामूहिक सौदेबाजी :**

(i) रोजगार सम्बन्धी अनुबन्ध या संविदा का पालन नहीं करना।

(ii) संघ द्वारा परिवेदना प्रस्तुत करने से पूर्व तथ्यों की जानकारी प्राप्त नहीं करना।

(iii) संघ द्वारा परिवेदना पर अधिक समय लगाना और अन्य आवश्यक कार्य नहीं करना।

(iv) संघ द्वारा श्रमिकों पर उचित कार्यवाही नहीं करना, जो प्रबन्धकों एवं संघ द्वारा दोषी सिद्ध हुए हैं।

3. **अन्य कारण**

(i) श्रम संगठनों की सदस्यता के लिए नये कर्मचारियों को प्रबन्ध के विरुद्ध भड़काना।

(ii) संघ के नियमों द्वारा प्रबन्धकों के कार्य में बाधा पहुँचाना।

(iii) संघ द्वारा झूठे आरोप लगाकर प्रबन्धकों को बदनाम करना।

उपरोक्त से स्पष्ट है कि परिवेदना विभिन्न कारणों से हो सकती है। इस कारण परिवेदना की प्रकृति भी विभिन्न प्रकार की हो सकती है। परिवेदनाओं के परिणामस्वरुप कर्मचारी में सदैव निराशा, असन्तुष्टि तथा वैमनस्य उत्पन्न होता है जिस कारण उनकी कार्य में रुचि कम हो जाती है, उनका नैतिक स्तर भी घटता है, कार्यक्षमता घटती है तथा अंततः उत्पादन में कमी होती है।

15.10 परिवेदना निवारण प्रक्रिया (Grievance Redressal Procedure)

चूंकि परिवेदना उत्पन्न के विभिन्न कारण होते हैं। अतः जब तक प्रत्येक परिवेदना की पूर्ण रुप से जांच–पड़ताल नहीं कर ली जाती है, तब तक किसी भी परिवाद का निवारण कर पाना कठिन होता है। अतः सेवीवर्गीय प्रशासक का कर्तव्य हो जाता है कि वह परिवेदना के कारणों की बारीकी से खोज करे तथा प्राप्त एवं सुलभ सूत्रों के द्वारा जांच एवं विश्लेषण करके निवारण प्रक्रिया का प्रयोग करे।

प्रत्येक परिवेदना का प्रारम्भ छोटी बातों से होता है अतः प्रारम्भ में ही उस पर नियन्त्रण कर लिया जाए तो प्रबन्ध वर्ग के लिए यह अच्छा माना जाता है, लेकिन विवाद बढ़ जाने पर उच्च प्रबन्ध वर्ग के लिए परिवेदना एक समस्या बन जाती है, सामान्यतः परिवेदना निवारण की आवश्यकता निम्न कारणों से पड़ती है –

1. अधिकांश परिवेदनाएं कर्मचारियों को कठिनाई में डाल देती हैं जिससे उनका नैतिक बल, उत्पादन तथा सहयोग कम हो जाता है। कुछ परिवेदनाओं में भड़काने वाली स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है अतः ऐसी परिवेदनाओं का तत्काल निवारण, आवश्यक हो जाता है।
2. परिवेदना निवारण प्रक्रिया स्वयं प्रशासन के ऊपर एक अंकुश का कार्य करती है और प्रबन्धकों को मनमानी करने से रोकती है।
3. परिवेदना निवारण प्रक्रिया कर्मचारियों में व्याप्त निराशा और असन्तोष कम करने में सहायक होती है।
4. परिवेदना निवारण प्रक्रिया प्रायः श्रमिकों की समस्याओं पर विचार करने का अवसर प्रदान करती है।

परिवेदना निवारण क्रियाविधि की सफलता के लिए निम्न तत्वों पर ध्यान दिया जाना आवश्यक है –

1. परिवेदना निवारण क्रियाविधि सरल एवं शीध्र निर्णय देने वाली होनी चाहिए। अतः इसमें कम से कम औपचारिकताएं हों तथा समाधान हेतु एक निश्चित समय होना चाहिए।
2. परिवेदना निवारण क्रियाविधि को लागू करते समय श्रम संघ एवं श्रमिकों के प्रतिनिधियों का सहयोग लिया जाना चाहिए।
3. प्रत्येक सम्बन्धित व्यक्ति को अपनी समस्या प्रस्तुत करने एवं उस पर पर्याप्त विचार विमर्श करने हेतु समय मिलना चाहिए।
4. परिवेदना निवारण प्रणाली से कर्मचारी पूर्ण रुप से अवगत होने चाहिए।
5. निर्णयों को नियम एवं सिद्धान्तों के अनुरुप एवं निष्पक्ष तरीके से लागू किया जाना चाहिए।
6. परिवेदना निवारण समिति में अधिक सदस्य नहीं होने चाहिए।

राष्ट्रीय श्रम आयोग ने परिवेदना के शीध्र समाधान के लिए एक **आदर्श परिवेदना निवारण** प्रक्रिया का सुझाव दिया है। इसमें निम्नलिखित पांच कदमों का उल्लेख है –

1. एक असन्तुष्ट कर्मचारी सर्वप्रथम अपनी परिवेदना निकटस्थ सक्षम अधिकारी को मौखिक रुप से प्रस्तुत करेगा। वह अधिकारी परिवेदना सुनने के उपरान्त 48 घण्टों में अपना प्रत्युत्तर देगा।
2. यदि असन्तुष्ट कर्मचारी को 48 घण्टों के अन्दर उत्तर प्राप्त नहीं होता है या वह उत्तर से सन्तुष्ट नहीं है तो वह स्वयं या संघ के प्रतिनिधि के माध्यम से विभागाध्यक्ष के पास परिवेदना प्रस्तुत करेगा। विभागाध्यक्ष को परिवेदना पत्र मिलने के 3 दिन के अन्दर अपना उत्तर (निर्णय) देना चाहिए।
3. यदि विभागाध्यक्ष के उत्तर से कर्मचारी सन्तुष्ट नहीं है अथवा निर्धारित अवधि में उत्तर प्राप्त नहीं होता है तो वह अपनी परिवेदना के लिए यह प्रार्थना कर सकता है कि उसकी परिवेदना को परिवेदना समिति के पास भेज दिया जाए। परिवेदना समिति को 7 दिनों के अन्दर अपनी सिफारशें देनी होंगी तथा प्रबन्ध को अपनी रिपोर्ट भी देनी होगी। प्रबन्ध को समिति की सिफारिशें को असन्तुष्ट कर्मचारी को 3 दिनों के अन्दर प्रेषित करना होगा।

4. यदि कर्मचारी परिवेदना समिति के निर्णय से भी असन्तुष्ट है या समिति का निर्णय उसे प्राप्त नहीं होता है, तो वह निर्णय के पुनरावलोकन के लिए प्रबन्ध से अपील कर सकता है। प्रबन्ध इस अपील पर विचार करने हेतु एक सप्ताह का समय ले सकता है और तब उसे असन्तुष्ट कर्मचारी को संशोधित निर्णय से अवगत कराना होगा।
5. यदि प्रबन्ध के निर्णय से कर्मचारी फिर भी सन्तुष्ट नहीं है तो प्रबन्ध द्वारा लिये गये संशोधित निर्णय के एक सप्ताह के अन्दर परिवेदना ऐच्छिक पंच निर्णय (Voluntary Arbitration) के लिए भेजी जायेगी। यह पंच निर्णय अन्तिम माना जाता है और प्रबन्ध तथा संघ दोनों को निर्णय मानना होता है।

प्रभावी परिवेदना प्रक्रिया के आवश्यक तत्व –

एक प्रभावी परिवेदना प्रक्रिया में निम्न तत्वों को सम्मिलित किया जाना चाहिए ताकि परिवेदना निवारण शीध्र, विधिसम्मत तथा सभी पक्षों को सन्तुष्ट कर सके –

1. **कानून या विधि सम्मत** – परिवेदना निवारण प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए जिसमें सम्बन्धित कानून का उल्लंघन न हो। यदि सम्भव हो तो इस प्रक्रिया में कानूनी मशीनरी को भी शामिल किया जा सकता है।
2. **स्वीकार्यता** – परिवेदना निवारण प्रक्रिया सभी कर्मचारियों, संघों तथा प्रबन्ध वर्ग को स्वीकार्य होनी चाहिए। प्रक्रिया में पारदर्शिता, कर्मचारियों को न्याय तथा प्रबन्ध वर्ग द्वारा पर्याप्त विचार विमर्श किया जाना चाहिए।
3. **शीघ्रता** – प्रक्रिया का उद्देश्य, परिवेदना का यथासम्भव निम्न स्तर पर ही अथवा शीध्र निवारण होना चाहिए। साथ ही निर्धारित समय का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए।
4. **सरलता** – प्रक्रिया सभी लोगों के समझने योग्य तथा लागू करने में सरल होनी चाहिए। यदि कम से कम चरणों में ही परिवदेना निवारण किया जा सके तो यह प्रक्रिया को सरल बना सकता है।
5. **प्रशिक्षण** – परिवेदना प्रक्रिया को प्रभावी बनाने हेतु परिवेदना निवारण प्रक्रिया में संलग्न पर्यवेक्षकों, अधिकारियों को विशेष प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए, ताकि उनकी कार्यक्षमता को बढाया जा सके।
6. **पुनरावलोकन** – परिवेदना निवारण से सम्बन्धित निर्णय का पुनरावलोकन विभिन्न समायान्तराल पर किया जाना चाहिए, ताकि भविष्य में परिवेदना निवारण प्रणाली को बेहतर एवं प्रभावी बनाया जा सके।

15.11 सारांश

अनुशासन से अभिप्राय किसी संगठन में कर्मचारियों को विभिन्न नियम, कानून, आज्ञा तथा प्रक्रियाओं के अनुरुप कार्य करने से है। अनुशासन का उद्देश्य कर्मचारियों की योग्यता, कार्यक्षमता में वृद्धि करना है साथ ही उन्हें अभिप्रेरित करना, उनके अन्दर विश्वास, सम्मान सहनशीलता तथा मिल–जुलकर कार्य करने की भावना विकसित करना भी है। अनुशासन के धनात्मक और ऋणात्मक दो रुप होते हैं। धनात्मक अनुशासन में कर्मचारी स्वतः व स्वाभाविक रुप से अनुशासित होते हैं उन्हें दण्ड का भय दिखाने की आवश्यकता नहीं होती है जबकि ऋणात्मक अनुशासन में नियमों का उल्लंघन करने पर उन्हें दण्डित किया जाता है। एक अच्छी अनुशासन प्रणाली न्याय संगत एवं

उत्तरदायित्व का निर्धारण करने वाली होनी चाहिए। साथ ही सभी नियमों को सभी कर्मचारियों की जानकारी में होना चाहिए। अनुशासनात्मक कार्यवाही गुप्त तथा शीघ्र होनी चाहिए।

अनुशासनहीनता का अर्थ अनुशासन के नियमों का पालन न करना है। इसके विभिन्न कारण हो सकते है जैसे – प्रभावी नेतृत्व का अभाव, दोषपूर्ण प्रबन्ध व्यवस्था, पक्षपात, कर्मचारियों की मनौवैज्ञानिक प्रवृत्ति, लापरवाही इत्यादि। अनुशासनहीनता करने पर अनुशासनात्मक कार्यवाही की जानी आवश्यक है। यद्यपि कार्यवाही की कोई निश्चित प्रक्रिया नहीं है, फिर भी यह आवश्यक है कि एक ऐसी प्रक्रिया निर्धारित कर ली जाए, जिसमें अनुशासनात्मक कार्यवाही करने का दायित्व निर्धारित हो, साथ ही कार्य की अपेक्षाएं एवं दण्ड की व्यवस्था का प्रावधान भी हो। अनुशासनात्मक कार्यवाही में मौखिक एवं लिखित चेतावनी जुर्माना, पदच्युत करना, निलम्बन करना आदि सम्मिलित है। परिवेदना का अर्थ कर्मचारियों द्वारा असन्तोष को व्यक्त करने का मौखिक या लिखित माध्यम है। परिवेदना, व्यक्ति के असन्तोष का परिणाम है और इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं जैसे – मजदूरी से सम्बन्धित, कार्य की दशाओं से सम्बन्धित, पदोन्नति के मामलों से सम्बन्धित, पर्यवेक्षकों से सम्बन्धित इत्यादि।

परिवेदना के निवारण के लिए परिवेदना निवारण प्रक्रिया को अपनाया जाता है। जिसमें एक निश्चित प्रक्रिया के अन्तर्गत कर्मचारी अपनी शिकायत तत्सम्बन्धित पर्यवेक्षक, विभागाध्यक्ष एवं परिवेदना समिति को प्रेषित कर सकता है। परिवेदना निवारण प्रक्रिया विधि सम्मत, सभी पक्षों को स्वीकार्य, सरल, एवं शीघ्र निर्णय वाली होनी चाहिए।

15.12 शब्दावली

आत्म–नियन्त्रण (Self-Control) – स्वयं को नियन्त्रित करने का प्रयास।

ऋणात्मक दृष्टिकोण (Negative Approach) - किसी कार्य को न करने या न कर पाने की भावना वाला पक्ष।

फूट डालो और राज करो (Devide And Rule) - अंग्रेजों के द्वारा बनाई गई नीति, जिसमें दो पक्षों में मतभेद उत्पन्न करवा कर उन्हें अलग–अलग कर दिया जाता है और इस तरह दोनों पक्षों को कमजोर करके उन पर अपेक्षाकृत अधिक अधिकार का प्रयोग तथा नियन्त्रण किया जा सकता है।

गर्भित (Implied) – जो बातें न तो स्पष्ट होती हैं और न लिखित रुप में, लेकिन व्यक्ति के हाव–भाव से उनका पता चल जाता है।

सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining) – कर्मचारियों/श्रमिकों तथा प्रबन्ध वर्ग के मध्य किसी मामले पर सामूहिक रुप से वार्तालाप करना।

अनुबन्ध का निर्वचन (Interpretation of Contract) – दो पक्षों के मध्य स्थापित संविदा या अनुबन्ध की शर्तों की व्याख्या करना।

पंच निर्णय (Arbitation) – मध्यस्थता करके सामूहिक रुप से निर्णय देने वाले पांच सदस्यों का समूह । इस समूह के निर्णय को सम्बन्धित पक्ष मानने को बाध्य होते हैं।

15.13 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

i. अनुशासन, व्यक्तियों द्वारा स्वयं को नियन्त्रित करने का प्रयास है।

ii. विभिन्न प्रकार के दबाव, धमकियाँ या दण्ड, धनात्मक अनुशासन के रुप हैं।

iii. अनुशासनहीनता का एक कारण नियोक्ता द्वारा पक्षपात करना भी है।

iv. परिवेदना का प्रारम्भ कर्मचारी के असन्तोष से होता है।

v. परिवेदना निवारण प्रक्रिया के चार चरण हैं।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

i. अनुशासन के मुख्य रुप से ....रुप होते हैं।

ii. ....अनुशासन में कर्मचारी स्वयं नियन्त्रित होते हैं।

iii. अनुशासन का पालन न करना ....कहलाता है।

iv. परिवेदना कर्मचारी के ....का परिणाम है।

v. परिवेदना निवारण प्रक्रिया के ....चरण होते हैं।

15.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. i. सत्य ii. असत्य iii. सत्य iv. सत्य v. असत्य

2. i. दो ii. धनात्मक iii. अनुशासनहीनता iv. असन्तोष v. पाँच

15.15 स्वपरख प्रश्न

1. 'अनुशासन' शब्द को परिभाषित कीजिए। अनुशासन की विशेषताएं तथा मुख्य उद्देश्यों की व्याख्या कीजिए।
2. अनुशासनहीनता के मुख्य कारणों की विवेचना कीजिए।
3. अनुशासनात्मक कार्यवाही की प्रक्रिया की व्याख्या कीजिए।
4. 'परिवेदना' को परिभाषित कीजिए एवं परिवेदना के विभिन्न कारणों का विश्लेषण कीजिए।
5. परिवेदना निवारण प्रक्रिया के विभिन्न चरणों का विवेचन कीजिए।

15.16 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979।

इकाई 16 श्रम संघ और श्रम आन्दोलन (Trade Union and Labour Movement)

इकाई की रुपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 श्रम–संघ का अर्थ एवं परिभाषाएं
16.3 श्रम–संघ की विशेषताएं
16.4 श्रम–संघ के उद्देश्य
16.5 श्रम–संघ के कार्य
16.6 श्रम–संघ के नियमन के सिद्वान्त
16.7 श्रम–संघों के प्रकार
16.8 श्रम–संघ का महत्व
16.9 भारत में श्रम आन्दोलन : अर्थ एवं विकास
16.10 भारतीय श्रम आन्दोलन की कमजोरी एवं समस्याएं
16.11 श्रम आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने के उपाय
16.12 सारांश
16.13 शब्दावली
16.14 बोध विकल्पीय प्रश्न
16.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
16.16 स्वपरख प्रश्न
16.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो सकें कि :

- श्रम संघ के अर्थ और उसकी विशेषताओं को समझ सकें।
- श्रम संघ के उद्देश्यों एवं कार्यों को समझ सकें।
- श्रम संघों के नियमन के सिद्वान्तों का विश्लेषण कर सकें।
- श्रम संघों के विभिन्न प्रकार एवं उसके महत्व को समझ सकें।
- भारत में श्रम आन्दोलन के इतिहास को समझ सकें।
- भारत में श्रम आन्दोलन की विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण कर पायेंगे, तथा भारत में श्रम आन्दोलन को सुदृढ़ करने हेतु कुछ सुझावों के बारे में जान पायें।

16.1 प्रस्तावना

श्रम–संघ सामान्यतः किसी संस्था या उद्योग में श्रमिकों का एक ऐच्छिक एवं दीर्घकालीन संगठन है जिसे वे अपने कार्यशील जीवन एवं आर्थिक स्थिति को सुधारने अथवा ठीक बनाये रखने के लिए बनाते हैं। श्रम संघ के निर्माण से सदस्यों के हितों की रक्षा होती है, साथ ही इसके माध्यम से सौदेबाजी करने की क्षमता में भी वृद्धि होती है। श्रमिक वर्ग एवं नियोक्ता वर्ग के मध्य सम्बन्धों में सुधार भी दिखाई देता है।

इस इकाई में आप श्रम संघ का अर्थ एवं विशेषताओं का अध्ययन कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त श्रम संघ के उद्देश्य, कार्य, सिद्वान्त, प्रकार एवं महत्व का भी विस्तारपूर्वक अध्ययन कर सकेंगे। इसी इकाई में श्रम आन्दोलन के विषय में भी जानकारी दी गई है। श्रम आन्दोलन औद्योगीकरण की देन है तथा श्रमिकों के असन्तोष का प्रतीक है। यह श्रमिकों के हितों की रक्षा का साधन है। यद्यपि भारत में श्रम आन्दोलन वांछित गति से विकसित नहीं हो सके हैं। इसके विभिन्न कारण रहे हैं जिन्हें इस इकाई में वर्णित किया गया है, साथ ही अन्त में, श्रम आन्दोलन को सुदृढ़ करने हेतु कुछ सुझाव भी दिये गये हैं।

16.2 श्रम–संघ – अर्थ, परिभाषाएं एवं विशेषताएं

सामान्यतः श्रम–संघ किसी संगठन में श्रमिकों द्वारा अपने कार्यशील जीवन की दशाओं को सुधारने अथवा उसे ठीक रखने हेतु बनाया जाने वाला एक दीर्धकालीन संगठन है। कुछ विद्वानों का कथन है कि ये संगठन केवल उन कर्मचारियों अथवा श्रमिकों के होते हैं जो किसी उद्योग या व्यवसाय में कार्यरत हैं और मजदूरी प्राप्त करते हैं। जबकि कुछ विद्वान, श्रम–संघ के अन्तर्गत नियोक्ता संगठन, मैत्री संस्थाएं, व्यवसायिक क्लब आदि को भी सम्मिलित करते हैं। किन्तु इस बात पर सभी विद्वान एकमत हैं कि सभी संगठन अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करने के लिए बनाये जाते हैं, साथ ही उनकी सौदेबाजी करने की क्षमता में वृद्धि करते हैं, प्रबन्धकीय एकाधिकार समाप्त करते हैं तथा श्रमिक एवं नियोक्ताओं के मध्य संबंध सुधारने में सहायक होते हैं।

श्रमिक संगठन के संदर्भ में कालमार्क्स ने लिखा है कि, श्रमिक संघ सर्वाधिक महत्वपूर्ण एक संगठन केन्द्र है। यह श्रमिक वर्ग की शक्तियों को एकत्र करने वाला बिन्दु है। उनके द्वारा प्रतिपादित वर्ग–संघर्ष ;ब्सेंूतद्ध एवं द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद (Dialectical materialism) सम्बन्धी सिद्वान्त में यह माना जाता है कि समाज में क्रान्तिकारी एवं आधारभूत परिवर्तन लाने हेतु श्रमिकों का संगठन आवश्यक है। उनकी दृष्टि में श्रमिक संघ साघनहीन श्रमिकों एवं साधन सम्पन्न पूंजीपतियों के बीच वर्ग संघर्ष एवं पूंजीवाद को समाप्त करने का साधन है।

परिभाषाएं –

1. **डेल योडर** के अनुसार – ''श्रम–संघ एक निरन्तर तथा दीर्धकालीन कर्मचारी संगठन है, जो विशिष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हेतु अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करने तथा श्रम सम्बन्धों में सुधार हेतु बनाये जाते हैं।
2. **वेब** एवं **सिडनी** के अनुसार – ''एक श्रम–संघ ऐसा शब्द है जो मजदूरी कमाने वालों का सतत समागम है जिसका लक्ष्य उनके कार्य जीवन की दशाएं बनाना अथवा सुधार करना है।''
3. **श्रम–संघ (संशोधित) अधिनियम, 1982** के अनुसार – ''श्रम–संघ एक स्थायी अथवा अस्थायी संगठन है जिसकी स्थापना श्रमिक तथा नियोक्ता में, श्रमिक एवं श्रमिक में तथा नियोक्ता एवं नियोक्ता से संबंध बनाने हेतु एवं किसी व्यवसाय के आचरण को नियन्त्रित करने हेतु की जाती है। इसके अन्तर्गत दो अथवा अधिक श्रम–संघों के संगठन सम्मिलित किये जाते हैं।''

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि श्रम संघ वेतनभोगी कर्मचारियों द्वारा बनाया गया निरन्तर कार्यरत ऐच्छिक संगठन है जो अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करने, उनके कार्यकारी जीवन की दशाओं को बनाये रखने, उनमें सुधार करने तथा नियोक्ताओं के साथ संबंध उत्तम बनाने में सतत् प्रयत्नशील रहता है।

16.3 श्रम संघ की विशेषताएं

1. **कर्मचारियों/नियोक्ताओं का संगठन** – यद्यपि श्रम संघ नियोक्ता अथवा कर्मचारी किसी के भी हो सकते हैं, फिर भी सामान्यतः 'श्रम–संघ' शब्द कर्मचारियों या श्रमिकों के संघ की ओर संकेत करता है। भारत में व्यापारियों के संगठन, सामान्य श्रम–संघ, मैत्रिक संस्थाएं, बौद्धिक श्रम संगठन, नियोक्ता संगठन आदि सभी को श्रम–संघ के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया है।
2. **सतत् कार्यरत संगठन** – श्रम–संघ के उद्देश्य यद्यपि समय एवं परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं लेकिन कोई भी स्थापित श्रम–संघ दीर्धकाल तक अपने संगठन के व्यक्तियों के हित के लिए निरन्तर कार्यशील रहते हैं।
3. **विभिन्न कार्यों वाला संगठन** – श्रम संघ एक ऐसा संगठन होता है जो अपने सदस्यों के हित में कार्य करता है। इनका मुख्य कार्य संघ के सदस्यों का सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक उत्थान करना है। श्रम संघ परिवर्तित वातावरण एवं परिस्थिति के अनुसार श्रमिक की मजदूरी एवं कार्यदशाओं में सुधार के साथ–साथ बाजार तथा तकनीकी में परिवर्तन को सम्मिलित कर रहे हैं।
4. **श्रम–संघ, रक्षात्मक अस्त्र के रुप में** – चूंकि श्रम–संघ बनाने का उद्देश्य समूह रुप में अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करना होता है। अतः श्रम संघ के सदस्यों को दूसरे वर्ग (नियोक्ता या अन्य) के शोषण से बचाकर उचित पारिश्रमिक एवं बेहतर कार्य दशाएं आदि उपलब्ध कराई जा सकती हैं।
5. **वर्ग–भेद** – 'श्रम–संघ' शब्द से श्रमिक (कर्मचारी) के वर्ग का बोध होता है। इस प्रकार श्रमिक वर्ग, नियोक्ता वर्ग व्यापारी संगठन इत्यादि से भिन्न होता है। अतः श्रम संघ में वही सदस्य होते हैं जो उस वर्ग विशेष में आते हैं। अन्य को इस वर्ग में सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।
6. **संघेय शक्ति** –चूंकि मनुष्य किसी सामाजिक या औद्योगिक परिवेश में एकाकी अथवा अकेला होता है, जबकि संघ या समूह में शक्ति का अहसास होता है। अतः कर्मचारी कार्यस्थल में एक दूसरे के हितों की रक्षा के लिए अपना संघ बना लेते हैं। समूह या संघ के रुप में कर्मचारी या श्रमिक विपरीत परिस्थितियों में तथा नियोक्ता के विरुद्ध भी सफलता प्राप्त कर लेते हैं।
7. **औद्योगिक प्रजातन्त्र के विकास का आधार** – श्रम–संघ को किसी औद्योगिक क्षेत्र में प्रजातन्त्र के विस्तार के रुप में भी समझा जा सकता है। श्रम–संघ प्रबन्धकीय एकाधिकार को भी समाप्त करता है। इस रुप में श्रम संघ को श्रमिकों को शक्ति तथा कार्य की उचित दशाएं प्राप्त करने का अस्त्र भी कहा जा सकता है।

निष्कर्ष रुप में कहा जा सकता है कि श्रम–संघ अपने सदस्यों को उचित न्याय, प्रशिक्षण, जागरुकता एवं एकता की भावना विकसित करके उनके सामान्य हित की उपलब्धि हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। श्रम–संघ अपने सदस्यों की रक्षा केवल नियोक्ता या प्रबन्ध से ही नहीं, अपितु सरकार से भी करके समााजिक परिवर्तन में अपनी अहं भूमिका अदा करते हैं।

16.4 श्रम संघ के उद्देश्य

श्रम संघ, मूलतः ऐसे संगठन होते हैं जो अपने सदस्यों के हितों की रक्षा करते हैं। कर्मचारी या श्रमिक वर्ग अपने अधिकारों की रक्षा, जीवन की रक्षा, स्वास्थ्य की रक्षा सुनिश्चित करने के लिए श्रम–संघों का निर्माण करते हैं। अतः संघों के निर्माण का मुख्य उद्देश्य यह है कि वे कर्मचारी अथवा अपने संघ के सदस्यों पर होने वाले शोषण से बचाकर उन्हें आर्थिक एवं सामाजिक रुप से सशक्त बना सकें। विभिन्न विद्वानों ने श्रम संघों के उद्देश्यों को भिन्न–भिन्न रुप में व्यक्त किया है –

सैमुअल गोम्पर्स ने श्रम संघ के उद्देश्यों के बारे में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि श्रम संघ, आवश्यकताओं की देन है ताकि कर्मचारी स्वयं का अन्याय, अतिक्रमण तथा गलत से बचाव कर सकें।

वेब का विचार था कि वर्ग–संघर्ष तो हमेशा ही बना रहेगा, उसे समाप्त नहीं किया जा सकता, लेकिन उसे श्रम संघ द्वारा हल तथा कम किया जा सकता है।

जी.डी.एच. कोल के अनुसार श्रम संघों का तात्कालिक उद्देश्य कर्मचारियों के लिए अच्छी कार्य दशाएं तथा उच्च मजदूरी उपलब्ध कराना है।

एलेन फ्लैण्डर्स एवं **एच.एच.ए.** क्लेग ने श्रम संघ के तीन मुख्य उद्देश्य बताये हैं –

1. राष्ट्रीय आर्थिक जीवन के सामाजिक नियन्त्रण के क्षेत्र को व्यापक करना एवं नियन्त्रण में भाग लेना।
2. उद्योग तथा समाज में कर्मचारियों की स्थिति ऊपर उठाना, तथा
3. श्रमिकों की मजदूरी और कार्यदशाओं का बचाव एवं सुधार करना।

भारतीय श्रम संघ अधिनियम में श्रम संघ के निम्नलिखित उद्देश्यों को सुनिश्चित किया गया है।

1. श्रमिकों में भाई–चारे, सहयोग एवं मैत्री की भावना उत्पन्न कर उन्हें मजबूत एवं संगठित करना।
2. श्रमिकों के हितों एवं अधिकारों की रक्षा करना।
3. श्रमिकों की नौकरी की सुरक्षा प्रदान करना।
4. श्रमिकों को उचित मजदूरी एवं वेतन दिलवाने का प्रयास करना।
5. श्रमिकों का जीवन स्तर ऊँचा उठाना।
6. श्रमिकों की कार्यकुशलता एवं क्षमता में वृद्धि करना।
7. श्रमिकों में एकता बनाना।
8. श्रमिकों के कार्य घण्टे एवं कार्य पर सुविधाएं बढ़ाना।
9. चिकित्सा, बीमारी, भविष्यनिधि एवं अन्य लाभकारी योजनाएं प्रदान करवाना।
10. आवश्यकता पड़ने पर श्रमिकों को कानूनी परामर्श प्रदान करवाना।
11. किसी आपत्ति, बीमारी या चोट की स्थिति में कोष का निर्माण करना तथा संबंधित कर्मचारी की सहायता करना।
12. श्रम सेवानियोजक विवादों तथा संघर्षों के निपटाने में सहयोग करना,
13. आवश्यकतानुसार ही हड़ताल की घोषणा करना तथा नियोजित रुप से उसे चलाना।
14. श्रमिकों एवं उनके परिवारों में सामाजिक, नैतिक, एवं आर्थिक विकास करना तथा शिक्षा प्रदान करना।
15. श्रमिकों में सामूहिक एवं व्यक्तिगत सौदेबाजी की शक्ति उत्पन्न करना।
16. श्रमिकों से संबंधित आंकड़े, तथ्य एवं सूचनाएं एकत्र करना एवं उनका प्रकाशन करना।
17. श्रम हितों का संवर्द्धन करना।

18. श्रमिक एवं उनके अधिकारियों में सहयोग की भावना जागृत करना।
19. औद्योगिक शक्ति तथा औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना में सहयोग प्रदान करना, तथा
20. बदलती परिस्थितियों के अनुसार प्रौद्योगिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिवेश में कर्मचारियों को चुनौती स्वीकार करने हेतु तैयार करना।

इस प्रकार श्रम संघों के उद्देश्य के अन्तर्गत श्रमिकों को शोषण से बचाना, उनके विभिन्न हितों की रक्षा करना, कार्य की दशाएं बेहतर बनाना, श्रम कल्याण करना, उद्योग पर नियन्त्रण करना एवं नवीन चुनौतियों का सामना करने हेतु तैयार करना है।

16.5 श्रम–संघ के कार्य

श्रम–संघ के कार्य प्रत्येक देश में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार भिन्न–भिन्न एवं सीमित अथवा विस्तृत होते हैं। कोई भी श्रम संगठन उस संगठन के सहयोगी मूल्यों पर आधारित होता है। इस कारण जिन देशों में प्रजातान्त्रिक व्यवस्था होती है, वहां के श्रम संघ अधिक सफल होते हैं, क्योंकि ये संघ स्वयं में स्वतन्त्र संस्थाएं होती हैं, जो प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली के आधार पर चलाई जाती हैं। एकतन्त्र शासन वाले देशों में श्रम संघ एक अधीनस्थ इकाई के रुप में कार्य करते हैं और वहाँ महत्वपूर्ण सेवायें प्रदान करते हैं, जैसे सामूहिक बीमा सेवाओं के प्रशासन, सामूहिक सौदेबाजी तथा श्रमिकों के विवाद निवारण के कार्य इत्यादि। श्रम–संघ के कार्यों को विभिन्न विद्वानों तथा अधिनियम द्वारा भिन्न–भिन्न प्रकार से निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है –

डॉ0 ब्राउटन ने श्रम संघों के कार्यों को तीन भागों में बाँटा है –

1. **अन्तर्मुखी कार्य** (Intra-mural functions) इसके अन्तर्गत विभिन्न उद्योगों में होने वाली विभिन्न कल्याणकारी क्रियाओं को सम्मिलित किया गया है, जिनसे कर्मचारियों की रोजगार संबंधी कार्य दशाओं में सुधार होता है, जैसे – कार्य के घण्टे, मजदूरी, अवकाश, स्वास्थ्य व्यवस्था में सुधार तथा रोजगार में नियमितता।
2. **बहिर्मुखी कार्य** (Extra-mural functions) – इन कार्यों के अन्तर्गत ऐसी योजनाओं को सम्मिलित किया जाता है जिनके द्वारा श्रमिकों को आवश्यकता के समय सहायता प्रदान की जा सके। जैसे – शैक्षणिक, मनोरंजन और आवासीय सुविधा, दुर्घटना के समय आर्थिक सहायता आदि।
3. **राजनैतिक कार्य** (Political Functions) – यह कार्य समाज में व्याप्त आर्थिक असमानताओं को दूर करने के लिए किये जाते हैं जिससे कुछ समय पश्चात वर्गहीन समाज की स्थापना की जा सके। ये कार्य राजनीतिक परिवेश में किये जाते हैं।

भारतीय श्रम संघ (संशोधित) अधिनिमय, 1982 के अनुसार – ''श्रम संघ का उद्देश्य श्रमिकों के हितों की रक्षा, रोजगार एवं कार्य की दशाओं में सुधार तथा उनके हितों में वृद्धि करना है।'' श्रम संघों के द्वारा इस मूल उद्देश्य के अनुरुप मुख्य कार्यों के अतिरिक्त कुछ अन्य सहायक कार्य भी किये जाते हैं। सहायक कार्य, मुख्य (मूल) कार्यों के नीति–विरुद्ध नहीं होने चाहिए। इस प्रकार भारत में श्रम संघों के कार्य निम्नवत हैं –

1. श्रमिकों के लिए उचित मजदूरी, अच्छी कार्य की दशाएं तथा अच्छी रहन–सहन की दशाएं प्राप्त करना।
2. श्रमिकों द्वारा उद्योग पर नियन्त्रण प्राप्त करना।
3. व्यक्तिगत दुर्घटनाओं के समय सामूहिक रुप से संगठित होकर प्रबन्धकीय षडयन्त्रों के विरुद्ध कार्यवाही करना तथा अन्याय को समाप्त करने के लिए वातावरण तैयार करना।

4. श्रमिकों के जीवन स्तर में वृद्धि करके उन्हें उद्योग में सहभागी के रुप में तथा समाज में भद्र नागरिक के रुप में स्थान दिलवाना।
5. श्रमिकों में आत्मबल जागृत करना कि वह उद्योगों में केवल मशीन का पुर्जा (एक छोटा यन्त्र) ही नहीं है।
6. श्रमिकों में अनुशासन तथा उत्तरदायित्व वहन करने की योग्यता विकसित करना, तथा
7. श्रमिकों का नैतिक उत्थान करने की दृष्टि से कल्याणकारी कार्य करना।

उपरोक्त वर्णित कार्यों के वर्णन के पश्चात श्रम संघ के कार्यों को मुख्य रुप से चार वर्गों में स्पष्ट किया जा सकता है –

(अ) **आर्थिक क्रियाएं** (Economic Activties) – इसके अन्तर्गत श्रम संघ की वे समस्त आर्थिक गतिविधियाँ सम्मिलित की जाती हैं जिससे श्रमिकों के वेतन, बोनस, भत्ते आदि के रुप में लाभ प्राप्त होते हैं। इन क्रियाओं के अन्तर्गत सामूहिक सौदेबाजी करना, प्रदर्शन, धरना, हड़ताल आदि शामिल हैं।

(ब) **राजनैतिक क्रियाएं** (Plotical Activities) – श्रम संघ अपने सदस्य कर्मचारियों की रक्षा हेतु विभिन्न राजनैतिक पार्टियों से सम्बद्ध होते हैं और विभिन्न राजनैतिक कार्यक्रमों में हिस्सा लेते हैं। इस हेतु श्रम संघ द्वारा निम्नलिखित कार्य किये जाते हैं –

1. श्रम हितों में राजनैतिक कार्य के माध्यम से श्रम विधान का सृजन करना।
2. राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने हेतु चुनाव में अपने प्रत्याशी उम्मीदवार बनाना अथवा ऐसे व्यक्तियों का चुनाव में सहयोग श्रमिक हित में कार्य करें।
3. कर्मचारियों को राजनैतिक व्यवस्था से अवगत कराना।
4. सदस्य कर्मचारियों को संघर्षात्मक तथा क्रान्तिकारी कार्य करने हेतु प्रोत्साहित करना, तथा
5. कर्मचारियों की ओर से सलाहकारी समिति में भागीदारी करना और उनका पक्ष रखना।

(स) **सामाजिक क्रियाएं** (Social Activities)– श्रम संघ द्वारा निम्न सामाजिक क्रियाएं सम्पन्न की जाती हैं –

1. कर्मचारियों की शिक्षण व्यवस्था का विकास करना।
2. कर्मचारियों के कल्याण तथा मनोरंजन कार्यों के साथ हड़ताल तथा अन्य आर्थिक कठिनाईयों में सहायता करना।
3. सरकारी समितियों का संचालन करना, तथा
4. कर्मचारियों की सामाजिक प्रगति हेतु सामुदायिक विकास एवं सुरक्षा के कार्यक्रम चलाना।

(द) **राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय क्रियाएं** (National & International Activities) – श्रम संघ विभिन्न प्राकृतिक आपदाओं, युद्ध आदि के समय राष्ट्रीय नुकसान (क्षति) को पूरा करने में सहयोग प्रदान करते हैं। साथ ही देश की विभिन्न महत्वपूर्ण समस्याओं के निदान में पूर्ण भागीदार बनते हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रमिकों के हितों की रक्षा हेतु विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय मंचों, जैसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन, विश्व श्रम संघ फेडरेशन आदि में प्रतिनिधियों को भेजते हैं।

इस प्रकार श्रम संघ द्वारा श्रमिकों के हित के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य किये जाते हैं। जिनमें उद्योग विशेष में शान्ति स्थापित करने, प्रौद्योगिकी परिवर्तन स्वीकार करने तथा विकसित मजदूरी प्रणाली हेतु समुचित कार्य किये जाने चाहिए।

16.6 श्रम–संघों के नियमन के सिद्वान्त

श्रम–संघ किसी निश्चित समय पर समाज के एक विशिष्ट वर्ग में सुधार मात्र से ही निर्देशित नहीं होते हैं, बल्कि देश की कार्यक्षमता पर होने वाले स्थायी प्रभाव इनकी सफलता का प्रमाण है। यदि श्रम संघ के किसी भी कार्य का नियमन उत्पादन कम करने वाले या उत्पादक तत्वों का कार्यकुशल उपयोग न करने की दशा में प्रेरित करता है तो वह श्रम संघ चाहे कितना ही हितकारी एवं कल्याणकारी क्यों न हो, निन्दनीय है। यदि दूसरी ओर, कोई श्रम संघ, उत्पादन वृद्धि एवं कार्यकुशलता वृद्धि की दिशा में प्रेरित करता है तो वह प्रत्यक्ष रुप से पूंजीवादी प्रथा को प्रोत्साहित करने में सहायक होते हुए भी राष्ट्र से अधिक महत्वपूर्ण होता है। अर्थात श्रम संघों की उपयोगिता का मूल्यांकन मात्र इस बात से नहीं किया जा सकता है कि समाज के एक वर्ग विशेष के हितों की सुरक्षा के लिए कितना प्रयत्न करते हैं। श्रम संघों के नियमन के सिद्वान्तों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है –

(1) **सन्निहित हितों का सिद्वान्त** (The Doctrine of Vested Interest) – इस सिद्वान्त का तात्पर्य यह है कि सम्बन्धित कर्मचारी के हित के विरुद्ध कोई कार्य न हो सके। अर्थात वर्तमान समय में श्रमिकों को उपलब्ध सुविधाओं, मजदूरी की दरों एवं कार्य दशाओं एवं सुविधाओं में किसी प्रकार की कमी न की जा सकें। कर्मचारियों को उनके वर्तमान स्तर से निम्न स्तर पर नहीं आने दिया जाए।

(2) **मांग एवं पूर्ति का सिद्वान्त** (The Doctrine of Demand & Supply) – यह सिद्वान्त सामूहिक सौदेबाजी के सिद्वान्त पर आधारित है। इसकी मान्यता है कि श्रम संघ सामूहिक सौदेबाजी से अपने हितों की रक्षा करने में सफल होते हैं। श्रम संघों में हुए विकास के कारण इस सिद्वान्त का प्रयोग किया जाता है। नियोक्ता संगठन तथा श्रमिक नियोक्ता सम्बन्धों में सुधार तथा उद्योगों के बदलते स्वरुप में श्रम संघों का योगदान महत्वपूर्ण है।

(3) **आजीविका मजदूरी का सिद्वान्त** (The Doctrine of Living Wages) – यह सिद्वान्त श्रमिकों को अपने अधिकार सुरक्षित करने का अवसर प्रदान करता है। इसमें उद्योग की क्षमता पर ध्यान नहीं रखते हुए प्रत्येक श्रमिक को न्यूनतम आजीविका मजदूरी की गारण्टी दी जाती है। इससे श्रमिक के आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक स्तर में सुधार होता है। सामान्य कार्यक्षमता स्तर पर वृद्धि होती है तथा समस्त उद्योगों को लाभ होता है।

(4) **सहभागिता का सिद्वान्त** (The Doctrine of Partnership) – इस सिद्वान्त के अनुसार श्रमिकों को उद्योग का सहभागी समझा जाता है तथा प्रबन्ध में उनकी भागीदारी भी सुनिश्चित की जाती है। सामूहिक सौदेबाजी, समझौता प्रणाली आदि के प्रचलन से यह सिद्वान्त अधिक सफल हुआ है।

(5) **समाजवाद का सिद्वान्त** (The Doctrine of Socialism)– इस सिद्वान्त के अनुसार, प्रत्येक व्यक्ति को कार्य करने का अधिकार, अवकाश, वृद्धावस्था का प्रबन्ध, बीमारी, असमर्थकता के लिए उचित व्यवस्था तथा समान कार्य हेतु समान वेतन प्राप्त करने का अधिकार है।

16.7 श्रम–संघों के प्रकार

सामान्यतः श्रम संघों का वर्गीकरण विभिन्न देशों में, परिस्थिति के अनुसार भिन्न–भिन्न हो सकते हैं। सुविधा के दृष्टिकोण से श्रम संघों के वर्गीकरण या प्रकार को निम्न आंकड़ों पर विभाजित किया जा सकता है –

1. **सदस्यता के आधार पर** – सदस्यों की सदस्यता एवं प्रकृति के अधार पर श्रम संघों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता है।

(1) **सामान्य संघ** – सामान्य संघ, उन संघों को कहा जाता है जिनका निर्माण उन कर्मचारियों द्वारा होता है, जिनके उद्योग व्यवसाय कार्य की प्रकृति एवं कौशल में भिन्नता होती है। इस प्रकार के संघों में कोई भी श्रमिक या कर्मचारी, किसी भी उद्योग अथवा स्थान में कार्यरत रहते हुए सदस्य बनकर सम्मिलित हो सकता है। ऐसे संघ सामान्यतः बड़े–बड़े औद्योगिक केन्द्रों जैसे – मुम्बई, अहमदाबाद, कानपुर, कोलकाता, आदि में पाये जाते है। यह संघ किसी भी प्रकार की समस्या के निवारण हेतु तैयार रहते हैं।

(2) **औद्योगिक संघ** – ये ऐसे श्रम संघ होते हैं, जिनमें एक उद्योग या विभिन्न उद्योग तथा सेवाओं से संबंधित कर्मचारी सम्मिलित होते हैं। ये श्रम–संघ किसी भी श्रमिक को अपनी सदस्यता प्रदान कर सकते हैं और सदस्यता देते समय श्रमिकों के शिल्प, कौशल, श्रेणी या स्तर का ध्यान नहीं रखते हैं। भारत के औद्योगिक संघ के उदाहरण अहमदाबाद सूती वस्त्र उद्योग, श्रमिक संघ तथा चाय बागान श्रमिक संघ आदि हैं।

(3) **दस्तकारी संघ** – यह संघ, किसी उद्योग विशेष में कार्य करने वाले उन श्रमिकों का संघ होता है, जिनका शिल्प, प्रशिक्षण तथा विशिष्टीकरण एक सा होता है। इन संघों का निर्माण करने वाले कर्मचारियों का व्यवसाय या उद्योग अलग–अलग हो सकता है, किन्तु उनके कार्य की प्रकृति एक समान होती है। भारत में रेलवे एवं डाक–तार विभाग के कर्मचारियों, बैंक, बीमा व्यवसाय के कर्मचारियों, विभिन्न विश्वविद्यालय के शिक्षकों आदि के संघों को दस्तकारी संघ के रुप में जाना जा सकता है।

2. **भौगोलिक आधार पर** – भौगोलिक आधार पर श्रम संघ का वर्गीकरण निम्न प्रकार से किया जा सकता है –

(i) **स्थानीय संघ** – ऐसे संघ स्थानीय स्तर पर संगठित होते हैं। ये इकाई, संयन्त्र अथवा स्थानीय आधार पर कार्य करते हैं। टाटा लेवर यूनियन, अहमदाबाद टैक्सटाइल लेवर एसोसिएसन आदि इसके उदाहरण हैं।

(ii) **क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक संघ** – इस प्रकार के संघ किसी प्रदेश, क्षेत्र या प्रभाग के आधार पर कार्य करते हैं। ऐसे संघ अपने क्षेत्र अथवा प्रदेश में आने वाली समस्त इकाइयों में अपने संघ की इकाई रख सकते हैं। राज्य स्तर के कार्यरत संघों को भी क्षेत्रीय संघों की श्रेणी में सम्मिलित किया जा सकता है। जीवन बीमा डिवीजनल संघ, बम्बई प्रेसीडेन्सी रेलवे मेल सर्विस एसोसिएसन प्रादेशिक संघ के उदाहरण है।

(iii) **राष्ट्रीय संघ** – ऐसे संघ राष्ट्रीय संसाधन की सदस्यता ग्रहण करते हैं। ये देश के विभिन्न संघों के क्रियाकलापों में समन्वय स्थापित कर राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करते हैं। साथ ही ये संघ क्षेत्रीय श्रम संघों का प्रबन्धन भी करते हैं भारत में श्रम संघ के फेडरेशन–एटक, इण्टक, यूटक, हिन्द मजदूर सभा आदि राष्ट्रीय श्रम संघ के उदाहरण हैं।

(iv) **अन्तर्राष्ट्रीय संघ** – कुछ श्रम संघ, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी कार्य कर रहे हैं। ऐसे श्रम संघ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन एवं अन्य अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर सहभागिता करके दुनिया के श्रमिकों को शोषण से बचाते हैं। इण्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन तथा वर्ल्ड फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघों के उदाहरण हैं।

3. **अधिकार सत्ता की प्रकृति के आधार पर** – इस प्रकार के संघ निम्न दो प्रकार के होते हैं –

(i) **संघात्मक संघ** – ऐसे श्रम संघों में अधिकार सदस्यों में विभाजित रहता है। सदस्य अपने अनुसार प्रतिनिधि का चुनाव कर उन्हें कार्य सौंपते हैं।

(ii) **एकात्मक संघ** – ऐसे संघों में अधिकार–सत्ता पदाधिकारियों में निहित होती है। कर्मचारियों या श्रमिकों को सत्ता प्रयोग का अधिकार नहीं होता है।

4. **देश में विद्यमान सरकार की प्रकृति के आधार पर** – विभिन्न देशों में विद्यमान सरकार के स्वरुप एवं प्रकृति के आधार पर श्रम संघों को दो रुपों में वर्गीकृत किया जा सकता है –

(i) **निरंकुश संघ** – जिन देशों में निरंकुश अथवा तानाशाही प्रवृत्ति की सरकार होती हैं वहाँ के श्रम–संघ भी तानाशाही प्रवृत्ति के होते हैं।

(ii) **प्रजातान्त्रिक संघ** – जिन देशों में लोकतन्त्र या प्रजातंत्र प्रणाली वाली सरकार हैं वहां ऐसे संघ विकसित होते हैं। ऐसे संघों में प्रतिनिधियों का चुनाव समय–समय पर सदस्यों द्वारा होता है साथ ही सदस्य अपनी समस्याओं को संघ के माध्यम से उठा सकते हैं।

5. **अन्य** – उपर्युक्त वर्णित श्रम संघों के प्रकार के अतिरिक्त निम्न प्रकार के संघ भी होते हैं, जो निम्न प्रकार हैं –

(i) **कम्पनी संघ** – ऐसे संघों के सदस्य केवल कम्पनियां ही होती हैं। वे कम्पनी, जो भारतीय कम्पनी अधिनियम अथवा विदेशी कम्पनी अधिनियमों के अन्तर्गत कार्यरत हैं, ऐसे संघों की सदस्य हो सकती हैं। ये संघ कम्पनी अधिनियम की किसी कमियों में सुधार हेतु संघ के माध्यम से आवाज उठाकर सदस्य कम्पनियों के हितों की रक्षा करते हैं।

(ii) **व्यवसाय संघ** – व्यापारियों अथवा व्यवसायियों के संघ, उनसे सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की समस्याओं के निवारण के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। इसके सदस्य विभिन्न व्यापारी या व्यवसायी होते हैं। वाराणसी व्यापार मण्डल, उत्तरप्रदेश व्यापारी संघ इसके उदाहरण हैं।

(iii) **क्रान्तिकारी संघ** – किसी देश अथवा क्षेत्र में क्रान्ति लाने में ऐसे संघ महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। भारतीय आजादी की प्राप्ति तथा चीन और रुस की क्रान्ति इसी प्रकार के संघों से सम्बन्धित रहे हैं।

16.8 श्रम–संघ का महत्व

श्रम–संघ किसी उद्योग के श्रमिकों के लिए ही महत्वपूर्ण नहीं है, बल्कि उद्योग के प्रबन्धकों एवं राष्ट्र के लिए भी उपयोगी है। संघ से प्रत्येक वर्ग को प्राप्त होने वाले लाभ को निम्न प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है –

1. **श्रमिकों को लाभ** – श्रम संघ का मुख्य लाभ संघ के सदस्य श्रमिकों या कर्मचारियों को ही प्राप्त होता है। वास्तव में श्रम संघ अपने कर्मचारियों का आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक जीवन का विकास करते है। श्रम संघों के माध्यम से ही कर्मचारियों के हितों की रक्षा और प्रजातन्त्रिक मूल्यों की स्थापना करके उनका जीवन स्तर ऊपर उठाया जाता है। श्रम संघ द्वारा कर्मचारियों का मार्गदर्शन कर सहकारिता भाव से उनके उत्तरदायित्व का भी विकास किया जाता हैं। श्रम–संघ, श्रमिकों के लिए निम्न प्रकार उपयोगी है –
   - श्रमिकों में एकता उत्पन्न करना,
   - कार्यघण्टों में कमी कर कार्यदशा सुधारना एवं कार्यक्षमता बढ़ाना।
   - कर्मचारी एवं श्रमिकों को शोषण से बचाना।

- श्रमिकों का चतुर्मुखी विकास कर उनकी आर्थिक, सामाजिक एवं राजनैतिक स्थिति सुधारना।
- श्रमिकों को आर्थिक सुविधाएं, लाभ एवं अन्य सुविधाएं दिलाना एवं ।
- श्रमिकों को प्रबन्ध में भागीदार बनाना।

2. **उद्योगपतियों को लाभ** – सामान्यतः श्रम संघों को उद्योगपतियों का विरोधी समझा जाता है, लेकिन श्रम संघों का उद्योगपतियों के लिए भी बहुत योगदान होता है। श्रम–संघ ही प्रबन्धकों एवं उद्योगपतियों के साथ मिलकर बैठकर श्रमिकों हेतु विभिन्न कार्यक्रम तैयार करते हैं। तथा पूंजी सम्बन्धी विवाद को दूर करने में भी सहायता करते हैं। प्रायः उद्योगों के शान्तिपूर्ण संचालन में श्रम संघ, प्रबन्ध की सहायता भी प्रदान करते हैं। तथा पूंजी सम्बन्धी विवाद को दूर करने में भी सहायता करते हैं। प्रायः उद्योगों के शान्तिपूर्ण संचालन में श्रम–संघ, प्रबन्ध की सहायता भी प्रदान करते हैं। श्रम संघ, उद्योगपतियों एवं प्रबन्धकों हेतु निम्न रुप में उपयोगी होते हैं –

- औद्योगिक संघर्षों को समाप्त करना एवं उत्पादन को क्षति होने से बचाना।
- श्रमिकों को शिक्षण, प्रशिक्षण आदि सुविधाएं प्रदान करके उस उद्योग विशेष को कुशल, सचेतन, एवं प्रबुद्ध श्रम शक्ति प्रदान करना।
- सामूहिक वार्ता एवं सौदेबाजी कर भविष्य में होने वाली सम्भावित अशान्ति को समाप्त करना।
- श्रमिकों में एकता, सहयोग एवं भाई–चारे की भावना उत्पन्न कर कार्यस्थल पर एकता सहयोग एवं उत्तरदायित्व की भावना से प्रबन्धकीय समस्याओं को दूर करने में सहयोग करना।
- औद्योगिक शान्ति एवं औद्योगिक प्रजातन्त्र मजबूत करने हेतु उद्योगपतियों एवं प्रबन्धों को सहयोग देना, तथा
- प्रबन्धकों को उचित श्रम नीतियों एवं व्यवहारों के क्रियान्वयन में सहयोग करना।

3. **समाज एवं राष्ट्र को लाभ** – श्रम संघ कर्मचारियों की समस्याओं को समाज एवं राष्ट्र के सामने प्रस्तुत करते हैं। सरकार को श्रम–संघों से पता चलता है कि किस प्रकार की श्रम नीति एवं श्रम कानून राष्ट्र के लिए अनिवार्य होना चाहिए। श्रम संघ समाज एवं राष्ट्र के लिए निम्न प्रकार उपयोगी है –

- औद्योगिक विवादों को शान्त कर समाज को कठिनाई से बचाना,
- देश के आर्थिक विकास में अप्रत्यक्ष योगदान देना।
- आदर्श, स्थायी एवं जागरुक श्रम शक्ति का विकास कर व्यवहारिक पृष्ठभूमि तैयार करना एवं
- सरकारी कानून तथा श्रम नीति के निर्धारण में सहायता करना।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि श्रम संघ का महत्व श्रमिक एवं कर्मचारी वर्ग के साथ–साथ प्रबन्धक, नियोक्ता, उद्योगपति समाज एवं राष्ट्र सभी के लिए महत्वपूर्ण है। साथ ही श्रम संघ किसी राष्ट्र विकास एवं सामाजिक वृद्धि के लिए भी अत्यन्त आवश्यक है।

16.9 भारत में श्रम आन्दोलन : अर्थ एवं विकास

अर्थ – श्रम आन्दोलन एक विस्तृत शब्द है, जिसके अन्तर्गत श्रम संघ, श्रम नियमन, श्रम प्रतिनिधित्व एवं श्रम–कल्याण कार्य सम्मिलित किये जाते हैं। श्रम आन्दोलन, औद्योगीकरण की देन है और श्रमिकों के असन्तोष का प्रतीक है। श्रम आन्दोलन समस्त श्रमिक वर्ग के हितों की रक्षा हेतु कार्य करते हैं। यह मजदूरी पर आश्रित व्यक्तियों की वह क्रिया है, जिससे श्रमिक संगठित होकर अपनी दशा सुधारने का प्रयत्न करते हैं। जिसका प्रभाव तुरन्त या कुछ समय पश्चात् होता है। श्रम आन्दोलन सदैव पूंजीवाद के विरुद्ध प्रदर्शन एवं प्रतिक्रिया है।

श्रम आन्दोलन का प्रादुर्भाव औद्योगीकरण की विषमताओं के कारण हुआ है। प्रारम्भिक काल में वर्ग–चेतना जागृत हुई थी, तब श्रमिक तत्काल निर्णय में विश्वास रखते थे। नियोक्ता की प्रतिक्रिया पर आन्दोलन का स्वरुप निर्भर करता था। यदि नियोक्ता का व्यवहार अच्छा नहीं होता था, तो आन्दोलन का स्वरुप विध्वंसक रुप ले लेता था, लेकिन यदि श्रमिकों की मांगें मन ली जाती थीं, तो श्रम आन्दोलन का रुप प्रेरणात्मक होता था। प्रारम्भिक दौर में श्रम संघ अधिक क्रान्तिकारी थे, लेकिन धीरे–धीरे परस्पर मेल जोल एवं नये सामाजिक मूल्यों के कारण श्रम–आन्दोलनों में परिवर्तन होने लगा। औद्योगिक विकास के साथ यह स्वीकार किये जाने लगा कि यदि उद्योगों को मिलने वाले लाभों में श्रमिकों की भी सहभागिता सुनिश्चित की जाए तो श्रम आन्दोलन उग्र और क्रान्तिकारी नहीं होंगे बल्कि औद्योगिक प्रगति में सहायक होंगे।

श्रम–आन्दोलन का विकास –

श्रम आन्दोलन के विकास को समझने के लिए विभिन्न सिद्वान्त प्रतिपादित किये गये हैं। जिनमें से प्रमुख सिद्वान्त निम्न प्रकार हैं –

1. **क्रान्तिकारी सिद्वान्त** – क्रान्तिकारी विचारधारा के समर्थक यह मानते हैं कि वर्तमान व्यवस्था में परिवर्तन लाने तथा श्रमिक वर्ग के शोषण को समाप्त करने के लिए क्रान्ति आवश्यक है एवं पूंजीवादी व्यवस्था की समाप्ति के लिए श्रम संघ एक महत्वपूर्ण अस्त्र है।
2. **औद्योगिक प्रजातन्त्रवाद** – श्रम संघ के माध्यम से श्रमिक वर्ग अधिक राजनीतिक एवं आर्थिक शक्ति अर्जित कर लेते हैं। अतः इस शक्ति के आधार पर श्रमिक वर्ग को श्रम–संघ प्रजातन्त्रात्मक रुप से गठित करने में सफल हो जाते है। इस प्रकार श्रम संघ, प्रबन्धकीय एकछत्रता को समाप्त करने, श्रमिकों को संगठित करने तथा उनके लिए कार्यदशाएं उपलब्ध कराने का प्रयास करते हैं।
3. **व्यवसायिक सिद्वान्त** – इस सिद्वान्त के विचारकों के अनुसार श्रम संघ शक्ति सन्तुलन का साधन होते हैं। प्रायः श्रमिक अपना प्रभाव बढ़ाने, कार्य की दशाओं में सुधार करने, अधिक मजदूरी तथा श्रम सम्बन्धों को नियन्त्रित करने के लिए संघ के सदस्य बनते हैं तथा सभी सदस्य प्रतिनिधि के रुप में कार्य करते हैं।
4. **सामाजिक एवं मनौवैज्ञानिक सिद्वान्त** – कुछ विचारकों का मत है कि श्रम संघ विभिन्न व्यक्तियों की मानवीय आवश्यकताओं को सन्तुष्टि करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार संघ की सदस्यता से श्रमिकों में सुरक्षा, अधिकार एवं स्वतन्त्र विचार शक्ति का विकास होता है।
5. **आधुनिक सिद्वान्त** – आधुनिक विचारकों के अनुसार श्रम आन्दोलन का रुप, कार्य परिवर्तन, कार्य की दशाओं में परिवर्तन तथा समाज में परिवर्तन के साथ–साथ परिवर्तित होता है।

यद्यपि भारत में औद्यौगिकरण की शुरुआत 1850 से मानी जाती है, लेकिन श्रम संघ आन्दोलन काफी विलम्ब से प्रारम्भ हुए। उस समय भारतीय उद्योगों के श्रमिकों की कार्य की दशाएं,

इंग्लैंड के उद्योगों में प्रचलित कार्य दशाओं से बहुत निकृष्ट तथा अत्यन्त शोचनीय थी। श्रमिकों की समस्याओं पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। वे कार्य की असहनीय दशाओं के विरुद्ध आवाज उठाने की अपेक्षा उस कार्य अथवा उद्योग को छोड़कर चले जाते थे। उस समय कुछ भारतीय राजनैतिक तथा सामाजिक कार्यकर्ता श्रमिकों के हितों की रक्षा के लिए आगे आये। जिसमें एस.एस. बंगाली (1857) तथा एन.एम. लोखण्डे (1884) का योगदान उल्लेखनीय है। इन्होंने श्रमिकों की दयनीय दशाओं की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया तथा सरकार से श्रमिकों के हितों की रक्षा की मांग की। वर्ष 1875 में सोराबजी शापुरजी के नेतृत्व में तत्कालीन ब्रिटिश सरकार का ध्यान कारखानों की दशाओं की ओर आकृष्ट किया गया। इसी क्रम में कारखाना आयोग की स्थापना (1875), कारखाना अधिनियम (1881), द्वितीय बम्बई कारखाना आयोग (1884) तथा सन् 1884 में ही बम्बई के श्रमिकों द्वारा एक सभा आयोजित की गई। इस सभा में पारित प्रस्ताव पर 5000 से अधिक श्रमिकों के हस्ताक्षर कर द्वितीय कारखाना आयोग, बम्बई के सामने अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया था, इस प्रकार वर्ष 1884 को श्रम आन्दोलन का प्रारम्भिक काल माना जाता है। इसके पश्चात् कुछ महत्वपूर्ण श्रम संघों की स्थापना हुई, जैसे – बम्बई मिल हैण्ड्स एसोसिएसन, 1890; अमलगमेटेड सोसाइटी ऑफ रेलवे सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया एण्ड वर्मा, 1897; प्रिण्टर्स यूनियन कलकत्ता, 1905; बोम्बे पोस्टल यूनियन, 1907; कामगर हितवर्धक सभा, 1910 तथा सोशियल सर्विस लीग, 1910। इसके अतिरिक्त थियोसोफिकल सोसाइटी मद्रास, सर्वेण्ट्स ऑफ इण्डिया सोसाइटी, बम्बई एवं ब्रह्म समाज, बम्बई भी श्रमिक संघों की प्रवर्तन संस्थाएं कही जा सकती हैं। इसी काल में अनेक नियोक्ता संघ तथा उत्पादक संघ भी स्थापित किये गये। इनका उद्देश्य उत्पादकों के अपने हितों की रक्षा करना, मजदूरी, कार्य का समय, विश्राम आदि मामलों में एकरुपता लाने के लिए समान निर्णय लेना आदि था।

श्रम आन्दोलन को गति प्रदान करने में बंगाली एवं लोखण्डे महाशय का योगदान उल्लेखनीय है। इन दोनों की मृत्यु के बाद श्रम संगठन में कुछ वर्षों तक शिथिलता आ गई थी। 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में पुनः आन्दोलन को चेतना प्राप्त हुई जिसके लिए कुछ राजनैतिक कारण उत्तरदायी थे। बंगाल का विभाजन, वर्ष 1905 का स्वदेशी आन्दोलन तथा बाल गंगाधर तिलक की कड़ी सजा भी आन्दोलन में तेजी लाने के लिए उत्तरदायी घटक रहे। इसके बाबजूद भी श्रम आन्दोलन के विकास की गति धीमी रही, क्योंकि श्रमिक वर्ग निर्बल तथा अयोग्य था एवं संगठित श्रमिकों की संख्या भी कम थी।

वर्ष 1918, भारतीय श्रम संघ आन्दोलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण वर्ष कहा जा सकता है, क्योंकि तब श्रम संघ का नेतृत्व समाज सुधारकों से हटकर राजनीतिज्ञों के हाथों में चला गया। प्रथम महायुद्ध की समाप्ति पर श्रम आन्दोलन स्थायी रुप लेने लगा। युद्धजानित परिस्थितियों तथा आर्थिक कठिनाइयों के फलस्वरुप औद्योगिक अशान्ति का वातावरण हो गया था, जिससे वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि तथा श्रमिकों को अपनी आजीविका चलाने के लिए अधिक मजदूरी की मांग करने को बाध्य होकर संगठित होना पड़ा। साथ ही 1917 की रुसी क्रान्ति के सफल होने के कारण भी एक विश्वव्यापी क्रांति का संचार हुआ, जिससे श्रमिकों के अन्दर स्वाभिमान तथा विकास की भावना जागृत हुई। ग्रामीण व्यक्ति भी रोजगार की प्राप्ति के लिए विभिन्न उद्योगों की ओर आने लगे। इस समय तक अनेक श्रम संगठन बन चुके थे। भारतीय नाविक संघ, एम. एण्ड एस. एम. रेलवे मैन संघ, मद्रास एवं मद्रास वस्त्र उद्योग श्रमिक संघ। 1917 से 1919 तक कुछ 17 नये संघ स्थापित हो चुके थे। इस दौरान श्रम संघों का विकास, संघों में पारस्परिक सहयोग, श्रमिकों की अपने अधिकारों के प्रति

जागरुकता तथा विभिन्न अधिनियमों के बनाये जाने से श्रम संघों में दृढ़ता आई। सन् 1920 में राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्तियों ने अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना की। इसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन में भारत से भेजे जाने वाले प्रतिनिधि का चुनाव करना, विभिन्न संघों में समन्वय स्थापित करना तथा श्रमिकों का आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक उत्थान करना था। इसी वर्ष गांधीजी के आह्वान पर अहमदाबाद टेक्सटाइल लेबर एसोसिएसन की स्थापना की गई, इसके सदस्यों की संख्या 16450 हो गई थी। यद्यपि सूती वस्त्र उद्योग में यह आन्दोलन अधिक प्रगति नहीं कर सका, जबकि रेलवे, डाक–तार, जहाजरानी, इन्जीनियरिंग एवं सम्वादवाहन उद्योगों में श्रम आन्दोलन का अधिक विकास हुआ। इस दौरान कई संघों की स्थापना अस्थायी कारणों से भी हुई, जो कि उद्देश्य पूर्ति के बाद पुनः भंग हो गये।

वर्ष 1930 के प्रारम्भ में श्रम संगठन अलग होने लगे। उस समय राष्ट्रीय विचारधारा के व्यक्ति All India Trade Union Congress (AITUC) (एटक) से तथा वामपन्थी एवं पुरानी विचारधारा के साम्यवादी नेता Indian Trade Union Federation (ITUF) तथा Red Trade Union Congress (RTUC) से सम्बद्ध थे। 1932 में बम्बई बैठक में संघ एकता समिति की स्थापना की गई इस समिति ने कुछ ऐसे निर्णय लिये जो ITUF तथा AITUC को मान्य थे। सन् 1931 में अन्तिम निर्णय लिया गया जब दिल्ली में National Federation of Labour (NFL) की स्थापना की गई। जिसमें ITUF का विलीनीकरण कर दिया गया और तब संघ का नया नाम National Trade Union Federation (NTUF) कर दिया गया। AITUC तथा RTUC पृथक इकाईयाँ या संघ ही रहे।

वर्ष 1934 में पं0 हरिहरनाथ शास्त्री की अध्यथता में ट्रेड यूनियन कांग्रेस (TUC) का वार्षिक अधिवेशन हुआ। इसमें कांग्रेस तथा साम्यवादियों में समझौता हो गया तथा RTUC तथा AITUC मिलकर एक हो गये। सन् 1938 में वी0वी0 गिरी के प्रयत्नों से NTUF का भी INTUC में विलय हो गया और इस प्रकार AITUC एक शक्तिशाली संगठन बन गया। इस प्रकार 1934 से 1939 के मध्य श्रम संगठन विघटित नहीं हुए अपितु पहले से विघटित संघों का एकीकरण हुआ।

द्वितीय महायुद्ध के प्रारम्भिक वर्षों (1939) में श्रम आन्दोलन को नई गति मिली। उग्र प्रजातान्त्रिक पार्टी के अधिकांश सदस्यों ने AITUC से अपने को अलग कर दिया और अपना एक अलग संघ Indian Federation of Labour (IFL) बना दिया। वर्ष 1942 में इस फैडरेशन को सरकारी मान्यता प्राप्त हो गई। 1944 तक IFL का तेजी से विकास हुआ। उस समय इसकी सदस्य संख्या 4.7 लाख हो गई थी। 1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के दौरान अनेक कांग्रेसियों तथा समाजवादी नेताओं को जेल में बंद कर दिया गया। विश्वयुद्ध का श्रम संघों की कार्य प्रणाली पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। श्रम संघों में सौदबाजी तथा नियोक्ताओं के साथ विचार विमर्श की क्षमता विकसित हो चुकी थी। इसी काल में श्रम संघों की संख्या में काफी वृद्धि हुई। वर्ष 1939–40 में श्रम संघों की संख्या 667 थी तथा सदस्यता 5.11 लाख थी जो कि 1946–47 में क्रमशः 1833 तथा 13.31 लाख हो गई थी।

वर्ष 1947 में कुछ नेता AITUC संगठन से अलग हो गये और उन्होंने इंण्डियन नेशनल यूनियन कांग्रेस ;प्छज्न्ब्द्ध की स्थापना की। जिसमें श्रमिकों को एक नई दिशा मिली तथा विवादों का निराकरण करने की दृष्टि से नये विचार प्रस्तुत किये गये। इसके संविधान में स्पष्ट है कि किसी विवाद का निवारण आपसी विचार विमर्श, समझौता प्रणाली और अत्यन्त आवश्यकता होने पर पंच–निर्णय अथवा न्यायालय द्वारा किया जाना चाहिए। यह संघ प्रजातन्त्रीय प्रणाली पर आधारित

सिद्वान्त पर विश्वास करता है जो कि भारतीय परम्परा, संस्कृति तथा यहाँ के निवासियों की भावनाओं के अनुरुप है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रम संघ आन्दोलन में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। जैसे– बाहरी तथा अन्तर्राष्ट्रीय प्रभावों का निरन्तर आवागमन, विरोधी विचारधाराओं का प्रभाव तथा राजनीतिक विचारों का पृथक्करण, सरकार का अनिवार्य पंच निर्णय प्रणाली से संबंध एवं नीति निर्धारण, विभिन्न अधिनियिमों द्वारा श्रम संघों को लाभान्वित करना, श्रमिकों द्वारा अपने स्वयं के हितों की रक्षा करने के लिए संगठित होना तथा कार्य की दशाओं में सुधार, छंटनी, सेवा से निवृत्ति आदि परिस्थितियों में सामूहिक मोर्चा लेना तथा कुछ नियोक्ताओं द्वारा श्रमिक संघों को प्रोत्साहन देना आदि।

इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है कि प्रत्येक देश में श्रम संगठन का रुप राजनैतिक दशाओं एवं सामाजिक स्तर पर निर्भर करता है। भारत भी इसका अपवाद नहीं है। भारतीय श्रम संघों का भी विभिन्न राजनीतिक एवं सामाजिक वातावरण के कारण समय–समय पर रुप परिवर्तन होता रहा है। भारत में स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् श्रम संघों को अधिक प्रोत्साहन मिला है, श्रम संघ, राष्ट्रीय संघों के रुप में विकसित हो रहे हैं। नियोक्ताओं ने भी यह अनुभव कर लिया है कि श्रम संगठन विध्वंसकारी संस्थाएं नहीं हैं, अपितु अपने क्रियाकलापों के माध्यम से यह लाभकारी भी सिद्व हुए हैं। सरकार का भी यह मानना है कि औद्योगिक शान्ति एवं उत्पादन वृद्धि के लिए श्रम संघों का होना अनिवार्य है। श्रम संघ राष्ट्रीय निर्माण की दृष्टि से भी अधिक सृजनात्मक एवं रचनात्मक कार्य कर सकते हैं।

16.10 भारतीय श्रम आन्दोलन की कमजोरी एवं समस्याएं

यद्यपि श्रम आन्दोलन के परिणामस्वरुप नियोक्ता तथा सरकार की विचाराधाराओं में परिवर्तन आया है। लेकिन विभिन्न प्रयासों एवं विभिन्न संघों के एकीकरण के बाबजूद भी भारत में आज भी श्रम संघ आन्दोलन विकसित नहीं हो पाये हैं। भारतीय श्रम संघ आन्दोलन अन्य विभिन्न देशों, जैसे– स्वीडन, जर्मनी, ब्रिटेन, यू.एस.ए. रुस आदि की तुलना में निर्बल, अस्थायी एवं बिखरा हुआ है। भारत में श्रम संघ आन्दोलन की कमजोरी (कमियाँ) निम्न प्रकार हैं –

1. **असमान विकास** – भारत में श्रम संघों का विकास सभी उद्योगों में समान रुप से नहीं हुआ है। बागान, कोयला खान, खाद, सूती वस्त्र उद्योग, प्रिटिंग प्रेस, सामाजिक उपयोगी सेवाएं एवं सरकारी प्रतिष्ठानों में श्रम संघों की पर्याप्त प्रगति हुई है। चूंकि बड़े पैमाने के उद्योग विभिन्न औद्योगिक एवं बड़े नगरों में हैं अतः ऐसी जगहों पर ही श्रम संघ अधिक विकसित हो सके हैं, लेकिन कृषि उद्योग, घरेलू उद्योग तथा लघु उद्योगों में श्रमिक प्रायः संगठित नहीं हैं।
2. **लघु स्तरीय श्रम संघों का बाहुल्य** – भारत में अधिकांश श्रम संघों का आकार लघु स्तरीय है, साथ ही इनकी सदस्य संख्या भी काफी कम है। श्रम संघों के छोटा होने का कारण इन संघों के श्रमिकों का बिखरा होना है, जो कि अधिकांशतः छोटे–छोटे व्यवसायों में कार्यरत हैं। इसके अतिरिक्त यहाँ के श्रम संघों के नेतृत्व और केन्द्रीय संगठनों में विरोधी विचारधाराएं होने के कारण श्रम संघों की संख्या तो अधिक है लेकिन औसत सदस्यता काफी कम है।

भारत में चूंकि छोटे श्रम संघों की बहुलता है इस कारण ये संघ वित्तीय दुर्बलता के शिकार भी हैं जिससे ये उचित समय पर कुशल सलाहकारी सहायता लेने में असमर्थ रहते हैं। बढ़ती हुई औद्योगिक जटिलताओं के कारण श्रमिकों के हितों की रक्षा करने हेतु यदि इन श्रम संघों को अधिक संगठित होकर कार्य करने या विशेषज्ञों की सलाह की आवश्यकता हो तो यह श्रम संघ प्रायः अपने

को असहाय महसूस करते हैं। साथ ही सौदेबाजी की शक्ति कम होने के कारण ये संघ लम्बे समय तक नियोक्ता की चुनौती का सामना भी नहीं कर पाते हैं।

3. **श्रमिकों की प्रवासी प्रवृत्ति** – भारत में संगठित श्रमिकों का अभाव है। अधिकांशः श्रमिक ग्रामीण, अशिक्षित एवं अकुशल होने के साथ–साथ प्रवासी हैं। श्रमिक नगरों में मजदूरी हेतु आने के बाद भी अपने सामाजिक, धार्मिक सांस्कृतिक वातावरण तथा कृषि उद्योग के प्रति अपना मोह नहीं छोड़ पाते हैं। प्रवासी प्रवृत्ति के कारण श्रमिक किसी उद्योग विशेष में स्थायी और लम्बी अवधि तक कार्य नहीं कर पाते हैं। इन सभी कारणों से वे कारखाने के वातावरण कार्य दशाओं, मजदूरी आदि के प्रति उदासीन बने रहते हैं। ऐसे श्रमिकों में प्रायः संगठन के प्रति रुचि उत्पन्न नहीं हो पाती है। अधिकाशः श्रम औद्योगिक वर्ग में नहीं आते हैं। फलतः भारतीय श्रम संघों में अल्पायु जैसी स्थिति होती है।

4. **श्रम–संघों की अस्थायी प्रकृति** – भारतीय श्रम संघों की सदस्यता में उतार चढाव पाया जाता है। श्रम संघों के परस्पर वैमनस्य तथा प्रतिद्वन्द्विता के कारण कमजोर श्रम संघ अल्पायु में ही समाप्त हो जाते हैं। प्रतिद्वन्द्वी संघ अन्य सदस्यों में फूट डालने की कोशिश करते हैं। ये संघ प्रायः सदस्यों में जागृति और नेतृत्व के अभाव एवं वित्त की कमी आदि के कारण अधिक समय तक कार्यशील नहीं रह पाते हैं।

5. **वित्त की कमी** – अधिकांश भारतीय श्रम संघ वित्तीय दृष्टि से कमजोर हैं। चूंकि श्रमिक निम्न मजदूरी तथा दरिद्रता के कारण अपने संघ को नियमिति रुप से चन्दा नहीं दे पाते हैं। मजदूरी से वे अपने व परिवार का भरण पोषण ही कर पाते हैं। अतः ऐसी स्थिति में उनके लिए संघों को चन्दा देना सम्भव नहीं हो पाता है। परिणामतः श्रम संघ भी ऐसे श्रमिकों के हितों के लिए कोई कल्याणकारी कार्य नहीं कर पाते हैं और न ही आवश्यकता पड़ने पर वित्तीय सहायता प्रदान कर पाते हैं। इस कारण श्रमिकों का संघ के प्रति विश्वास कम हो जाता है।

6. **श्रम संघों की अधिकता** – भारत में छोटे बड़े अनेक श्रम संघ हैं। साथ ही श्रम संघों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा भी पायी जाती है। विभिन्न प्रतिद्वन्द्वी श्रम संघों, विरोधी विचारधाराओं तथा राजनैतिक हस्तक्षेपों आदि के कारण श्रम संघों का विकास अवरुद्ध हुआ है। एक ही संगठन में नए एवं पुराने कर्मचारियों के समूह, ऊंची एवं निम्न जाति के समूह आदि के रुप में विभिन्न छोटे–छोटे समूह या संगठन का निर्माण हो जाता है। फलस्वरुप अन्तर्संघीय विवादों के कारण संघों की शक्ति कमजोर हो जाती है। अधिकांश श्रम संघ लाभान्वित करने में प्रायः असफल रहते हैं। अधिकांश श्रम संघ परस्पर सहायता एवं कल्याणकारी कार्यों की ओर ध्यान नहीं दे पाते हैं।

7. **बाहरी नेतृत्व** – भारतीय श्रम संघों का नेतृत्व प्रारम्भ से ही श्रमिक वर्ग द्वारा नहीं अपितु राजनीतिज्ञों, वकीलों समाज सुधारकों अथवा पेशेवर व्यक्तियों के हाथों में रहा है। इन बाहरी व्यक्तियों का मूल उद्‌देश्य अपना महत्व बढाना तथा व्यक्तिगत हितों में वृद्धि करना रहा है। इस कारण ऐसे व्यक्ति श्रमिकों की प्रत्यक्ष सम्पर्क में भी नहीं होते हैं। अतः वे श्रमिकों को लाभान्वित करने में प्रायः असफल रहते हैं।

8. **बाह्य साधनों पर निर्भरता** – भारतीय श्रम संगठनों की आन्तरिक दशाओं की कमजोरी के कारण बाह्य संसाधनों पर निर्भरता बढ़ गई है। जिस कारण श्रम संगठनों की स्वतन्त्रता में काफी कमी आ गई है। जिस कारण संगठन के नेतृत्व में योग्यता एवं अनुभव का भी अभाव है। श्रम आन्दोलन के विकास के लगभग 100 वर्षों बाद भी इसका अपना कोई दर्शन नहीं है। आन्तरिक दृष्टि

से अभी तक भारतीय श्रम आन्दोलन राजनीतिक संयन्त्र पर निर्भर हैं तथा बाहरी तौर पर उसे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम क्रियाओं पर आश्रिम रहना पड़ता है।

9. **श्रमिकों की भिन्नताएं** – भारतीय श्रम संघों की स्थिति ऐसी है कि एक ओर नियोक्ता विभिन्न संस्थाओं तथा आर्थिक एवं राजनैतिक संगठनों के रुप में सशक्त होते हैं, जबकि दूसरी ओर श्रमिक अत्यन्त निर्धन, अशिक्षित एवं अपने अधिकारों के प्रति अनभिज्ञ होते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिक वर्ग प्रायः जाति, धर्म, भाषा, वर्ण आदि के आधार पर बंटे हुए हैं जिस कारण श्रमिक वर्ग आपस में संगठित नहीं हो पाते हैं।

श्रम आन्दोलन की उपरोक्त वर्णित कमजोरी एवं विभिन्न समस्याओं के बाबजूद भी श्रम आन्दोलन आर्थिक, राजनैतिक एवं सामाजिक दृष्टि से लाभकारी सिद्व हुए हैं। आर्थिक दृष्टि से देखा जाए तो श्रमिकों के स्तर में पहली की अपेक्षा सुधार हुआ है। राजनीतिक दृष्टि से पूंजीवाद विरोध, पूंजी के असमान वितरण पर विरोध तथा समाजवादी विचारधारा का जन्म हुआ है। सामाजिक दृष्टिकोण से राष्ट्रीय एकता को बल मिला है। श्रमिकों में परस्पर भेदभाव में कमी आई है।

16.11 श्रम आन्दोलन को सुदृढ़ बनाने के उपाय

भारत में श्रम आन्दोलन विभिन्न प्रयासों के बाबजूद विकसित नहीं हो सके है। श्रम समस्याएं अत्यधिक जटिल हैं। अतः उन्हें पूर्ण रुप से समाप्त तो नहीं किया जा सकता, लेकिन विभिन्न प्रयासों से कुछ सीमा तक कम अवश्य किया जा सकता है। वर्तमान में जिस गति से औद्योगिक वातावरण में अशान्ति की समस्या में वृद्धि हो रही है, उसे कम करने के उद्देश्य से श्रम आन्दोलन को सशक्त किये जाने की आवश्यकता है। श्रम आन्दोलन को सशक्त एवं सुदृढ़ बनाने हेतु निम्न सुझावों पर अमल किया जा सकता है–

1. **नेतृत्व परिवर्तन की आवश्यकता** – श्रम आन्दोलन का नेतृत्व प्रारम्भ से ही राजनीतिक, वकीलों समाज सुधारक जैसे औद्योगिक वातावरण से बाहरी व्यक्तियों द्वारा किया जाता रहा है। परिणामतः अनेक बार श्रमिक हितों का ध्यान नहीं रखा गया। अतः यह आवश्यक है कि श्रम आन्दोलन का नेतृत्व श्रमिक वर्ग से ही किया जाए। ऐसा किये जाने से श्रम आन्दोलन को वांछित गति मिल सकेगी। इस दिशा में श्रमिकों को पहल करनी चाहिए तथा श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम शुरु करने चाहिए। शिक्षित श्रमिक वर्ग अपने हितों के प्रति जागरुक अधिक होगा तथा संघ के नेतृत्व को भी भंली–भांति संभाल सकता है। ऐसा होने पर श्रम संघ प्रजातन्त्रात्मक आधार पर चलाए जा सकेंगे, साथ ही स्वयं को राजनैतिक प्रभाव से स्वयं को मुक्त करने में समर्थ हो सकेंगे और संघों की कार्य प्रणाली का संचालन अधिक कुशलतापूर्वक हो सकेगा।
2. **श्रम–संघों का कार्यसंचालन वेतन प्राप्त कर्मचारियों द्वारा होना** – श्रम संघों का कार्य आज भी पुरानी परम्परानुसार बिना वेतन प्राप्त कर्मचारियों द्वारा किया जाता है, लेकिन ऐसी व्यवस्था में नियुक्त कर्मचारी, संघ के कार्यों में पर्याप्त रुचि नहीं लेते, फलतः वे संघ का कार्य उचित ढंग से नहीं कर पाते। अतः यह आवश्यक है कि संघों के कार्य संचालन हेतु सवेतन कार्यकत्ताओं की नियुक्ति की जानी चाहिए। ऐसे कर्मचारी निष्ठावान तथा संघ के उत्तरदायित्वों एवं कार्यों को भली–भांति निर्वहन करने वाले होने चाहिए। ऐसे कर्मचारियों की नियुक्ति से श्रम संघों का तकनीकी विकास भी सम्भव होगा।
3. **श्रम संघों का सशक्त होना** – भारतीय श्रम संघों में अत्यधिक राजनैतिक मतभेद, संसाधनों का अभाव, वर्ग भेद, श्रम संघों की अधिकता एवं सौदेबाजी की क्षमता का अभाव है। अतः

श्रम संघों को सशक्त करने की आवश्यकता है। श्रम संघों को विघटनकारी प्रवृत्तियों की अपेक्षा रचनात्मक कार्यों की ओर रुचि लेनी चाहिए। यह श्रमिक एवं संगठन दोनों के लिए लाभकारी होगा। इसके अतिरिक्त श्रम संगठन विभिन्न संगठनों से सम्बद्ध न होकर एक या कुछ एक संगठनों से ही सम्बद्ध हों, जिससे एक समान कार्यक्रम बनाया जा सके और उसे उचित रुप से लागू किया जा सके।

4. **एक उद्योग में एक ही संघ का होना** – किसी संस्थान, इकाई या उद्योग विशेष में एक से अधिक संघ नहीं होने चाहिए, इससे संघीय विवाद होने की सम्भावना बढ़ती है तथा श्रम संघ आन्दोलन कमजोर पड़ते हैं। उनकी सामूहिक सौदेबाजी की क्षमता भी कमजोर हो जाती है और वे अपनी जायज मांगों को पूरा करवाने में भी स्वयं को असमर्थ पाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि एक उद्योग में एक ही संघ हो, ताकि संघों के आपसी विवाद समाप्त हो सकेंगे तथा संघों को स्वार्थी राजनीति से भी छुटकारा मिल सकेगा।
5. **श्रम–संघों को मान्यता आवश्यक** – सशक्त श्रम संघों के लिए यह आवश्यक है कि नियोक्ता श्रम संघों को मान्यता प्रदान करें। जब तक नियोक्ता श्रम संघों को मान्यता नहीं देते, तब तक सशक्त श्रम संघों का विकास नहीं किया जा सकता है। क्योंकि श्रम संघ यदि अल्पसंख्यक हों लेकिन मान्यता प्राप्त हों, तो वे अपनी मांगों को पूरा करवाने में समर्थ होते हैं। अतः श्रम संघों को मान्यता अवश्य प्रदान की जानी चाहिए।
6. **केन्द्रीय स्तर पर संयुक्त संघ की आवश्यकता** – भारत में श्रम आन्दोलन को सुदृढ़ एवं विकसित बनाने के लिए यह आवश्यक है कि केन्द्रीय स्तर पर एक संयुक्त संघ बनाया जाए, जो कि सभी श्रम संघों के लिए शीर्ष संस्था के रुप में कार्य करे। ऐसा होने पर सम्पूर्ण श्रम आन्दोलन को एक नई गति मिल सकेगी, कार्यक्रमों का उचित अनुसरण एवं क्रियान्वयन किया जा सकेगा और सरकार के समक्ष श्रमिकों की समस्याओं को प्रभावी ढंग से प्रस्तुत किया जा सकेगा।
7. **श्रम संघ अधिनियम में संशोधन की आवश्यकता** – यद्यपि श्रम संघ अधिनियम 1926 में अनेक संशोधन किये जा चुके हैं, लेकिन आधुनिक औद्योगिक वातावरण में श्रमिक एवं नियोक्ता के दृष्टिकोण में अनेक परिवर्तन आये हैं, औद्योगीकरण में अनेक सामाजिक एवं व्यक्तिगत मान्यताएं भी परिवर्तित हो गई हैं। अतः यह आवश्यक है कि श्रम संघ अधिनिमय में कुछ परिवर्तन एवं संशोधन किये जाँए ताकि श्रमिक और नियोक्ताओं के मध्य उत्पन्न विवाद का निराकरण करने में अधिनियम का सहारा लिया जा सके।

16.12 सारांश

श्रम संघ किसी संगठन में वेतन/मजदूरी प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का एक दीर्घकालिक एवं ऐच्छिक संगठन होता है। यह संघ अपन सदस्यों को उनके सामान्य हितों की उपलब्धियों एवं रक्षा के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। श्रम संघों का मुख्य उद्देश्य संघ के सदस्यों पर होने वाले शोषण से बचाकर उन्हें आर्थिक एवं सामाजिक रुप से सशक्त बनाना होता है ताकि श्रमिकों की स्थिति को उद्योग एवं समाज में बेहतर बनाया जा सके। श्रम संघों का मुख्य कार्य अपने सदस्य श्रमिकों/कर्मचारियों के कार्य की दशाओं में सुधार करना तथा उनके हितों की रक्षा करना होता है।

श्रम संघों का नियमन कुछ आधारभूत सिद्वान्तों के आधार पर किया जाता है जिनमें सन्निहित हितों का सिद्वान्त, मांग व पूर्ति का सिद्वान्त, आजीविका मजदूरी का सिद्वान्त सहभागिता एवं समाजवाद का सिद्वान्त सम्मिलित है। श्रम संघों को सदस्यता, भौगोलिक, अधिकार सत्ता की प्रकृति,

देश में विद्यमान सरकार की प्रवृति आदि के आधार पर विभिन्न वर्गों में बाँटा जा सकता है। श्रम संघ का महत्व मात्र श्रमिक वर्ग को ही नहीं अपितु उद्योगों के प्रबन्धकों (नियोक्ताओं), समाज तथा राष्ट्र सभी के लिए है। किसी देश के औद्योगिक विकास एवं सामाजिक विकास के लिए श्रम संघ की अत्यन्त महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

भारत में श्रम आन्दोलन, औद्योगीकरण की प्रक्रिया के काफी समय पश्चात् प्रारम्भ हुआ। भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन राजनैतिक दलों के सानिध्य में विकसित हुए हैं और इन पर इन राजनैतिक दलों की विचारधाराएं प्रभावी भी रही हैं। विभिन्न प्रयत्नों के बाबजूद श्रम संघ आन्दोलन अभी तक विकसित नहीं हो सके हैं। विकसित देशों की अपेक्षा हमारे देश में श्रम संघ आन्दोलन निर्बल, अस्थायी तथा बिखरे हुए हैं। जिस कारण आज भी इनके सुदृढ़ विकास हेतु कुछ प्रयत्न एवं सुझावों की आवश्यकता महसूस हो रही है। यदि श्रम संघों के नेतृत्व में बाहरी व्यक्तियों के स्थान पर श्रमिकों का प्रतिनिधित्व हो तथा अन्तर्संघीय विवाद को समाप्त करने के लिए एक उद्योग/संस्थान में एक ही संघ और सशक्त संघ हो, तो श्रम संघ आन्दोलन के विकास को भारतीय परिप्रेक्ष्य में गति मिल सकेगी।

16.13 शब्दावली

प्रबन्धकीय एकाधिकार – प्रबन्ध वर्ग द्वारा स्वयं लिये जाने वाले निर्णय, जो अधीनस्थ कर्मचारियों पर थोपे जाते हैं।

वर्ग संघर्ष – किन्हीं दो वर्गों (उदाहरणार्थ–श्रमिक एवं नियोक्ता अथवा विभिन्न संघों के सदस्य) के मध्य विवाद की स्थिति।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद – कार्ल मार्क्स के दर्शन को द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के नाम से जाना जाता है। उनके अनुसार किसी समाज में क्रान्तिकारी परितर्वन लाने हेतु श्रमिकों का संगठन जरुरी है।

संघेय शक्ति – सामूहिक शक्ति

सन्निहित हित – सम्बन्धित व्यक्ति का हित

आजीविका मजदूरी – वह मजदूरी, जिससे मजदूर अपने और अपने परिवार की आजीविका चलाता है।

प्रवासी प्रवृत्ति – एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने की प्रवृत्ति

16.14 बोध प्रश्न

(अ) निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों को भरिये –

1. श्रम संघ कर्मचारियों का एक ....है, जो श्रमिकों का स्तर सुधारने तथा कार्य की दशाएं सुधारने का कार्य करता है।
2. डॉ0 ब्राउटन ने श्रम संघ के कार्यों को .... भागों में वर्गीकृत किया है।
3. .... संघों में अधिकार सत्ता पदाधिकारियों में निहित होती है।
4. श्रमिकों की ....प्रवृत्ति श्रम आन्दोलन की एक मुख्य समस्या है।
5. श्रम आन्दोलन को सशक्त बनाने हेतु एक उद्योग में ....संघ होना चाहिए।

(ब) निम्न कथनों में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

1. AITUC भारत में सबसे पुराना श्रम संघ है।
2. छात्र संघ, श्रम संघ का प्रारुप है।
3. संघेय शक्ति, श्रम संघ की एक विशेषता है।

4. श्रम संघ अधिनियम, 1926 वर्ष 1982 में संशोधित किया गया है।
5. श्रम संघों को सदस्यता के आधार पर पाँच वर्गों में बांटा गया है।

16.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)

1. संगठन	2. तीन	3. एकात्मक	4. प्रवासी	5. एक

(ब)

1. सही	2. गलत	3. सही	4. सही	5. गलत

16.16 स्वपरख प्रश्न

1. श्रम–संघ से आपका क्या तात्पर्य है? श्रम–संघ के विभिन्न उद्देश्यों का वर्णन कीजिए।
2. श्रम–संघ का क्या अर्थ है? इसके विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
3. श्रम संघों के विभिन्न कार्यों का वर्णन कीजिए तथा किसी राष्ट्र में श्रम संघों का क्या महत्व है?
4. भारत में श्रम–संघ आन्दोलन पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए।
5. भारतीय श्रम–आन्दोलन की क्या कमियाँ रही हैं? इसे सुदृढ़ बनाने हेतु कुछ सुझाव दीजिए।

16.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979।

इकाई 17 सामूहिक सौदेबाजी (Collective Bargaining)

इकाई की रुपरेखा

17.1 प्रस्तावना
17.2 सामूहिक सौदेबाजी का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं
17.3 सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता
17.4 सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया
17.5 सामूहिक सौदेबाजी की विषय–वस्तु
17.6 सामूहिक सौदेबाजी के सिद्वान्त
17.7 सामूहिक सौदेबाजी के प्रकार
17.8 सामूहिक सौदेबाजी के कार्य
17.9 भारत में सामूहिक सौदेबाजी
17.10 भारत में सामूहिक सौदेबाजी की असफलता के कारण
17.11 भारत में सामूहिक सौदेबाजी को प्रभावी बनाने हेतु सुझाव
17.12 सारांश
17.13 शब्दावली
17.14 बोध प्रश्न
17.15 बोध प्रश्नों के उत्तर
17.16 स्वपरख प्रश्न
17.17 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे किः

- सामूहिक सौदेबाजी का अर्थ, आवश्यकता तथा प्रक्रिया को समझ सकें।
- सामूहिक सौदेबाजी की विषय–वस्तु एवं सिद्धातों को समझ सकें।
- सामूहिक सौदेबाजी के प्रकारों तथा कार्यों को समझ सकें।
- भारत में सामूहिक सौदेबाजी असफल क्यों रही है? तथा इसकी असफलता को दूर करने के उपायों को समझ सकें।

17.1 प्रस्तावना

सामूहिक सौदेबाजी, नियोक्ता एवं श्रमिकों के मध्य उत्पन्न समस्याओं के निदान के लिए एक समझौते की प्रक्रिया है। यह एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा नियोक्ता एवं श्रमिक, अपने संस्थान में 'अच्छे कर्मचारी–नियोक्ता संबंध' के निर्माण के लिए समझौता करते हैं। इस इकाई में आप सामूहिक समझौते के अर्थ, आवश्यकता, सिद्धान्त तथा कार्य आदि का अध्ययन करेंगे। साथ ही भारत में सामूहिक समझौते की असफलताओं के कारणों से भी अवगत होंगे एवं इन असफलताओं को दूर करने के उपायों को भी समझ सकेंगे।

17.2 सामूहिक सौदेबाजी का अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताएं

'सामूहिक सौदेबाजी' दो शब्दों से मिलकर बना है – सामूहिक और सौदेबाजी। 'सामूहिक' शब्द से तात्पर्य किन्हीं सम्बन्धित व्यक्तियों के विशेष समूह से है (यहाँ इसका आशय श्रमिक एवं नियोक्ता वर्ग से है) 'सौदेबाजी' से तात्पर्य दो पक्षों द्वारा एक दूसरे के साथ मोल–भाव (सौदा) करने की प्रक्रिया से है। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी वह प्रक्रिया है जिसमें श्रमिक एवं नियोक्ता सेवा की शर्तों एवं कार्य की दशाओं के संबंध में पारस्परिक विचार विमर्श द्वारा कोई निश्चित अनुबंध या समझौता करते हैं।

किसी समस्या के निराकरण के लिए नियोक्ता एवं श्रमिकों के मध्य होने वाली वार्तालाप की प्रक्रिया को सामूहिक सौदेबाजी कहा जाता है। यह एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा दोनों पक्ष अच्छे कर्मचारी संबंधों के निर्माण हेतु समझौता करते हैं। इस समझौता प्रणाली के माध्यम से श्रमिकों के हितों में वृद्धि का प्रयत्न किया जाता है।

परिभाषाएं –

सामाजिक ज्ञान शब्दकोष के अनुसार, ''सामूहिक सौदेबाजी दो पक्षों के मध्य वाद–विवाद तथा विचार आदान–प्रदान की एक प्रणाली है जो एक अथवा दोनों पक्षों के कुछ व्यक्तियों के समूह के बीच हो सकती है। विचार विमर्श का निर्णय कार्यकारी दशाओं तथा नियोजन संबंधी समझौतों का रुप लेता है। अधिक स्पष्ट रुप में सामूहिक सौदेबाजी वह प्रणाली है जिसमें नियोक्ता एवं कर्मचारी–समूह, कार्य की दशाओं से संबंधित कोई समझौता करते हैं।''

रिचर्डसन के अनुसार, ''सामूहिक सौदेबाजी तब सम्भव है जब किसी श्रमिक मिलकर विचारों के आदान प्रदान का यह प्रयास नियोक्ता अथवा उनके समूह के साथ सामूहिक रुप से कोई समस्या के निवारण हेतु करें। यह विवाद रोजगार की शर्तों तथा श्रमिकों से संबंधित होना चाहिए।''

फिलिप्पो के अनुसार ''सामूहिक सौदेबाजी से आशय उस प्रक्रिया से है जिसके अन्तर्गत श्रम संगठनों के प्रतिनिधि तथा व्यवसायिक संगठन के प्रतिनिधि मिलते है तथा एक समझौता या अनुबंध करने का प्रयास करते हैं जो कर्मचारियों एवं सेवायोजक संघ के संबंधों की प्रकृति का निर्धारण करता है।''

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामूहिक सौदेबाजी श्रमिकों तथा नियोक्ता के संगठित संघों (दलों) या प्रतिनिधियों के माध्यम से सेवा की सम्पूर्ण शर्तों के संबंध में सामूहिक विचार विमर्श द्वारा कोई सौदा या समझौता करने की प्रक्रिया का नाम है।

विशेषताएं : सामूहिक सौदेबाजी की विशेषताओं का वर्णन निम्न प्रकार किया जा सकता है –

1. **सामूहिक कार्यवाही** – सामूहिक समझौते के अन्तर्गत कर्मचारी (श्रमिक) एवं नियोक्ता (प्रबन्धक वर्ग) के प्रतिनिधियों के बीच परस्पर सहयोग कर कार्यवाही की जाती है।
2. **गतिशील प्रक्रिया** – किसी भी औद्योगिक इकाई में विवाद अथवा समस्याओं का होना स्वाभाविक है। अतः इनके निपटारे के लिए सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।
3. **व्यापाक प्रक्रिया** – सामूहिक सौदेबाजी में अनेक गतिविधियों या क्रियाएं सम्मिलित की जाती हैं। इसमें साथ मिलकर बैठने, मांग प्रस्तुत करने, विचार विमर्श करने, प्रस्ताव व प्रति–प्रस्ताव करने, मोल–भाव (सौदा) करने, फुसलाने, घमकाने आदि अनेक गतिविधियाँ की जाती हैं।
4. **जटिल प्रक्रिया** – विवाद सम्बन्धित किसी मामले के समाधान की स्थिति में दूसरे पक्ष को सन्तुष्ट करना आसान नहीं होता है अतः इसके लिए विभिन्न प्रकार के आंकड़ों, तथ्यों, सूचनाओं आदि का एकत्रीकरण, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण एवं निर्वचन आवश्यक होता है।

5. **द्विपक्षीय कार्यवाही** – सामूहिक सौदेबाजी एक पक्षीय प्रक्रिया नहीं है, बल्कि दोनों पक्ष सामूहिक रुप से विचार विमर्श करते हुए निर्णय लेते हैं। इसमें कोई भी कार्यवाही दोनों पक्षों की सहमति के बाद होती है। नियोक्ता या श्रम संघ स्वेच्छा से कोई कार्यवाही नहीं कर सकता है।
6. **औद्योगिक प्रजातन्त्र का रुवरुप** – सामूहिक सौदेबाजी अपनी मांगों, अधिकारों एवं हितों को मनवाने का प्रजातान्त्रिक ढंग है। इसमें विभिन्न तर्कों, मोल–भाव तथा स्वतन्त्र वार्ता के आधार पर सामूहिक रुप से परस्पर सौदेबाजी करके दोनों पक्षों को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया जाता है।
7. **दोनों पक्ष लाभान्वित** – इस प्रक्रिया में नियोक्ता एवं श्रमिक वर्ग दोनों पक्षों के हितों का ध्यान रखा जाता है, इससे दोनों पक्षों की प्रतिष्ठा, मान सम्मान, लाभ एवं सन्तुष्टि में वृद्धि होती है। इस प्रक्रिया से पारस्परिक सहयोग की भावना को भी बल मिलता है।
8. **बाह्य हस्तक्षेप नहीं** – सामूहिक सौदेबाजी के अन्तर्गत किसी तृतीय (बाहय) पक्षकार का हस्तक्षेप नहीं होता है। इसमें किसी भी विवाद का निपटारा नियोक्ता एवं श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधियों के मध्य पारस्परिक विचार विमर्श से किया जाता है।

17.3 सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता

नियोक्ताओं एवं श्रमिकों के मध्य सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता तब होती है, जब किसी औद्योगिक इकाई में उपरोक्त वर्गों की कुछ समस्याओं का निराकरण करना आवश्यक होता है। सामूहिक सौदेबाजी में नियोक्ता और श्रमिकों के प्रतिनिधि सामूहिक रुप से संबंधित समस्या पर विचार विमर्श करते हैं। इस प्रक्रिया से सामान्यतः दोनों पक्षों के मध्य अच्छे संबंधों का विकास भी दिखाई देता है। इससे प्रायः नियोक्ता द्वारा लिये जाने वाले एक पक्षीय निर्णय पर रोक लगती है तथा श्रमिक पक्ष को बेहतर सुरक्षा तथा आर्थिक सुविधाएं प्राप्त होती हैं। सामूहिक समझौते की आवश्यकता को सामान्यतः निम्नलिखित वर्गों में वर्णित किया जा सकता है –

(अ) **प्रबन्धक के दृष्टिकोण से** – किसी भी संस्था/इकाई का प्रबन्धक अपने लक्ष्यों को तभी प्राप्त कर सकता है जब वहाँ कार्यरत कर्मचारी एवं श्रमिक वर्ग का उसे सहयोग मिलता रहे, इसके लिए नियोक्ता या प्रबन्धक द्वारा, श्रमिक वर्ग को संन्तुष्ट किया जाना नितान्त जरुरी है। दोनों पक्षों के मध्य विवादों के कारण कुछ दशाओं में स्पष्ट होते हैं और कभी मात्र अफवाह भी हो सकते हैं। इन विवादों का समाधान करने हेतु सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता होती है।

(ब) **श्रमिक के दृष्टिकोण से** – श्रमिक के श्रम की प्रकृति नाशवान होने के कारण व्यक्तिगत रुप से वह नियोक्ता से सौदेबाजी करने में प्रायः असमर्थ रहता है। अतः नियोक्ता, श्रमिकों का मनमाने ढंग से शोषण करते हैं। ऐसी स्थिति में श्रमिक सामूहिक रुप से अपनी न्यायोचित मांगो को पूरा करने के लिए संगठित रुप में नियोक्ता से बातचीत करने में सक्षम हो जाते हैं। इस प्रकार शोषण से मुक्ति प्राप्त करने में सामूहिक सौदेबाजी की भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है।

(स) **श्रम–संघ के दृष्टिकोण से** – श्रम–संघ के अन्तर्गत सम्मिलित श्रमिकों की व्यक्तिगत समस्याओं (जैसे –भविष्य में रोजगार या उचित मजदूरी मिलने की अनिश्चितता अथवा कार्य दिवस, कार्य घंटे, कार्य अवकाश संबंधी अनिश्चितता) का समाधान नियोक्ता के साथ मिलकर श्रम संघ सामूहिक सौदेबाजी के माध्यम से करते हैं।

(द) **सरकार के दृष्टिकोण से** – श्रम संबंधों को सुधारने हेतु सरकार विभिन्न अधिनियम एवं नियमों को बनाती है और उन्हें लागू करती है। सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया में सरकार द्वारा बनाये

गये एवं विभिन्न अधिनियमों में वर्णित नियम एवं कानूनों को आधार बनाया जाता है और इस प्रकार सरकार, नियमों को क्रियान्वित (लागू) करके औद्योगिक वातावरण को शान्तिपूर्ण बनाने में सक्षम हो पाती है।

17.4 सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया

चूंकि सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता किसी औद्योगिक या श्रमिक समस्या के निवारण के लिए होती है। अतः प्रबन्धक वर्ग तथा श्रम संघ, सरकारी नियमों के अनुसार, पर्याप्त मात्रा में विचार विमर्श करते हैं। नियोक्ता एक तरफा निर्णय नहीं ले सकते, उन्हें औद्योगिक प्रजातन्त्र को बनाये रखने हेतु सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया का सहारा लेना पड़ता है।

सामूहिक सौदेबाजी प्रक्रिया के निम्नलिखित प्रमुख चरण है –

- प्रारम्भिक चरण
- वार्ताकारों का चयन
- सौदेबाजी की व्यूह रचना
- सौदेबाजी की युक्तियां
- अनुबन्ध
- अनुबन्ध का क्रियान्वयन

1. **प्रारम्भिक चरण** – वास्तव में सौदेबाजी की प्रक्रिया वार्ता के पूर्व ही प्रारम्भ हो जाती है। यह चरण वास्तव में वार्ता से पूर्व का चरण कहा जाता है। यह चरण सौदेबाजी के लिए उपर्युक्त वातावरण के निर्माण एवं तैयारी का चरण है। इस चरण में दोनों पक्षकार कुछ आवश्यक बातों के संबंध में जानकारी प्राप्त करते है। इसमें प्रायः दो कार्य सम्पन्न किये जाते हैं –

(अ) **मांग पत्र प्रस्तुत करना** – सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया सामान्यतः तभी शुरु हो जाती है जब श्रम संघ अपना मांग–पत्र, प्रबन्धवर्ग के सम्मुख विचार विमर्श हेतु रखता है। प्रायः संघ अपनी मांगें प्रबन्धकों के सामने रखने से पूर्व अपने सदस्यों से स्वीकृति एवं अनुमोदन प्राप्त कर लेता है। इसके अतिरिक्त यह जानकारी भी प्राप्त कर लेता है कि मांग पत्र के मामलों में नियोक्ता का दृष्टिकोण क्या रहेगा? वार्ता के असफल होने पर नियोक्ता व प्रबन्धकों का क्या रुख रहेगा? अपने पक्ष को प्रभावपूर्ण तरीके से कैसे प्रस्तुत कर पायेगा? इस हेतु वह विभिन्न प्रकार की आवश्यक तैयारियाँ करता है, जैसे – मामले से संबंधित आवश्यक तथ्य व आंकड़े एकत्र करना, अपने तर्क तैयार करना, आवश्यक प्रमाण तैयार करना इत्यादि।

(ब) **आवश्यक तथ्यात्मक जानकारी प्राप्त करना** – श्रम संघ द्वारा मांग–पत्र प्रस्तुत किये जाने के पश्चात नियोक्ता भी विभिन्न बातों पर विचार करते हुए वार्ता की तैयारी करता है। वह अपनी शक्ति का मूल्यांकन करता है तथा संस्था पर पड़ सकने वाले दुष्प्रभावों पर भी विचार करता है साथ ही उसे अपनी दुर्बलताओं एवं क्षमताओं का विश्लेषण भी कर लेना होता है।

2. **वार्ताकारों का चयन** – सामूहिक सौदेबाजी के लिए वार्ता करने के लिए अनेक सभाएं की जाती हैं। इन सभाओं में भाग लेने हेतु नियोक्ता एवं श्रमिक वर्ग को अपने–अपने प्रतिनिधियों का चुनाव करना होता है। यह चयन सामूहिक सौदेबाजी की सफलता के लिए

बहुत सावधानी से किया जाना चाहिए। चयन करते समय इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि वार्ता करने वाले कार्य की दशाओं, श्रम–प्रबन्ध संबंधों एवं अन्य आवश्यक बातों से पूर्णतया परिचित हैं और इस योग्य भी हैं कि वे वार्ता को सफल बनाकर किसी समझौते पर सहमत हो सकेंगे।

सामान्यतः वार्ताकार के लिए प्रबन्धक या नियोक्ता वर्ग के प्रतिनिधि के रुप में सेविवर्गीय प्रबन्धक, प्रबन्धक संचालक अथवा श्रम कल्याण अधिकारी तथा श्रमिक वर्ग की तरफ से श्रम संघ के अध्यक्ष, अथवा सचिव हो सकते हैं। वार्ता में ऐसे प्रभावी व्यक्ति भी चुने जाने चाहिए, जिन्होंने पूर्व में भी समझौते कराये हों तथा जिनका प्रभाव श्रमिकों एवं प्रबन्धकों के मध्य अच्छा हो।

3. **सौदेबाजी की व्यूह रचना** – वार्ताकारों के चयन के उपरान्त सौदेबाजी की व्यूह रचना का निर्धारण किया जाता है। व्यूह रचना में वे आधार सम्मिलित होते हैं जिनकी सीमाओं में रहकर पक्षकार अपनी वार्ता सम्पन्न करते हैं। व्यूह रचना वे आधारभूत सिद्वान्त एवं नीतियाँ हैं जिनके द्वारा सौदेबाजी को नियन्त्रित किया जाता है। प्रबन्धक को चाहिए कि सभा–कक्ष में प्रवेश करने से पूर्व मूलभूत योजनाओं एवं नीतियों को निर्धारित कर ले तथा आवश्यक अधिकार प्राप्त कर ले, ताकि समझौते करने में कोई कठिनाई ना आये और संगठन द्वारा उसे आसानी से लागू किया जा सके। प्रबन्धकों को इस बात पर पूर्व में अपनी व्यूह रचना बना लेनी चाहिए कि हड़ताल की धमकी देने की दशा में क्या रुख अपनाया जाना चाहिए।
4. **सौदेबाजी की युक्तियाँ** – सौदेबाजी की व्यूह रचना तय हो जाने के पश्चात दोनों पक्षों के बीच वार्ता प्रारम्भ होती है। दोनों पक्षों की ओर से प्रस्ताव एवं प्रति–प्रस्ताव रखे जाते हैं। जिनके द्वारा वे एक–दूसरे को प्रभावित करने का प्रयास करते हैं। इस दौरान वे विभिन्न प्रकार की युक्तियों का सहारा लेते हैं। सौदेबाजी की युक्तियों से आशय, वार्ता के दौरान की जाने वाली विशेष प्रकार की कार्यवाहियों से हैं। प्रबन्धक वर्ग प्रायः यह प्रयत्न करता है कि सम्पूर्ण मांगों पर एक साथ विचार–विमर्श किया जाए, जबकि श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधियों द्वारा यह युक्ति अपनाई जाती है कि उनकी मांगों पर एक–एक करके विचार किया जाए। प्रबन्धक या नियोक्ता वर्ग वार्ता को अधिक लम्बे समय तक चलाने की युक्ति अपनाते हैं ताकि लम्बे समय तक वार्ता होने पर श्रमिक वर्ग के प्रतिनिधियों का मांगों के प्रति ध्यान कम हो जाय, या उनका धैर्य तथा शक्ति कमजोर हो जाए। इसके विपरीत श्रमिक संघ इस बात के लिए उत्सुक होते हैं कि विवादों का निपटारा शीध्र हो। दोनों पक्ष अपने हितों की सुरक्षा के लिए यद्यपि विभिन्न युक्तियों का सहारा लेते है फिर भी यह ध्यान रखने की आवश्यकता है कि मानवीय तत्व की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए अन्यथा संबंधों में कटुता आ जाती है, और शीध्र ही नये विवादों का जन्म हो सकता है।
5. **अनुबन्ध** – सामूहिक सौदेबाजी में दोनों पक्षकार विभिन्न युक्तियों का प्रयोग करते हुए एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुंच जाते हैं। निष्कर्षों के रुप में जो बातें तय होती हैं, उन्हें लिखकर एवं दोनों पक्षकारों के प्रतिनिधियों से हस्ताक्षर करवा लिये जाते हैं। जो इस बात का प्रमाण होता हैं कि निष्कर्ष रुप में जो बातें लिखी गई है उस पर दोनों पक्षों के प्रतिनिधि सहमत हैं और उस पर अपनी लिखित स्वीकृति दे रहे हैं। इस प्रकार सामूहिक रुप में स्वीकृत इस प्रपत्र को 'सामूहिक अनुबंध' कहा जाता है। इस अनुबंध का दोनों पक्षकारों द्वारा अनुपालन किया जाता है तथा इसकी शर्तों के विपरीत वे कोई कार्य नहीं करते है। इस प्रकार इस

चरण में विवाद का अन्त हो जाता है साथ ही दोनों पक्षकार अनुबंध के आधार पर कार्य करने के लिए वचनबद्ध हो जाते हैं।

6. **अनुबन्ध का क्रियान्वयन** – दोनों पक्षकारों द्वारा लिखित रुप में अनुबंध कर लेने मात्र से ही सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया समाप्त नहीं हो जाती है, बल्कि यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक कि अनुबन्ध में लिखी बातों का क्रियान्वयन न हो जाए। अनुबन्ध को लागू करवाने के लिए भी कई बार श्रम प्रतिनिधियों को बहुत प्रयास करने होते हैं। प्रबन्ध द्वारा उपेक्षा करने पर श्रम–प्रतिनिधियों को अनुबन्ध को लागू करने के लिए हड़ताल, घेराव व प्रदर्शन, न्यायालय की शरण में जाना आदि का सहारा लेना होता है। इस प्रकार अनुबन्ध का क्रियान्वयन करवाना सामूहिक सौदेबाजी का अन्तिम चरण होता है।

17.5 सामूहिक सौदेबाजी की विषय वस्तु

औद्योगीकरण के विकास के पूर्व वर्षों तक सामूहिक सौदेबाजी का प्रयोग सामान्यतः मजदूरी, कार्य करने के घण्टे तथा रोजगार की शर्तों तक सीमित था। औद्योगीकरण के विकास एवं श्रम संघों की सक्रियता से अब सामूहिक सौदेबाजी की विषय वस्तु में वेतन सहित अवकाश, बोनस, पेंशन, वरिष्ठता निर्धारण, पदोन्नतियाँ, स्थानान्तरण, परिवाद निवारण प्रक्रिया आदि को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी की क्रियाओं में विचार विमर्श, अनुबन्ध संबंधी आदान–प्रदान, शिकायत निवारण, पंच निर्णय तथा मध्यस्थता के समझौते आदि महत्वपूर्ण विषयों को सम्मिलित किया जाने लगा है। मुख्यरुप से सामूहिक समझौते की विषय वस्तु के अन्तर्गत वेतन या मजदूरी की दर या मात्रा, अवकाश तथा कार्य की दशाओं में सुधार संबंधी विभिन्न तत्वों को सम्मिलित किया जाता है। सामूहिक समझौते, श्रमिकों की निम्नलिखित समस्याओं के समाधान हेतु किए जा सकते हैं –

- मजदूरी की दर, भुगतान का समय एवं विधि निर्धारण
- कठिन कार्यों हेतु अतिरिक्त भत्तों का निर्धारण
- अधिक समय कार्य हेतु अतिरिक्त कार्य के घण्टे एवं मजदूरी का भुगतान, थकान एवं लम्बे कार्यों हेतु अतिरिक्त भुगतान
- मजदूरी/वेतन सहित अवकाश, बीमारी अवकाश
- कार्य स्थापन, स्थानान्तरण एवं पदोन्नति के विभिन्न आधार
- जबरी छुट्टी एवं छंटनी की दशा में नीतिनिर्धारण
- कार्य के दौरान घटित दुर्घटनाओं से बचाव एवं क्षतिपूर्ति
- कठिन तथा अस्वास्थ्यप्रद कार्य हेतु बोनस
- शिकायत निवारण प्रक्रिया
- प्रबन्ध में श्रमिकों की सहभागिता
- नियम उल्लंघन की दशा में दण्ड का प्रावधान
- चिकित्सा लाभ एवं कैण्टीन सुविधाएं
- अन्य विषय, जो श्रमिक की मजदूरी, अवकाश तथा कार्य दशा से संबंधित हों

17.6 सामूहिक सौदेबाजी के सिद्धान्त

सामूहिक सौदेबाजी के सिद्धान्तों के अन्तर्गत कुछ आदर्शतम, विवेकपूर्ण एवं पारस्परिक विचारों को सम्मिलित किया जाता है, जिन पर नियोक्ता (प्रबन्धक) वर्ग तथा श्रमिक वर्ग परस्पर

सन्तुष्ट हो सकें। और उत्पन्न समस्या का समाधान सुनिश्चित हो सके। इस प्रकार सामूहिक सौदेबाजी के तीन सिद्धान्तों का वर्णन किया जा सकता है –

(अ) **प्रबन्धक (नियोक्ता) वर्ग हेतु –**

(1) एक उचित श्रम नीति का अनुसरण करना चाहिए एवं यह सुनिश्चित हो कि सभी कर्मचारी, श्रमिक आदि उसका पालन करें।

(2) श्रम नीतियों एवं विभिन्न नियमों का उचित समय अन्तराल पर पुनरावलोकन करते रहना चाहिए तथा आवश्यकता महसूस होने पर परिवर्तन भी किया जाना चाहिए।

(3) प्रबन्धक (नियोक्ता) को श्रम संघ के साथ उचित/अच्छा व्यवहार रखना चाहिए।

(4) प्रबन्धकों को यह प्रयास करना चाहिए कि श्रमिक की कोई समस्या विवाद न बन जाय, इस हेतु प्रबन्धक को प्रारम्भ से ही समस्या निवारण के प्रयास करने चाहिए।

(5) किसी एक श्रम–संघ से ही समस्या/विवाद निवारण हेतु विचार–विमर्श करना चाहिए।

(ब) **श्रम–संघों हेतु :**

(1) श्रम संघों को अपने सदस्यों का मनोबल ऊंचा बनाये रखने तथा अधिक उत्पादन हेतु प्रेरित करने के प्रयास करने चाहिए।

(2) उन्हें उत्पादन–व्यय को कम करने तथा अच्छी किश्म के उत्पादन करने को अपना दायित्व और कर्तव्य समझना चाहिए।

(3) उन्हें मात्र मजदूरी बढाने, कार्य–घंटे कम करने, विभिन्न भत्ते और अवकाश की ही मांग नहीं करते रहना चाहिए।

(4) उन्हें यह कोशिश करनी चाहिए कि श्रमिक अपने कार्य–स्थल पर प्रजातत्र विरोधी विचारों को महत्व न दें।

(5) श्रम संघों को ऐसी मांगों को मनवाने के लिए प्रबन्धकों पर दबाब न बनाएं, जो राष्ट्रीय नीतियों के प्रतिकूल तथा संस्थान की भुगतान क्षमता के बाहर हों।

(6) उन्हें हड़ताल केवल उसी दशा में करनी चाहिए, जब समझौते के अन्य पूर्व सभी प्रयासों द्वारा सन्तोषजनक परिणाम न निकला हो।

(स) **प्रबन्धक एवं श्रम संघ दोनों हेतु :**

(1) श्रम संघों के नेतृत्व को यह मौका अवश्य मिलना चाहिए कि वह अपनी मांगों, शिकायतों या अन्य विषयों को प्रबन्धक वर्ग के सम्मुख प्रस्तुत कर सकें और प्रबन्धक वर्ग भी पुनः उन्हें परिस्थितियों से अवगत करा सकें।

(2) दोनों पक्षों को समस्या के समाधान हेतु विवेकपूर्ण, बुद्धिमानी तथा ईमानदारी से विचार करना चाहिए और समस्या के समाधान के पश्चात उत्पन्न प्रभावों पर भी विचार विमर्श करना चाहिए।

(3) दोनों पक्षों में एक–दूसरे के प्रति आदर–भाव, सौदेबाजी करने की क्षमता एवं समझौते (अनुबन्ध) को लागू करने की योग्यता भी होनी चाहिए।

(4) दोनों पक्षों को यह अनुभव अवश्य होना चाहिए कि श्रमिक की मजदूरी तथा उसकी मांग में न्यायोचित संबंध है या नहीं।

17.7 सामूहिक सौदेबाजी के प्रकार

सामूहिक सौदेबाजी को निम्न प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

(अ) **एकाकी सेवायोजक सौदेबाजी**

(i) एकाकी संयन्त्र सौदेबाजी

(ii) बहु–संयन्त्र सौदेबाजी

(ब) **बहु–सेवायोजक सौदेबाजी**

(i) स्थानीय सौदेबाजी

(ii) प्रान्तीय सौदेबाजी

(iii) राष्ट्रीय सौदेबाजी

(अ) **एकाकी सेवायोजक सौदेबाजी (Single Employer Bargaining)** जब श्रम संघ एक ही सेवायोजक से किसी मामले में सौदेबाजी करते हैं तो इसे एकाकी सेवायोजक सौदेबाजी के नाम से पुकारा जाता है। सौदेबाजी के निम्नलिखित दो रुप हैं –

(i) **एकाकी संयन्त्र सौदेबाजी** – जब किसी नियोक्ता के एक से अधिक संयन्त्र हों तथा उनमें से किसी विशेष संयन्त्र में विद्यमान श्रम संघ एवं उस नियोक्ता के मध्य जो सौदेबाजी होती है, उसे एकाकी संयन्त्र सौदेबाजी कहा जाता है। इस प्रकार की सौदेबाजी में संयन्त्र विशेष की विशिष्ट समस्याओं पर ही विचार विमर्श किया जाता है। उस नियोक्ता के दूसरे संयन्त्र इससे प्रभावित नहीं होते हैं।

(ii) **बहु संयन्त्र सौदेबाजी** – जब एक ही नियोक्ता के दो या अधिक संयन्त्र हों तथा श्रम संघ द्वारा उन सभी संयन्त्रों के श्रमिकों की सामान्य सामस्याओं के लिए नियोक्ता से विचार विमर्श कर समझौता किया जाता है, तब उसे बहुसंयन्त्र सौदेबाजी कहा जाता है।

(ब) **बहु–सेवायोजक सौदेबाजी (Muliple Employer Bargaining)** जब श्रम संघों द्वारा कई सेवायोजकों के साथ सामूहिक सौदेबाजी की जाती है तो इसे बहुसेवायोजक सौदेबाजी कहा जाता है। ऐसी सौदेबाजी में प्रायः अनेक संस्थाओं की सामान्य सेवा शर्तों एवं कार्य की दशाओं के संबंध में वार्ता होती है। इस प्रकार की सौदेबाजी को निम्न तीन वर्गों में बांटा जा सकता है –

(i) **स्थानीय सौदेबाजी** – जब किसी स्थान विशेष के सेवयोजकों या उनके संघ के साथ श्रम संघ द्वारा सामूहिक सौदेबाजी की जाती है तो उसे स्थानीय सौदेबाजी कहा जाता है। उदाहरणार्थ, जब अहमदाबाद की कपड़ा मिलों के सेवायोजक या उनका संघ, उस स्थान पर कार्यरत कर्मचारियों के संघ के साथ सौदेबाजी करता है, तो उसे स्थानीय सौदेबाजी कहा जाता है।

(ii) **प्रान्तीय सौदेबाजी** – किसी राज्य विशेष के सेवायोजकों या उनके संघों तथा श्रम संघों के मध्य होने वाली सामूहिक सौदेबाजी को प्रान्तीय सौदेबाजी कहा जाता है। उदाहरणार्थ – गुजरात के सूती वस्त्र उद्योग के नियोक्ता संघ तथा श्रम संघों के बीच हुई सौदेबाजी को प्रान्तीय सौदेबाजी कहा जाता है।

(iii) **राष्ट्रीय सौदेबाजी** – जब सम्पूर्ण राष्ट्र के किसी उद्योग विशेष के सेवायोजक या उनके संघ और देश के उस उद्योग विशेष में नियुक्त कर्मचारियों एवं श्रमिकों के संघ सामूहिक सौदेबाजी करते हैं तो उसे राष्ट्रीय या सम्पूर्ण उद्योग हेतु सौदेबाजी कहा जाता है।

17.8 सामूहिक सौदेबाजी के कार्य

सामूहिक सौदेबाजी का संबंध मात्र आर्थिक क्रियाओं तक सीमित नहीं है। अपितु यह सामाजिक परिवर्तन में भी सहायक है। सामूहिक सौदेबाजी को सामाजिक परिवर्तन की एक तकनीक कहा जा सकता है। इस प्रणाली के माध्यम से तीन कार्यों को सम्पादित किया जाता है–

(1) **सामाजिक परिवर्तन (Social Change)** सामूहिक सौदेबाजी का प्रथम कार्य निम्न आय–स्तर वाले व्यक्तियों के सामाजिक एवं आर्थिक स्तर को परिवर्तित किया जाता है। चूंकि सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया से, श्रमिक वर्ग अपने लिए अधिक मजदूरी, अधिक कल्याण, सामाजिक सुरक्षा, सामाजिक मूल्य तथा वातावरण आदि में परिवर्तन की उम्मीद नियोक्ता से करते हैं। अतः सामूहिक सौदेबाजी द्वारा उद्योगों में कार्यरत श्रमिक वर्ग के अधिकार, आय एवं जीवन स्तर तथा मान–सम्मान में भी वृद्धि होती है।

(2) **शान्ति समझौता (Peace Agreement)** सामूहिक समझौता का मुख्य कार्य कर्मचारी और नियोक्ता वर्ग के मध्य उत्पन्न प्रबल मतभेदों को समझौते (Compromise) के माध्यम से समाप्त किया जाता है। ऐसा तभी सम्भव हो, जब दोनों पक्ष अपनी–अपनी हठधर्मिता को छोड़कर समझौता करने को सहमत हों। शान्ति समझौता इस बात पर निर्भर करता है कि किस सीमा तक एक पक्ष त्याग करने को तैयार है और दूसरा पक्ष किस सीमा तक मांगे मानने को तैयार है।

शान्ति समझौते दो प्रकार के हो सकते हैं – विरोध सहित और विरोध रहित।

जब शान्ति समझौता दोनों पक्षों के परस्पर ताकत एवं संघर्ष के परिणाम पर निर्भर होता है तब उसे विरोध सहित शान्ति समझौता कहा जाता है। इसमें दोनों पक्षों के धैर्य, हानि सहने की क्षमता एवं योग्यता जैसे घटकों का प्रभाव पड़ता है। प्रायः ऐसे समझौते दीर्घकालीन नहीं रह पाते। इसके अतिरिक्त विपरीत कभी–कभी कर्मचारियों एवं नियोक्ताओं के मध्य हड़ताल या तालेबंदी की स्थिति आने से पूर्व ही समझौते हो जाते हैं। ऐसा प्रायः तब सम्भव होता है जब प्रबन्धक एवं श्रम–संघों के मध्य मधुर संबंध हो। ऐसे समझौते अधिक दिनों तक विद्यमान रहते हैं।

(3) **औद्योगिक न्याय (Industrial Jurisprudence)** – सामूहिक समझौते के द्वारा औद्योगिक न्याय प्रणाली का विकास होता है। इसे उद्योगों में प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों को लागू करने की भांति समझा जा सकता है। किसी भी औद्योगिक विवाद के उत्पन्न होने पर कर्मचारी एवं नियोक्ता वर्ग के व्यक्ति पूर्व में स्थापित नियमों को लागू करने एवं उनका पालन करने का उत्तरदायित्व लेते हैं, जिनके आधार पर संबंधित विवाद अथवा शिकायत का समाधान, शिकायत निवारण पद्धति के द्वारा किया जाता है। यदि विवाद से संबंधित पूर्व में कोई नियम नहीं है तो प्रचलित परम्पराओं के अनुसार शिकायत अथवा विवाद का निवारण करके औद्योगिक न्याय दिलाया जाता है।

सामूहिक सौदेबाजी के उपरोक्त वर्णित तीनों कार्यों की सफलता हेतु यह आवश्यक है कि दोनों पक्ष समझौते का नैतिक दृष्टि से पालन करें, साथ ही यह सुनिश्चित होना चाहिए कि औद्योगिक न्याय की रक्षा हो सके।

17.9 भारत में सामूहिक सौदेबाजी

भारत में सामूहिक सौदेबाजी का इतिहास ज्यादा पुराना नहीं है। औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के प्रावधान लागू होने को ही सामूहिक सौदेबाजी की शुरुआत माना जाता है। यद्यपि भारत में सामूहिक सौदेबाजी अभी शैशवावस्था में ही है, किन्तु अब तेजी से सामूहिक सौदेबाजी द्वारा विवादों का निपटारे का प्रतिशत बढ़ता जा रहा है। वर्ष 1931 से 1947 के मध्य इस दिशा में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई। लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् ही भारत में कुछ सामूहिक सौदेबाजी की गई। भारत में सेवायोजक परिषद के अनुसार 1956 में 32 प्रतिशत तथा 1960 में 49 प्रतिशत विवादों का निपटारा सामूहिक सौदेबाजी से हुआ।

भारत में 1952 में अहमदाबाद मिल मालिक संघ एवं टैक्सटाइल लेवर एसोसिएसन के मध्य सामूहिक ठहराव आपसी विवादों के निपटारों के लिए किया गया। 1955 में बाटा शू कम्पनी एक बाटा मजदूर संघ के बीच एक सामूहिक समझौता हुआ जिसमें तालाबंदी, हड़ताल, बोनस, कार्य की शर्ते आदि शामिल थे। 1956 में टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी एवं एक उनके कर्मचारी संघ के बीच तथा मोदी स्पिनिंग एवं वीविंग मिल्स एवं मिल कर्मचारी यूनियन के मध्य सामूहिक समझौते हुए थे। धीरे–धीरे सामूहिक सौदेबाजी की शक्ति विकसित हुई और भारत में अधिकांश उद्योगों में ऐसी व्यवस्थाए अनिवार्य अंग बन गई। सामूहिक सौदेबाजी के विकास का मूल कारण वैधानिक प्रावधानों की व्यवस्था रहा है, जिसने सौदेबाजी को विकसित करने में अपना योगदान दिया। भारत में त्रिपक्षीय सम्मेलन, संयुक्त सलाहकार मण्डल तथा औद्योगिक समितियों ने भी समय–समय पर सामूहिक सौदेबाजी को गति प्रदान की है। केन्द्र सरकार की विभिन्न योजनाओं, जैसे–श्रमिक शिक्षा, प्रबन्ध सहभागिता योजना, अनुशासन संहिता, कार्य समितियाँ, संयुक्त प्रबन्ध समितियाँ, विवाद निवारण प्रणाली आदि से भी सामूहिक सौदबाजी को बल मिला है।

यद्यपि भारत में उद्योग स्तरीय समझौते इंजीनियरिंग, वस्त्र, चाय बागान आदि में हुए हैं तथा 1970 के पश्चात् कोयला, वस्त्र, चीनी, इस्पात, सीमेण्ट आदि उद्योगों में भी मजदूरी ढाँचे और सेवा शर्तों का निर्धारण किया गया है साथ ही राष्ट्रीय स्तर के संघ, इण्टक, एटक, हिन्दू मजदूरी सभा आदि ने राष्ट्रीय स्तर पर अनेक समझौते नियोक्ताओं से किये हैं फिर भी भारत में सामूहिक सौदेबाजी के विकास की गति बहुत धीमी है।

17.10 भारत में सामूहिक सौदेबाजी की असफलता के कारण

1. **श्रम संघों का बाहुल्य** – भारत में आज भी श्रम संघों का बाहुल्य है। अधिकांश श्रम संघ राजनैतिक दलों से संबंधित है। संगठन एवं उद्योग स्तर पर यदि कोई मान्यता प्राप्त श्रम संघ समझौता कर लेता है तो अन्य संघ इसका विरोध करते है। इसके अतिरिक्त श्रमसघों के पदाधिकारियों में आपसी कलह तथा एक संघ के दूसरे संघ से वैचारिक मतभेद भी सामूहिक सौदेबाजी के विकास में बाधा उपस्थित करते हैं।
2. **नियोक्ताओं की उदासीनता** – भारत में नियोक्ता सामूहिक सौदेबाजी के प्रति सदैव उदासीन रहे हैं। वे इसे अपनी स्वन्त्रता पर अंकुश जैसा समझते हैं अतः वे इससे दूर रहने की कोशिश करते हैं। वे कर्मचारियों का शोषण कर अधिक लाभ अर्जित करना चाहते हैं। इसके अतिरिक्त संघों की बाहुल्यता, अन्तर्संघीय विवाद भी नियोक्ताओं की उदासीनता के कारण रहे हैं।
3. **सरकार की उदासीनता** – सरकार की सामूहिक सौदेबाजी के प्रति उदासीनता भी इसकी असफलता का एक अन्य कारण है। यद्यपि कुछ योजनाएं बनाई गई हैं लेकिन सामूहिक समझौते के लिए उन्हें लागू न कर पाने के कारण सामूहिक सौदेबाजी के विकास को वांछित गति नहीं मिल सकी है।
4. **समझौते की अवहेलना** – भारत में सामूहिक समझौते इकाई एवं स्थानीय स्तर पर हुए हैं। समझौते होने के बाबजूद भी वे लागू नहीं हो पाते। कई बार समझौते का उल्लंघन एवं दुरुपयोग किया जाता है।

5. **निपटारे में बिलम्ब** – सामूहिक सौदेबाजी के कई विवादों के निपटारों में काफी समय लग जाता है, जिससे सौदेबाजी की उपयुक्तता, आवश्यकता एवं सफलता पर प्रश्नचिह्न लग जाता है।
6. **पक्षकारों की अनभिज्ञता** – भारत में अधिकांश श्रमिक एवं प्रबन्धक, सामूहिक सौदेबाजी के उद्देश्यों, विचारधाराओं एवं महत्व से अवगत नहीं है, जिससे इसके विकास में कठिनाई आती है।
7. **परम्परागत विचारधारा** – भारत में नियोक्ताओं व श्रमिकों के विचार रुढ़िवादी रहे हैं। वे परम्परागत नीतियों, सिद्वान्तों और अवधारणाओं को ही अधिक महत्व देते हैं। वे परिवर्तनों पर एक मत नहीं होते। अतः सामूहिक सौदेबाजी को भी प्रोत्साहन नहीं मिल पाया है।
8. **प्रबन्धकों की तानशाही प्रवृत्ति** – भारत में आज भी अधिकतर प्रबन्धक अपनी मनमानी, हठधर्मिता तथा स्वेच्छाचारी प्रवृत्ति के शिकार हैं। वे तानाशाही ढंग से प्रबन्ध चलाते हैं। ऐसी दशा में सामूहिक सौदेबाजी नहीं हो पाती है।
9. **वैधानिक बाध्यता का अभाव** – वैधानिक बाध्यता के अभाव के कारण भी सामूहिक सौदेबाजी की विचारधारा हतोत्साहित हुई है। सामूहिक अनुबंधों को लागू करवाने की कानूनी बाध्यता न होने के कारण नियोक्ता उससे बचने का प्रयास करते हैं, फलस्वरुप श्रमिकों की सौदेबाजी के प्रति आस्था कम हो जाती है।
10. **अन्य कारण** – भारत में सामूहिक सौदेबाजी की असफलता श्रमसंघों पर राजनैतिक प्रभाव, पंचनिर्णय पर अधिक बल, प्रतिस्पर्धी श्रमसंघों का होना, परस्पर सद्भावना का अभाव, क्षेत्र संबंधी बाधाओं आदि के कारण भी रही है।

17.11 भारत में सामूहिक सौदेबाजी के विकास हेतु सुझाव

भारत में सामूहिक सौदेबाजी को प्रभावपूर्ण एवं सफल बनाने हेतु तथा इसके विकास को प्रोत्साहित करने हेतु निम्नलिखित सुझाव दिये जा सकते हैं –

1. **श्रम–संघों का सुदृढ़ होना** – सुदृढ़ श्रम संघ, सामूहिक सौदेबाजी की आधारशिला है। सुदृढ़ श्रम–संघों के अभाव में नियोक्ता प्रायः सौदेबाजी के लिए तैयार ही नहीं होते ।
2. **प्रजातान्त्रिक कार्यविधि को अपनाना** – प्रबन्ध वर्ग यदि अपनी तानाशाही प्रवृत्ति का परित्याग करके कार्य की प्रजातान्त्रिक शैली को अपनाने लगें तो तब समानता, स्वतन्त्रता एवं जनतंत्र के वातावरण में ही सामूहिक सौदेबाजी विकसित हो सकती है।
3. **दृष्टिकोण में परिवर्तन** – नियोक्ता व श्रम संघ के प्रतिनिधियों के विचारों, धारणाओं व मान्यताओं में परिवर्तन लाना चाहिए। उनमें परस्पर मित्रवत एवं सहयोग का दृष्टिकोण विकसित होने पर सामूहिक समझौते की गति को बल मिल सकेगा।
4. **राष्ट्रीय स्तर पर प्रोत्साहन** – भारत में सामूहिक सौदेबाजी के अनुबंध अधिकाशतः सयन्त्र स्तर पर ही किये जाते हैं, किन्तु सामूहिक अनुबन्धों को राष्ट्रीय स्तर पर भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए ताकि मजदूरी, सेवा की शर्तों आदि में समानता लायी जा सके।
5. **श्रमिक शिक्षा एवं प्रशिक्षण** – श्रमिकों को सामूहिक सौदेबाजी का अर्थ एवं महत्व समझाया जाना चाहिए। श्रमिकों को प्रशिक्षित करके उनकी भावनाएं, विचार, दृष्टिकोण एवं मनोवृत्तियों में परितर्वन लाया जा सकता है। शिक्षा के द्वारा उनकी सौदेबाजी की क्षमता को बढाया जा सकता है।

6. **सरकारी नीतियों की समावेश** – सामूहिक समझौते का आधार सरकार द्वारा बनाई नीतियां होनी चाहिए। इससे किये गये समझौते स्थायी प्रकृति के होंगे तथा उनका उल्ललंघन भी सम्भव नहीं होगा।
7. **अनुवर्तन** – सामूहिक समझौते का भविष्य में समय–समय पर अनुवर्तन किया जाना चाहिए। साथ ही उनकी कमियों को दूर करने तथा उनका नवीनीकरण करने का प्रयास किया जाना चाहिए।
8. **न्यूनतम बाह्य हस्तक्षेप** – सामूहिक सौदेबाजी के विकास को गति देने के लिए तृतीय पक्षकार के हस्तक्षेप को न्यूनतम किया जाना चाहिए। औद्योगिक संबंधों को पारस्परिक विचार विमर्श द्वारा ही दृढ़ किया जा सकता है।
9. **समझौते का शीध्र क्रियान्वयन** – सामूहिक समझौता होने के पश्चात उनका शीध्र एवं उचित क्रियान्वयन होना चाहिए। विलम्ब होने पर विभिन्न समस्याओं एवं नये विवादों का जन्म होता है तथा श्रमिकों का सौदेबाजी पर से विश्वास उठ जाता है। यदि सम्भव हो तो समझौते के क्रियान्वयन की अवधि भी निश्चित की जानी चाहिए।
10. **मधुर औद्योगिक संबंध** – सामूहिक समझौते के विकास के लिए यह आवश्यक है कि कर्मचारी व नियोक्ता के मध्य पारस्परिक सद्विश्वास, मित्रवत व्यवहार, मानवीय दृष्टिकोण, संयुक्त विचार विमर्श, सकारात्मक चिन्तन एवं मधुर संबंध स्थापित किये जाने चाहिए।

सामूहिक सौदेबाजी की सफलता के लिए उपरोक्त सुझावों को लागू करके विवादों का सकारात्मक निवारण किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सामूहिक सौदेबाजी के लिए चयनित प्रतिनिधियों को निर्णयन की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए तथा उनके द्वारा लिए निर्णयों को मानने के लिए दोनों पक्ष बाध्य होने चाहिए।

17.12 सारांश

किसी उद्योग में कार्यरत कर्मचारियों की किसी समस्या के निराकरण हेतु नियोक्ता वर्ग तथा श्रमिक संघ के मध्य पारस्परिक विचार विमर्श कर जो अनुबंध या समझौता किया जाता है, उसे सामूहिक सौदेबाजी कहा जाता है। जब किसी औद्योगिक संस्थान के कर्मचारियों अथवा प्रबन्ध वर्ग के बीच किसी विवाद, समस्या का समाधान निकालना आवश्यक हो, उस स्थिति में सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकता होती है ताकि औद्योगिक शान्ति स्थापित हो। सौदेबाजी की प्रक्रिया को कुल छः चरणों में व्यक्त किया जा सकता है – प्रारम्भिक चरण – वार्ताकारों का चयन – सौदेबाजी की व्यूह रचना – सौदेबाजी की युक्तियां – अनुबंध – अनुबंध का क्रियान्वयन। सामूहिक सौदेबाजी की विषय वस्तु के अन्तर्गत वेतन/मजदूरी की दर या मात्रा का निर्धारण, वेतन सहित अवकाश तथा बीमारी अवकाश, पदोन्नति के आधार, जबरी छुट्टी तथा छंटनी की दशाएं निर्धारित करना, दुर्घटना पर क्षतिपूर्ति, शिकायत निवारण तथा कार्य दशाओं से सम्बन्धित अन्य विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु प्रयासों को सम्मिलित किया जाता है। सामूहिक समझौते के सिद्वान्तों में प्रबन्धक वर्ग को श्रम संघों के प्रति सम्मान, श्रम नीति का अनुसरण एवं पुनरावलोकन एवं समस्या निवारण के प्रयास करने चाहिए। जबकि श्रम संघ को सहयोग की भावना, सदस्यों के मनोबल को बढाना, परिवेदनाओं (शिकायतों) को आगे बढने से रोकना तथा हड़ताल को अन्तिम अस्त्र के रुप में प्रयोग करना चाहिए।

भारत में सामूहिक सौदेबाजी का प्रारम्भ 1947 से है। यद्यपि सरकारी हस्तक्षेप के कारण सामूहिक सौदेबाजी का विकास हुआ है। अनेक वैधानिक कानून व प्रावधान भी बनाये गये हैं। विभिन्न सरकारी योजनाएं भी इस व्यवस्था के विकास में सहायक सिद्व हुई। भारत में श्रम संघों की अधिकता

है। साथ ही अधिकांश श्रम संघ राजनैतिक दलों से संबंधित है। एक श्रमसंघ के समझौते का दूसरे श्रम संघ विरोध करते हैं। समझौते में प्रायः विलम्ब होता है। नियोक्ता की मनोवृति प्रायः पक्षपातपूर्ण तथा उदासीन होती है। समझौते की अवहेलना करना भी इसकी असफलता का एक कारण है। सामूहिक समझौते को प्रभावी बनाने हेतु श्रम संघों को सुदृढ़ बनाना चाहिए। विवाद से संबंधित दोनों पक्षों को अपने दृष्टिकोण में परिवर्तन कर पारस्परिक सहयोग एवं मित्रवत व्यवहार करना चाहिए। तानाशाही प्रवृति के स्थान पर प्रजातान्त्रिक कार्यविधि अपनानी चाहिए। सामूहिक समझौते का आधार सरकारी नीतियां होनी चाहिए।

17.13 शब्दावली

नियोक्ता या सेवायोजक – किसी उद्योग या संस्थान का मुखिया अथवा प्रबन्धक, जिसके द्वारा कर्मचारियों एवं श्रमिकों को उस उद्योग अथवा संस्थान में मजदूरी देकर कार्य करने हेतु नियुक्त किया जाता है।

सौदेबाजी – दो पक्षों द्वारा, आपसी विचार विमर्श करके किसी विषय पर मोल–भाव या सौदा करना।

औद्योगिक प्रजातन्त्र – औद्योगिक वातावरण को केवल नियोक्ता के निर्णयों द्वारा ही संचालित न करना, अपितु सभी पक्षों की सहमति तथा सन्तुष्टि के आधार पर चलाना।

व्यूह रचना – किसी विवाद के समाधान की प्रक्रिया से पूर्व संबंधित पक्ष द्वारा अपनी बातों को विभिन्न सिद्वान्तों, कानून आदि की सीमाओं में रहते हुए सिद्व करने के लिए नीति बनाना।

सौदेबाजी की युक्तियाँ – सौदेबाजी की प्रक्रिया के दौरान विशेष प्रकार की कार्यवाही करना, ताकि अपने पक्ष की बातों को बल मिल सके।

अनुबन्ध – सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया के अन्त में लिये गये निष्कर्ष, जिन्हें दोनों पक्षों स्वीकार करने को तैयार होते हैं और जिसके आधार पर विवाद का निवारण सम्भव होता है।

क्रियान्वयन – सामूहिक सौदेबाजी के संदर्भ में, अनुबन्धों को लागू करना।

जबरी छुट्टी – जब किसी श्रमिक को अनिवार्य रुप से जबरन अवकाश पर भेज दिया जाता है।

छंटनी – किसी औद्योगिक इकाई में आवश्यकता से अधिक कर्मचारियों को निकाल देना।

17.14 बोध प्रश्न

(अ) निम्नलिखित कथनों में रिक्त स्थानों को भरिये –

1. सामूहिक सौदेबाजी, नियोक्ता एवं श्रमिक वर्ग के मध्य किसी विवाद के समाधान हेतु ....करने की एक प्रक्रिया है।
2. सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया में ....पक्ष लाभान्वित होते हैं।
3. सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया का अन्तिम चरण ....है।
4. मजदूरी की दर, अवकाश तथा कार्य दशाओं में सुधार, मुख्यतः सामूहिक सौदेबाजी की ....है।
5. सामूहिक सौदेबाजी के मुख्य तीन कार्य हैं – सामाजिक परिवर्तन, शान्ति समझौता और .... ।

(ब) निम्नलिखित कथनों में से कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

1. सामूहिक सौदेबाजी की विषय–वस्तु मुख्यतः कर्मचारियों की नियुक्ति से संबंधित है।
2. सामूहिक सौदेबाजी मे तृतीय पक्षकार का हस्तक्षेप आवश्यक है।
3. सामूहिक सौदेबाजी के सिद्वान्त केवल श्रमिक वर्ग से संबंधित है।

4. किसी स्थान विशेष के सेवायोजक तथा श्रम संघ के मध्य सामूहिक सौदेबाजी को स्थानीय सौदेबाजी कहा जाता है।
5. भारत में सामूहिक सौदेबाजी की स्थिति को अत्यन्त सफल कहा जा सकता है।

17.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

(अ)

1. समझौता 2. दोनों 3. अनुबन्ध का क्रियान्वयन 4. विषय वस्तु 5. औद्योगिक न्याय

(ब)

1. गलत 2. गलत 3. सही 4. सही 5. गलत

17.16 स्वपरख प्रश्न

1. सामूहिक सौदेबाजी से आप क्या समझते हैं? प्रभावशाली सामूहिक सौदेबाजी की आवश्यकताएं क्या हैं?
2. सामूहिक सौदेबाजी की प्रक्रिया को समझाइए।
3. सामूहिक सौदेबाजी का अर्थ स्पष्ट करते हुए इसके विभिन्न कार्यों को समझाइए।
4. भारत में सामूहिक सौदेबाजी की स्थिति का वर्णन कीजिए। इसे प्रभावी बनाने हेतु सुझाव भी दीजिए।
5. टिप्पणियां लिखिए –
   (अ) सामूहिक सौदेबाजी के सिद्वान्त
   (ब) सामूहिक सौदेबाजी के प्रकार

17.17 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979।

इकाई 18 मानव संसाधन प्रबन्धन में उभरती प्रवृत्तियाँ एवं चुनौतियाँ (Emerging Trends and Challenges in HRM)

इकाई की रुपरेखा

18.1 प्रस्तावना
18.2 मानव संसाधन प्रबन्धन में उभरती प्रवृत्तियाँ
18.3 मानव संसाधन प्रबन्धन में भावी चुनौतियाँ
18.4 मानव संसाधन प्रबन्धन की परिवर्तित भूमिका
18.5 सारांश
18.6 शब्दावली
18.7 बोध प्रश्न
18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर
18.9 स्वपरख प्रश्न
18.10 सन्दर्भ पुस्तकें

उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि:

- मानव संसाधन प्रबन्धन में उभरती प्रवृत्तियों क्या हैं?
- मानव संसाधन प्रबन्धन की भावी चुनौतियाँ क्या है?
- भावी चुनौतियाँ का सामना करने हेतु मानव संसाधन प्रबन्धन की नवीनतम भूमिका क्या होगी?

18.1 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत मानव संसाधन प्रबन्धन में उभरती हुई प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त इस इकाई में मानव संसाधन प्रबन्धन के समाने भविष्य में आने वाली चुनौतियों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है, साथ ही उन चुनौतियों का सामना करने के लिए मानव संसाधन प्रबन्धन की क्या भूमिका रहेगी? इसका भी उल्लेख किया गया है।

18.2 मानव संसाधन प्रबन्धन में उभरती प्रवृत्तियाँ

मानव संसाधन प्रबन्धन की प्रकृति एवं क्षेत्र में उदारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीयकरण के कारण क्रांतिकारी परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों के कारण सम्पूर्ण व्यवसायिक वातावरण, परिवर्तित हो गया है, जिससे मानव संसाधन का वातावरण भी प्रभावित हुआ है। भूमण्डलीय प्रतिस्पर्धा के वातावरण में व्यवसायिक वातावरण का क्षेत्र विस्तृत हुआ है। ऐसी स्थिति में मानव संसाधन गतिविधियों हेतु एक नवीनतम दृष्टिकोण की आवश्यकता महसूस की जा रही है। वर्तमान युग में वे व्यवसायिक संस्थान सफल सिद्व हो रहे है। जो किसी सामान्य उद्देश्य हेतु अपने संस्थान में विभिन्न प्रकार की योग्यता एवं कौशल वाले व्यक्तियों को एक साथ लेकर कार्य कर रहे हैं। यही मानव संसाधन प्रबन्धन का सार भी है। मानव संसाधन प्रबन्धन के रुप में विभिन्न संगठनों एवं व्यवसायिक वातावरण में मुख्य रुप से निम्नलिखित प्रवृत्तियों दृष्टिगोचर हो रही हैं –

1) **भूण्डलीयकरण (Globalisation Effect)** – वर्ष 1991 की आर्थिक नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्वीकृत कर दिया है। अब विभिन्न व्यवसायिक इकाईयों में अपने उत्पाद को नये

एवं विदेशी बाजारों में विक्रय करने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। इससे अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार में प्रतिस्पर्धा बढी है। जिन फर्मों को पूर्व में मात्र अपने स्थानीय व्यापार में प्रतिस्पर्धा करनी होती थी, उन्हें अब विदेशी फर्मों एवं प्रतियोगियों से प्रतिस्पर्धा करने को विवश होना पड़ रहा है। इस प्रकार पूरी दुनिया ही एक बाजार बन गई है, ऐसी स्थिति में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मानव संसाधन की व्यवस्था करने, उनकी नियुक्ति करने, प्रशिक्षण देने, विशेषज्ञ कर्मचारियों को प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण हेतु तैयार करने इत्यादि के संदर्भ में मानव संसाधन प्रबन्धन की भूमिका बढ़ रही है।

2) **संगठनात्मक पुनसंरचना (Organisational Restructering)** – आज मानव संसाधन प्रबन्धन के समक्ष व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा का सामना करने हेतु विभिन्न प्रकार के परिवर्तन स्पष्ट रुप से दृष्टिगोचर हो रहे हैं। विलय और अभिग्रहण इस प्रकार के संगठनात्मक परिवर्तन का एक उदाहरण है। आज के व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा के युग में बैकिंग उद्योग, दूरसंचार एवं पेट्रोलियम संस्थानों के विभिन्न विलय एवं अभिग्रहण की प्रक्रिया देखने को मिल रही है। साथ ही इन संस्थाओं के मानव संसाधन प्रबन्धन द्वारा अपनी उत्पादकता, उत्पाद किश्म एंव सेवाओं को बेहतर बनाते हुए तथा लागत को न्यूनतम करने की प्रवृत्ति भी स्पष्टतः दृष्टिगोचर हो रही है।

3) **कर्मचारियों का परिवर्तित स्वरुप** – आधुनिक व्यवसायिक युग में मानव संसाधन के रुप में मात्र पुरुष ही नहीं हैं बल्कि लगभग प्रत्येक स्थान पर महिलाएं भी अपना योगदान दे रही हैं। ऐसी स्थिति में मानव संसाधन प्रबन्धन को महिलाओं एवं बच्चों सहित सभी वर्गों से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओं के समाधान ढूंढने की आवश्यकता महसूस हो रही है। उदाहरणार्थ –लोचदार कार्य घण्टे, बच्चों की सुरक्षा व्यवस्था, मातृत्व अवकाश इत्यादि।

4) **आर्थिक एंव तकनीकी परिवर्तन** – समय के साथ–साथ विभिन्न आर्थिक एवं तकनीकी परिवर्तनों के कारण आज विभिन्न प्रकार के रोजगार एवं व्यवसायों की उपलब्धता दिखाई दे रही है, भारत में व्यवसायिक संरचना कृषि से उद्योग और उद्योगों से विभिन्न सेवाओं के रुप में परिवर्तित हो रही है। आज अधिकतर व्यवसायिक संस्थान तकनीकी युक्त संस्थान हो चुके हैं। आज व्यक्तियों का स्थान मशीनों ने ले लिया है। इसके अतिरिक्त आज व्यक्ति अपने पारिवारिक व्यवसाय को चलाने में तथा एक ही स्थान पर कार्य करने हेतु इच्छुक नहीं है। आधुनिक युग का नौजवान 'नेट' ;छमजद्ध के माध्यम से अपना कोई व्यवसाय घर पर बैठकर भी चला रहा है।

5) **कार्य की बदलती प्रकृति** – तकनीकी में परिवर्तन एवं भूमण्डलीयकरण के कारण आज कार्य की प्रकृति, और कार्य के तरीके परिवर्तित हो गये है, फैक्स मशीन, सूचना प्रौद्योगिकी एवं कम्प्यूटर के कारण विभिन्न कम्पनियों द्वारा कम वेतन पर (अंशकालिक कर्मचारियों) नियुक्तियाँ करनी प्रारम्भ कर दी हैं। कार्य की बदलती प्रकृति के कारण मानव संसाधन प्रबन्धन अब नवीनतम परिस्थिति के अनुसार अपने कर्मचारियों के प्रशिक्षण आदि की व्यवस्था कर रहा है।

6) **मानव पूंजी के विकास पर बल** – आज के युग में बदलती परिस्थितियों के अनुसार मानव संसाधन प्रबन्धन अपने कर्मचारियों पर अपेक्षाकृत अधिक ध्यान दे रहा है। चूंकि वह जानता है कि बदलते परिवेश में कर्मचारियों को उच्च तकनीकी ज्ञान युक्त प्रशिक्षण देकर ही अपने संस्थान में सफलता प्राप्त की जा सकती है।

7) **लागतों में कमी** – मानव संसाधन प्रबन्धन श्रेष्ठतम तकनीकी तथा श्रेष्ठ तकनीकी विशेषज्ञों की सेवा अपने संस्थान में ले रहा है। ऐसी स्थिति में यह सम्भव है कि उसकी लागत अधिक आएगी। ऐसी परिस्थिति में प्रबन्धन को इस बारे में सोचने को विवश होना पड़ रहा है कि लागत में कमी

किस प्रकार की जा सकती है। प्रबन्धन संस्थान की उत्पाकदता को अधिकतम करके प्रति इकाई लागत को न्यूनतम करने के प्रयास किये जा रहे हैं।

8) **समूह में कार्य करना** – आधुनिक युग में, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ श्रम विभाजन के सिद्वान्त पर विश्वास नहीं करती हैं। जिसमें एक व्यक्ति किसी एक कार्य या प्रक्रिया में ही दक्षता प्राप्त करता था। अब किसी भी व्यवसायिक संस्था में कर्मचारी का प्रयास यह रहता है कि वह सम्पूर्ण कार्य को कर सके। इस प्रकार प्रत्येक कर्मचारी समूह के सदस्य के रुप में कार्य करने को प्रेरित होता है। परिणामस्वरुप ऐसी प्रवृत्ति उभर रही है, जिसमें कर्मचारी समूह में कार्य कर रहे हैं और एक से अधिक कार्य या प्रक्रियाओं में दक्षता प्राप्त कर रहे हैं।

10) **कर्मचारियों की अपेक्षाओं में परिवर्तन** – मानव संसाधन प्रबन्धन के समक्ष कर्मचारियों के कार्य करने के तरीकों, तथा उनकी अपेक्षाओं के रुप में एक नई प्रवृत्ति दृष्टिगोचर हो रही है। चूंकि आज का कर्मचारी अधिक योग्य एवं शिक्षित, अधिक व्यग्र एवं उत्सुक, ऊर्जावन, गतिशील तथा कैरियर के प्रति सचेत है। इसलिए ऐसे कर्मचारियों की नियुक्ति करने उन्हें कार्य एवं संस्था के प्रति बफादारी एवं संस्था में ही बनाये रखने हेतु मानव संसाधन प्रबन्धन द्वारा विशेष प्रयास किये जा रहे हैं।

18.3 मानव संसाधन प्रबन्धन में भावी चुनौतियाँ

मानव संसाधन प्रबन्धन के समक्ष नये व्यवसायिक वातावरण, भूमण्डलीयकरण प्रतिस्पर्धा एवं तकनीकी गतिविधियों के कारण विभिन्न प्रकार की प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हुई हैं। इन उभरती हुई प्रवृत्तियों को देखते हुए मानव संसाधन प्रबन्धन को कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, जिनका वर्णन निम्नलिखित रुप में किया जा सकता है –

1. **अन्तर्राष्ट्रीय मानव संसाधन प्रबन्धन की आवश्यकता** – चूंकि आज व्यवसाय का विस्तार अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तक हो चुका है। अतः विभिन्न संस्थाओं को विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय संबंधों, कानूनों एवं प्रतिस्पर्धाओं का सामना करना पड़ रहा है। ऐसी स्थिति में अनेक देशों और संस्कृति के व्यक्तियों से प्रतिस्पर्धा करनी पड़ रही है, अतः आज अन्तर्राष्ट्रीय मानव संसाधन प्रबन्धन की आवश्ककता भी महसूस की जा रही है। अतः मानव संसाधन प्रबन्धन के लिए आज के परिवेश में विभिन्न देशों की संस्कृति को समझने एवं उसी के अनुसार अपनी व्यवसायिक गतिविधियों एवं व्यवहारों को सुनिश्चित करना एक चुनौती बन गई है।

2. **संस्थाओं की पुनर्संरचना** – व्यवसायिक प्रतिस्पर्धा के युग में तथा लागतों को कम करने की दिशा में आज मानव संसाधन प्रबन्धन के सामने विभिन्न घाटे में चलने वाली संस्थाओं का विलय, समान व्यवसाय करने वाली अन्य संस्थाओं में करने की चुनौती ह। क्योंकि जिस उद्देश्य से विभिन्न संस्थाओं के मध्य विलय एवं अभिग्रहण किये जा रहे है, वे उद्देश्य भविष्य में पूरे किये जा सकते है, या नहीं, इन विलयों एवं अभिग्रहणों का कोई नकारात्मक प्रभाव तो नहीं पड़ेगा?

3. **कर्मचारियों का उचित एवं बेहतर प्रबन्धन** – चूंकि आज विभिन्न व्यवसायिक संस्थाओं में कार्यरत कर्मचारी उम्र, लिंग, अनुभव, योग्यता एवं व्यवसायिक प्रशिक्षण आदि विभिन्न आधारों पर भिन्न–भिन्न विविधताओं से युक्त हैं। अतः अनेक संगठनों में ऐसे विभिन्न कर्मचारियों की नियुक्ति एवं उनके प्रशिक्षण पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। चूंकि आज अनेक संस्थाओं में महिला एवं पुरुष कर्मचारियों दोनों की भागीदारी है। अतः मानव संसाधन प्रबन्धान के सामने यह एक बड़ी चुनौती है कि महिलाओं की सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं सम्मान बना रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त आज विभिन्न कर्मचारियों के व्यवहार, संस्था के प्रति दायित्व, सौंपे गये दायित्वों के प्रति उनकी प्रतिक्रिया, नेतृत्व

आदि में परिवर्तन हो रहे हैं। अतः मानव संस्थान प्रबन्धन के समक्ष इस प्रकार के परिवर्तनों पर अमल किये जाने की चुनौती है।

4. **बदलती तकनीकी का प्रभाव** – सूचना तकनीकी के युग में वास्तव में मानव संसाधन प्रबन्धन का स्वरुप पूर्वरुप से परिवर्तित हो गया है। किसी संस्थान में मानव संसाधन प्रबन्धन के रुप में तकनीकी का सर्वाधिक प्रयोग मानव संसाधन सूचना पद्वति, (HRIS) के रुप में सामने आ रहा है। भ्त्प्ै कर्मचारियों के नियोजन, कैरिअर, प्रोन्नति मामलों, विभिन्न नीतियों के लिए नवीनतम एवं अद्यतन आंकड़ों का संग्रहण है। ऐसी स्थिति में मानव संसाधन प्रबन्धन के सामने यह चुनौती है कि नवीनतम एवं सटीक आंकड़ों का संग्रहण उचित समय पर किया जा सके ताकि आवश्कयता पड़ने पर तत्सम्बन्धित निर्णय लिये जा सकें।

5. **कार्य के प्रति बदलता दृष्टिकोण** – आज के व्यवसायिक युग में युवा कर्मचारियों का कार्य के प्रतिदृष्टिकोण परिवर्तित हुआ है। अब वे मात्र आर्थिक जीवन–यापन हेतु ही कार्य नहीं, करते, अपितु अपने कार्य स्थल पर अपनी योग्यता के अनुरुप अपना सर्वोत्तम देना चाहते है। कार्य स्थल पर किसी भी प्रकार की चुनौती स्वीकार करना उन्हें पसन्द है। यदि वे एक ही कार्य अथवा कार्य स्थल पर ख़ुद को सन्तुष्ट नहीं पाते, तो वे नये कार्य को पाने के लिए आतुर दिखाई देते हैं। ऐसी दशा में मानव संसाधन प्रबन्धन के सामने यह चुनौती आती है। कि ऐसे कर्मचारियों की नियुक्ति, कार्य विभाजन, पारिश्रमिक एवं सुविधाओं में उचित सामंजस्य हो।

6. **मानव संसाधन की क्षमताओं का प्रबन्धन** – आधुनिक युग में मानव संसाधन की क्षमताओं में निरन्तर वृद्धि हो रही है। ऐसी स्थिति में मानव संसाधन प्रबन्धन के सामने यह चुनौती आती है कि कर्मचारियों की योग्यता, अनुभव एवं क्षमता के अनुसार उन्हें कार्य करने के अवसर दिये जाने चाहिए। कर्मचारियों को उनकी योग्यतानुसार परिश्रामिक दिया जाना भी आज के मानवसंसाधन प्रबन्धन के लिए चुनौती है।

7. **लागतों में कमी** – वर्तमान व्यवसायिक युग में बौद्धिक सम्पदा, तकनीकी ज्ञान, वैश्वीकरण आदि को व्यवसायिक सफलता के लिए आवश्यक समझा जाने लगा है। इन सभी के कारण लागतों का बढ़ना स्वाभाविक है। दूसरी ओर, व्यवसायिक संस्थाओं पर अधिकतम क्षमतायुक्त उत्पादन तथा न्यूनतम लागत का दबाव निरन्तर बना हुआ है। अतः चुनौती यह है कि श्रम लागत सहित को किस प्रकार न्यूनतम किया जा सकता है।

8. **कर्मचारी समूह का बदलता स्वरुप एवं प्रभाव** – आधुनिक युग में कर्मचारी समूह का स्वरुप चुनौतीपूर्ण लक्ष्य को पूरा करने की दिशा में अग्रसर और तत्पर दिखाई देता है। आधुनिक युग में मानव संसाधन प्रबन्धन के समक्ष यह प्रश्न कि 'श्रमिक की प्रबन्ध के साथ भागीदारी होनी चाहिए या नहीं, गौण हो गया है अब प्रत्येक प्रबन्धक अपने कर्मचारियों को साथ लेकर किसी भी प्रकार की नीतियों को लागू करने के संबंध में निर्णय लेता है। इस प्रक्रिया से कर्मचारियों और संस्था प्रबन्धक के मध्य मधुर संबंध बने रहते हैं, परिणामस्वरुप संस्था की उन्नति पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

9. **कर्मचारियों की अपेक्षाओं पर ध्यान देना** – चूंकि आज का युवा, पूर्व में नियुक्त कर्मचारियों से स्वयं को अधिक योग्य एवं शिक्षित समझता है। उन्हें तकनीकी ज्ञान की अधिक जानकारी रहती है। अतः मानव संसाधन प्रबन्धन को ऐसे युवा और योग्यता वाले कर्मचारियों के कार्य, पारिश्रमिक एवं कार्य के प्रति उनके दृष्टिकोण को समझने एवं परखने की चुनौती है, ताकि ऐसे कर्मचारियों की अपेक्षाएं पूर्ण हो सकें और वे संस्था के प्रति वफादार रह सकें।

10. **संस्था की बेहतरी हेतु प्रयास** – नये व्यवसायिक वातावरण में मानव संसाधन प्रबन्धन के सामने यह चुनौती आती है कि संस्था के बेहतर प्रदर्शन हेतु उनके प्रयास क्या रहेंगे? इस चुनौती का सामना करने के लिए उन्हें कर्मचारियों के साथ मिलकर कार्य करने तथा समसयाओं का निराकरण करने के प्रयास करने होंगे। सभी कर्मचारियों को सीखने की मनोवृत्ति के साथ प्रेरित करके कार्य करने की आवश्यकता रहेगी।

18.4 मानव संसाधन प्रबन्धन की परिवर्तित भूमिका

मानव संसाधन प्रबन्ध की प्रकृति एवं क्षेत्र में पिछले दो–तीन दशकों में विविध परिवर्तन हुए हैं। श्रम संबंध से सेविवर्गीय प्रबन्ध और सेविवर्गीय प्रबन्ध से आज मानव संसाधन प्रबन्ध के रुप में परिभाषित किया जा रहा है। वैश्वीकरण के परिप्रेक्ष्य में आज अन्तर्राष्ट्रीय मानव संसाधन प्रबन्धन की अवधारणा भी विकसित हो रही है। वैश्विक बाजार में प्रतिस्पर्धा में बने रहने के लिए व्यवसायिक संस्था के मानव संसाधन प्रबन्धन की महत्वपूर्ण एवं परिवर्तित भूमिका रहेगी। इसका वर्णन कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर निम्नलिखित रुप में किया जा सकता है–

1. आधुनिक युग में मानव संसाधन प्रबन्धन को अपनी संस्था के लिए मानव संसाधन की खोज के लिए नवीन नीति का अनुपालन करना पडेगा। परम्परागत तरीके (अर्थात सर्वोतम व्यक्ति को नियुक्ति देना) को बदलना नये युग की मांग है। अब कम्पनी सर्वप्रथम अपने लक्ष्य के प्रति केन्द्रित होते हुए उन लक्ष्यों को पूरा कर सकने वाले योग्य व्यक्तियों को ढूढ़ती है। इस प्रकार की खोज एवं चुनाव व्यवसायिक परिणाम को सर्वोतम करने में योगदान देते हैं।
2. आज के युग में 'समय' महत्वपूर्ण कारक बनता जा रहा है। ऐसी स्थिति में, कम समय में तकनीकी विशेषज्ञों की भर्ती करते समय परम्परागत भर्ती पद्वति से देर हो सकती है। अतः मानव संसाधन प्रबन्धन को भर्ती के नये–नये ढंग को प्रयोग करना होगा। अब भर्ती हेतु ऑन लाईन आवेदन, कैम्पस भर्ती, नवीनतम स्टाफिंग एजेन्सियों आदि के माध्यम से भर्ती प्रक्रिया को सम्पादित करना बेहतर होगा।
3. मानव संसाधन प्रबन्धन के समक्ष आज कर्मचारी प्रशिक्षण की अवधारणा भी परिवर्तित हो गयी है। आज किसी भी संस्था का कर्मचारी मात्र किसी एक कार्यविशेष को कर सकने का नाम प्रशिक्षण नहीं, अपितु आज प्रशिक्षण का अर्थ, कर्मचारियों के दिन–प्रतिदिन की गतिविधियों को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने में एक यंत्र अथवा तकनीक के रुप में लिया जाता है। अतः स्वाभाविक है कि मानव संसाधन प्रबन्धन प्रशिक्षण प्रक्रिया को निरन्तर अपनी संस्था में जारी रखे, ताकि कम्पनी के कर्मचारी संस्था की बिक्री एवं उत्पादन क्षमता, में अपना बेहतर योगदान दे सकें।
4. मानव संस्थान प्रबन्धन को अपने कर्मचारियों को कार्यस्थल पर एक स्वस्थ वातावरण तथा कार्यशैली विकसित करनी पड़ेगी। क्योंकि व्यक्ति अपनी योग्यता, अनुभव एवं कौशल का अनुकूल परिणाम तब ही दे सकता है, जबकि उसकी कार्यशैली सर्वोत्तम हो और ऐसा तभी सम्भव है जबकि उसका कार्य स्थल, कार्य का स्वरुप, कार्य के प्रति सन्तुष्टी भी उसकी इच्छाओं के अनुरुप हो।
5. आधुनिक व्यवसायिक युग में ऐसे सभी मानव संसाधन प्रबन्धन के कार्य, जिनमें समय अधिक लगता है। कम्प्यूटर (नवीनतम सॉफ्टवेयर पैकेजों) के माध्यम से किये जाने लगे हैं। अतः इनको वर्तमान प्रणाली के अनुरुप तथा अद्यतन किया जाते रहना चाहिए।

6. मानव संसाधन प्रबन्धन को अपने कर्मचारियों के लिए ऐसी नीतियाँ बनानी चाहिए ताकि कर्मचारियों को संस्था में कार्य करते समय सौहार्द्धपूर्ण सा वातावरण महसूस हो। इसके लिए कार्य–घंटे, अवकाश, बच्चों की सुरक्षा, स्वास्थ्य, संदेशवाहन के साधन आदि की उचित व्यवस्था हो। ऐसी व्यवस्था होने से कर्मचारियों की कार्यक्षमता, मनोबल, सन्तुष्टि और उत्पादकता बढती है साथ ही कार्य से अनुपस्थिति भी कम होती है।
7. आज के व्यवसायिक युग में मानव संसाधन प्रबन्धन को ऐसा वातावरण विकसित करने की आवश्यकता है जिसमें उच्चकोटी का कार्य निष्पादन दिखाई दे। इसके लिए परम्परागत रुप में किये जाने वाले विभिन्न तरीकों के स्थान पर नवीनतम तरीके प्रयोग किये जाने चाहिए। अब कर्मचारी स्वतन्त्रता, सशक्तिकरण तथा स्व–प्रबन्धित टीम को महत्व देते हुए कार्य करना चाहते हैं। ऐसी नीति विकसित होने पर विशेष ध्यान देने की आवशकता है।
8. अनुशासन का पालन करना और करवाना किसी भी मानव संसाधन प्रबन्धन हेतु एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। कर्मचारियों को अनुशासित रखने के लिए उच्च प्रबन्धन कर्म को अनुशासित होना आवश्यक है। किसी कर्मचारी को अनुशासनहीनता के कारण दण्ड देने का उद्देश्य भविष्य में अनुशासनहीनता की पुनरावृत्ति को रोकना होना चाहिए। साथ ही दण्ड की प्रक्रिया ऐसी होनी चाहिए कि कर्मचारी स्वयं को सुधारने का प्रयास करे, न कि संस्था को छोड़ने का। अतः मानव संसाधन प्रबन्धन को इस संदर्भ में अत्यन्त सावधानी पूर्वक निर्णय लेने की आवश्यकता है।
9. आज के इस व्यवसायिक युग में विभिन्न जाति, सम्प्रदाय, उम्र, लिंग, सांस्कृतिक आधार एवं जीवनशैली के कर्मचारी संस्था में अपना योगदान दे रहे हैं। अतः ऐसी स्थिति में मानव संसाधन प्रबन्धन के लिए यह एक चुनौतीपूर्ण भूमिका है कि वह इसका सफलतापूर्वक सामना करे तथा कर्मचारियों को उसकी योग्यतानुसार कार्य, वातावरण तथा पारिश्रमिक की व्यवस्था करे, अन्यथा कर्मचारियों को संस्थान छोड़ने में देर नहीं लगती है।
10. मानव संसाधन प्रबन्धन को अपना कार्य करते समय और कर्मचारियों से कार्य करवाते समय नैतिकता तथा सदाचार का पालन करना आवश्यक होगा।

18.5 सारांश

मानव संसाधन प्रबन्धन की प्रकृति एवं क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में अनेक परिवर्तन हुए हैं। मानव संसाधन प्रबन्ध पर आधुनिक समय में वैश्वीकरण तथा नवीनतम तकनीकी का प्रभाव पड़ा है। जिसके कारण मानव संसाधन प्रबन्धन का वातावरण भी प्रभावित हुआ है। नये व्यवसायिक वातावरण में मानव संसाधन प्रबन्धन के संदर्भ में कुछ नवीनतम प्रवृतियाँ विकसित हुई हैं। जिस कारण मानव संसाधन प्रबन्धन को कुछ चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है।

मानव संसाधन प्रबन्धन को भावी चुनौतियों का सामना करने हेतु अपनी परम्परागत भूमिका से हटकर नवीनतम भूमिका का उपयोग करना होगा, जिसमें नवीनतम, अनुकूल नीतियाँ बनाना, कर्मचारियों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करना, तकनीकी ज्ञान को अद्यतन (Update) रखना, अनुशासन का पालन करना एवं करवाना तथा कर्मचारियों को उसकी योग्यतानुसार कार्य और सम्मान दिया जाना सम्मिलित है।

18.6 शब्दावली

मानव संसाधन प्रबन्धन (Human Resource Managenment) – किसी संस्था में कार्यरत कर्मचारियों की नियुक्ति, कार्य पर लगाना, मजदूरी वेतन, प्रशिक्षण, व्यक्तित्व विकास, कार्य मूल्याँकन, अनुशासन, शिकायत आदि से संबंधित प्रबन्ध करना।

भूमण्डलीयकरण (Globalisation) – किसी विषय वस्तु के क्षेत्र का सम्पूर्ण विश्व में विस्तार होना। व्यवसायिक दृष्टिकोण से बाजार का विस्तार सम्पूर्ण विश्व में हो गया है।

संगठनात्मक पुनर्संरचना (Organisational Reconstructering) – किसी व्यवसायिक संगठन की वर्तमान संरचना को पुनः नवीन रुप में प्रस्तुत करना। (उदाहरणार्थ– दो बैंकों को मिलाकर एक बैंक के रुप में विलय करना)

सूचना प्रौद्योगिकी (Information Technology) – नवीनतम तकनीकी संयन्त्रों (कम्प्यूटर, इण्टनेट के माध्यम से सूचनाओं का आदान–प्रदान करने की तकनीक।

परम्परागत (Traditional) - पूर्व समय में प्रचलित (व्यवहार, तरीके इत्यादि)

सॉफ्वेटर पैकेज (Software Package) - कम्प्यूटर के माध्यम से किसी प्रणाली को स्वतः कार्य करने हेतु निर्देश देने वाली प्रक्रिया का अंग।

स्व–प्रबन्धित टीम (Self-managed Team) - कर्मचारियों के मध्य विभिन्न कर्मचारियों का एक समूह जिसका समूह में कार्यरत कर्मचारियों द्वारा ही प्रबन्धन किया जाता है।

18.7 बोध प्रश्न

1. निम्नलिखित कथनों में कौन सा कथन सही है और कौन सा गलत?

i. वर्ष 1991 की आर्थिक नीति ने भारतीय अर्थव्यवस्था को वैश्वीकृत कर दिया है।
ii. विलय और अभिग्रहण, संगठनात्मक पुनर्संरचना का एक उदाहरण है।
iii. घर पर बैठकर कोई भी व्यवसायिक क्रिया नहीं की जा सकती है।
iv. लागतों में कमी लाने का प्रयास उपयुक्त नहीं है।
v. आधुनिक युग में नवीन रोजगार प्राप्त नवयुवक अपने कैरियर के प्रति अधिक सचेत हैं।

2. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

i. उदारीकरण, निजीकरण तथा .... के कारण, सम्पूर्ण व्यवसायिक वातावरण प्रभावित हुआ है।
ii. संगठनात्मक पुनर्संरचना का उदाहरण विलय एवं .... है।
iii. .... प्रभाव के कारण 'अन्तर्राष्ट्रीय मानव संसाधन प्रबन्धन की आवश्यकता उत्पन्न हुई है।
iv. अधिकतम उत्पादन और .... में कमी आज के व्यवसायिक संस्थाओं की मांग है।
v. भर्ती हेतु ऑन लाइन आवेदन करना, भर्ती का .... तरीका है।

18.8 बोध प्रश्नों के उतर

1.

i. सत्य ii. सत्य iii. असत्य iv. असत्य v. सत्य

2.

i. भूमण्डलीकरण ii. अभिग्रहण iii. भूमण्डलीकरण iv. लागतों v.. आधुनिक

18.9 स्वपरख प्रश्न

1. मानव संसाधन प्रबन्धन में उभरती प्रवृत्तियों की व्याख्या कीजिए।
2. मानव संसाधन प्रबन्धन में प्रबन्धन वर्ग को किन–किन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है? विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिए।
3. मानव संसाधन प्रबन्धन परम्परागत तरीकों के स्थान पर आज किन आधुनिक तरीकों को अपना रहा है? विस्तार से समझाइए।

18.10 सन्दर्भ पुस्तकें

1. एडविन वी0 फिलप्पो, पर्सनेल मैनेजमेंट, मैग्राहिल टोक्यो, 1981
2. डेल योडर, हेनमैन, टर्नवुल एवं स्टोन, हैण्डबुक ऑफ पर्सनेल मैनेजमेंट एण्ड लेबर रिलेसन्स, मैग्राहिल बुक क0 न्यूयार्क 1958
3. पाल पीगर्स और चार्ल्स ए0 मायर्स, पर्सनेल एडमिनस्ट्रेशन, मैग्राहिल कोर्माकुशा लि0, टोक्यो, 1977
4. अरुण मोनप्पा और मिर्जा एस0 सैयादीन, पर्सनेल मैनेजमेंट, टाटा मैग्राहिल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली 1979।